आप्तवाणी

श्रेणी-७

दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-७

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

मंगलाचरण

निज स्वभाव से सद्गुरु, अगुरु-लघु सर्वज्ञ हैं,
सूक्ष्मतम सिद्ध परम्गुरु, सत्यम् निश्चय वंद्य हैं।

तैंतीस कोटि देवगण, विश्वहितार्थ स्वागतम्,
जग कल्याणक यज्ञ में मंगलमय दो आशीषम्।

सिद्ध स्वरूपी मूर्तमोक्ष, गलती-भूल की माफी दो,
व्यवहार में सद्बुद्धि हो, निश्चय में अभिवृद्धि दो।

✠ ✠ ✠

समर्पण

अहो! अहो! यह अक्रमिक आप्तवाणी,
निकाले अज्ञान अंधेरा, तेज सरवाणी।
संतप्त हृदय को शांतकर बनाए आत्मसन्मुखी,
प्रत्येक शब्द करे सूझ ऊर्ध्वपरिणामी।

विश्वसनीय आत्मार्थ, संसारार्थ प्रमाणी,
मोक्षपथ पर एक मात्र पथप्रदर्शक समझाणी।
फैलाए सदा वह प्रकाश, अहो! उपकारिणी,
खोलकर चक्षु, हे पथी! रास्ता काट 'ठोकर'-बीनि।

दिव्यातिदिव्य आप्तपुरुष अक्रम विज्ञानी,
'दादा' श्रीमुख से निकली वीतरागी वाणी।
अहो! जगत्कल्याणार्थ अद्भुत उपहाराणी,
केवल कारुण्यभाव से विश्वचरणों में समर्पाणी।

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं,
पढमं हवइ मंगलम् १
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २
ॐ नमः शिवाय ३
जय सच्चिदानंद

'दादा भगवान' कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छह बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन। प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रगट हुए । और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घण्टे में उनको विश्व दर्शन हुआ। 'मैं कौन ? भगवान कौन ? जगत कौन चलाता है ? कर्म क्या ? मुक्ति क्या ?' इत्यादि जगत के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सन्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करने वाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से । उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात बिना क्रम के, और क्रम अर्थात सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात लिफ्ट मार्ग। शॉर्ट कट!

आपश्री स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन ?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह दिखाई देनेवाले दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं, और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं। सभी में हैं। आप में अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।'' 'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया।

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय के बाद नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवाते थे, जो नीरूमाँ के देहविलय के पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हजारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

आप्तवाणियों के लिए
परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से वर्षों पहले निकली यह भावना अब फलित हो रही है।

आप्तवाणी-७ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणियों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, इसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-७ का हिन्दी अनुवाद है।
- 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द का उपयोग संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में किया गया है।
- जहाँ-जहाँ 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानीपुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, परंतु यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जब कि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिये गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आप से क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

वाणी सुनने के उदय तो अनेक आए, लेकिन वह ऐसी कि जो मात्र कान या मन को स्पर्श करके चली गई। लेकिन हृदयस्पर्शी वाणी सुनने का संयोग नहीं मिला। ऐसी हृदयस्पर्शी वाणी कि जो सीधे (अंतर में) उतरकर अज्ञान मान्यताओं को बिल्कुल फ्रैक्चर करके सम्यक दृष्टि खोल दे, जो निरंतर क्रियाकारी बनकर ज्ञान-अज्ञान के भेद को प्रकाशमान करती रहे, ऐसी दिव्यातिदिव्य अद्‌भुत वाणी तो वहीं पर प्रकट हो सकती है कि जहाँ परमात्मा संपूर्ण रूप से, सर्वांग रूप से प्रकट हो चुके हों! ऐसी दिव्यातिदिव्य वाणी का अपूर्व संयोग वर्तमान में प्रकट 'ज्ञानीपुरुष' के श्रीमुख से उपलब्ध हुआ है! उस बेधक वाणी की अनुभूति प्रत्यक्ष सुननेवाले को तो होती ही है, लेकिन पढ़नेवाले को भी अवश्य होती है!

जिनका दर्शन केवल आत्मस्वरूप का ही नहीं, लेकिन व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में सभी ओर से पहुँचकर, उस प्रत्येक क्षेत्र को, उस-उस वस्तु को सभी कोणों से तथा उसकी सभी अवस्थाओं से प्रकाशित कर सकता है तथा उसे 'जैसा है वैसा' वाणी द्वारा बता सकता है! ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' की अनुभवसहित निकली हुई वाणी का सर्वजनों को लाभ मिले, उस हेतु से आप्तवाणी श्रेणी-७ में उनकी जीवन-व्यवहार से संबंधित उद्‌बोधित वाणी का संकलन किया गया है। जीवन की सामान्य से सामान्य घटना को 'ज्ञानीपुरुष' जिस दृष्टि से देखते हैं, उसका वर्णन जिस सादी-सरल भाषा में करते हैं, उन-उन घटनाओं से संबंधित व्यक्तियों के मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, वाणी तथा वर्तन को वे 'जैसा है वैसा' देखकर अपने समक्ष उसका हूबहू तादृश्य वर्णन खड़ा कर देते हैं।

'भुगते उसी की भूल,' 'जान-बूझकर धोखा खाना,' 'कमी नहीं, ज़्यादा भी नहीं,' 'फ्रैक्चर हुआ या जुड़ा?' 'इंतज़ार करने के जोखिम,' 'जगत् के प्रति निर्दोष दृष्टि' ऐसी अनेक मौलिक, स्वतंत्र और 'मोस्ट प्रेक्टिकल' व्यवहारिक चाबियाँ 'ज्ञानीपुरुष' द्वारा प्रथम बार जगत् को मिली हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रकट 'ज्ञानीपुरुष' की वह हृदयस्पर्शी वाणी का संकलन किया गया है कि जिसमें ऐसी कुछ घटनाओं पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। ताकि प्रत्येक सुज्ञ पाठक के खुद के जीवन व्यवहार में एक नई ही दृष्टि, नया ही दर्शन और विचारक दशा की नई ही कड़ियाँ स्पष्ट होने में सहायक हों, ऐसा अंतर-आशय है।

ज्ञानीपुरुष की वाणी उदयाधीन रूप से, द्रव्य-क्षेत्र-काल और सामनेवाले व्यक्ति के भाव के अधीन निकलती है और फिर भी जगत्-व्यवहार के वास्तविक नियमों को प्रकट करनेवाली तथा सदा के लिए अविरोधाभासी होती है। सुज्ञ पाठक को इस वाणी में विरोधाभास की क्षति भासित हो तो वह मात्र संकलन के कारण ही है!

– डॉ. नीरूबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

उपोद्‌घात

जीवन की सीधी-सादी हर रोज़ होनेवाली घटनाओं में अज्ञानदशा में किस तरह 'कषायों के विस्फोट होते हैं, कैसे संयोगों में होते हैं, उनके गुह्य और दिखनेवाले कारण क्या हैं? उसका उपाय क्या है? और ऐसे कषायों का विस्फोट हो, उस समय किस तरह वीतराग रहा जाए?' उसकी सभी चाबियों का सुंदर, सरल और आसानी से अंतर में उतर जाए ऐसी समझ सटीक उदाहरणों सहित यहाँ पर प्रकट की गई है।

घटना भले ही बिल्कुल सादी हो, हमने कई बार अनुभव की हो या सुनी हो, लेकिन उस घटना में होनेवाली आंतरिक सूक्ष्म प्रक्रियाएँ खुद पर और सामनेवाले पर, उन सबका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण 'ज्ञानीपुरुष' ने जिस तरह से किया है, वैसा कहीं भी या कभी भी नहीं देखा गया होगा। अरे, खुद उनसे प्रत्यक्ष सुननेवाले को भी अलग-अलग जगहों पर सूचित किए गए रहस्य दृष्टिगोचर होकर फिर विस्मृत हो जाते हैं। उन्हें यहाँ पर एकत्रित करके संकलित करने से, हर ऐंगल से वह व्यू पोइन्ट स्पष्ट होता है, जिसका एनलिसिस सुज्ञ पाठक को उनके जीवन की हर एक घटना में प्रकाशस्तंभ जैसा बन जाएगा!

१. जागृति, जंजाली जीवन में...

रात-दिन इस संसार की मार खाते हैं, फिर भी संसार मीठा लगता है, यह भी आश्चर्य ही है न! मार खाता है और भूल जाता है, उसका कारण है मोह! मोह घेर लेता है! डिलिवरी के समय स्त्रियों को ज़बरदस्त वैराग्य आ जाता है, लेकिन बालक को देखते ही सबकुछ भूल जाती है और दूसरी संतान का इंतज़ार करती है! माया की मार अर्थात् खुद के स्वरूप की अज्ञानता के कारण मोल लिया हुआ संसार, और उसकी खाते हैं मार! सेल्सटैक्स, इन्कमटैक्स, किराया, ब्याज, बीवी-बच्चों के खर्चे, ये सब तलवारें सिर पर लटकी रहती हैं, रात-दिन! फिर भी अक्रम विज्ञान इन सबसे निरंतर निर्लेप रखकर परमानंद में रखता है। स्वरूपज्ञान से ही जंजाल छूट सकती है! जीवन में 'क्या हितकारी है और क्या नहीं' उसका सार निकालना आना चाहिए।

विवाह से पहले 'विवाह का परिणाम वैधव्य' ऐसा लक्ष्य में होना ही चाहिए! दोनों में से एक को तो कभी न कभी वैधव्य आएगा ही न?

इज़्ज़तदार तो वह कहलाता है कि जिसकी सुगंधी चारों ओर आए! यह तो घर पर ही दुर्गंध देता है तो बाहर की क्या बात?

नकल करनेवाला कभी भी रौब नहीं जमा सकता! बाहर जाए और पेंट पर हाथ मारता रहता है! अरे, कोई तुझे देखने के लिए फालतू नहीं है! सभी अपनी-अपनी चिंता में पड़े हुए हैं!

खुद का हित कब होगा? औरों का करेंगे तब! सांसारिक हित अर्थात् नैतिकता, प्रामाणिकता, कषायों की नॉर्मेलिटी, कपट रहितता। और आत्मा का हित अर्थात् मोक्षप्राप्ति के पीछे ही पड़ना, वह!

२. लक्ष्मी की चिंतना?!

सामान्यत: जन समाज में लक्ष्मी संबंधी प्रवर्तित उल्टी मान्यताएँ कहाँ-कहाँ, किस प्रकार से मनुष्य से अधोगति के बीज डलवा देती हैं, उसका सुंदर चित्रण 'ज्ञानीपुरुष' प्रस्तुत करते हैं और

'लक्ष्मी, वह तो बाइप्रोडक्ट है।' - दादाश्री

ऐसा कहकर लक्ष्मी के प्रोडक्शन में डूबे हुए लोगों की आँखें खोल देते हैं और पूरी ज़िंदगी की मज़दूरी का एक ही वाक्य में बाष्पीकरण करवा देते हैं! इतना ही नहीं, लेकिन आत्मा प्राप्त कर लेना ही मेन प्रोडक्शन है, ऐसी समझ पकड़वा देते हैं!

लक्ष्मी का संग्रह करनेवालों को लालबत्ती दिखाई हैं कि इस काल की लक्ष्मी क्लेश लानेवाली होती है, उसका तो खर्च हो जाना ही उत्तम है। उसमें भी यदि धर्म के मार्ग पर खर्च होगी तो सुख देकर जाएगी और अधर्म के मार्ग पर तो रोम-रोम में काटकर जाएगी। अधर्म से भी, जितनी निश्चित है उतनी ही लक्ष्मी आएगी और धर्म से भी जितनी निश्चित है उतनी ही लक्ष्मी आएगी, तो फिर अधर्म करके इस भव को और पर भव को किसलिए बिगाड़ें?

लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए सोचना नहीं चाहिए। पसीना लाने के लिए कोई सोचता है? ऐसा सुंदर लेकिन सटीक उदाहरण 'ज्ञानीपुरुष' कितने सुंदर प्रकार से फिट करवा देते हैं!

लक्ष्मी प्राप्त करने में रेसकोर्स मुख्य भूमिका अदा करता है, जिसका परिणाम मात्र हाँफकर मर जाने के अलावा और कुछ भी नहीं आता।

लक्ष्मी के लिए, 'संतोष रखना चाहिए, संतोष रखना चाहिए' के नगाड़े हर एक उपदेशक बजाते हैं, लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' तो कहते हैं कि इस प्रकार से संतोष रखने से रहेगा ही नहीं! और वह हमारा रोज़ का अनुभव है। इतना ही नहीं, लेकिन संतोष के लिए एक्ज़ेक्ट वैज्ञानिक रहस्य खोल देते हैं कि,

'संतोष तो, जितना ज्ञान हो उतनी मात्रा में स्वाभाविक रूप से संतोष रहेगा ही। संतोष, वह करने की चीज़ नहीं है, वह तो परिणाम है।'

– दादाश्री

लक्ष्मी का ध्यान आत्मध्यान या धर्मध्यान में बाधक होता है। क्योंकि...

'सिर्फ लक्ष्मी का ध्यान कभी किया जाता होगा? लक्ष्मी का ध्यान एक तरफ है, तो दूसरी तरफ ध्यान चूक जाएँगे। स्वतंत्र ध्यान में तो लक्ष्मी तो क्या, स्त्री का ध्यान भी नहीं करना चाहिए, स्त्री का ध्यान करेगा तो स्त्री जैसा बन जाएगा! लक्ष्मी का ध्यान करेगा तो चंचल हो जाएगा। लक्ष्मी चलित और वह भी चलित! लक्ष्मी तो सभी जगह घूमती रहती है निरंतर। उसी तरह वह भी सभी जगह घूमता रहेगा। लक्ष्मी का ध्यान करना ही नहीं चाहिए। सबसे बड़ा रौद्रध्यान है वह तो!' – दादाश्री

लक्ष्मी की चिंतना से सूक्ष्म स्तर पर जो भयंकर परिणाम आते हैं, वे ज्ञानी के अलावा कौन स्पष्ट कर सकता है? लक्ष्मी की अधिक आशा रखना अर्थात् सामनेवाले की थाली में से निवाला छीन लेने जैसा गुनाह है, यह जोखिम किसने समझा?

रात–दिन लोगों की लक्ष्मी के प्रति की भक्ति पर 'ज्ञानीपुरुष' आघात करते हुए बताते हैं कि

'तो फिर महावीर की भजना बंद हो गई और यह भजना शुरू हो गई, ऐसा न? मनुष्य एक जगह पर भजना कर सकता है या तो पैसों की भजना कर सकता है या फिर आत्मा की। एक व्यक्ति का उपयोग दो जगहों पर नहीं रह सकता। दो जगहों पर उपयोग कैसे रह सकता है?'

– दादाश्री

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। पूरी ज़िंदगी भगवान को भूलकर लक्ष्मी के पीछे पड़कर दौड़ा, गिरा, ठोकरें खाईं, घुटने छिल गए, फिर भी दौड़ जारी रखी, लेकिन अंत में मिला क्या? क्या पैसे साथ में ले जा सके? लक्ष्मी साथ में ले जा सकते, तब तो सेठ तीन लाख का कर्ज़ा करके भी साथ में ले जाते और पीछे से बच्चे चुकाते रहते! ऐसा अद्‌भुत उदाहरण देकर 'ज्ञानीपुरुष' लक्ष्मी के पुजारियों को ज़बरदस्त स्वराघात करते हैं! इस उदाहरण का वर्णन करते हुए सेठ की रूपरेखा, उनकी डिज़ाइन, उनके मन की कंजूसी, उन सबका वर्णन शब्दों द्वारा करते हैं, लेकिन सुननेवाले–पढ़नेवाले के लिए हूबहू चित्रपट सर्जित कर देते हैं! 'ज्ञानीपुरुष' की यह ग़ज़ब की खूबी है, जो मन का ही नहीं लेकिन सामनेवाले के चित्त का भी हरण कर लेती है!

लक्ष्मी के पीछे रात–दिन मेहनत करनेवालों को 'ज्ञानीपुरुष' एक ही वाक्य में निरस्त कर देते हैं कि...

'लक्ष्मी जी तो पुण्यशालियों के पीछे घूमती रहती हैं और मेहनती लोग लक्ष्मी जी के पीछे घूमते हैं!' – दादाश्री

अर्थात् सच्चा पुण्यशाली किसे कहा है? कि जो थोड़ी सी मेहनत करे और ढेर सारा पैसा मिले!

'जो भोगे, वह समझदार कहलाता है, बाहर फेंक देता है वह पागल कहलाता है और मेहनत करता रहे वह तो मज़दूर कहलाता है।' – दादाश्री

यह कैसी संक्षिप्त लेकिन *उमदा* परिभाषाएँ हैं!

लक्ष्मी के स्पर्श का नियम है, उस नियम से बाहर लक्ष्मी का स्पर्श हो ही नहीं सकता, फिर वह कम आए तो हाय-हाय कैसी? और अधिक आए, तो छाक (उन्माद) कैसा?

'अपने लिए तो कमी न पड़े और भरमार न हो जाए, उतना हुआ तो बहुत हो गया।' – दादाश्री

लक्ष्मी संबंधित इस सूत्र को जीवन में उतारकर जगत् के सामने प्रस्तुत किया गया है! भरमार के पूजक और कमी के विराधक, दोनों को यह सूत्र बैलेन्स में ले आता है!

३. उलझन में भी शांति!

जब से उठे तभी से उलझनें। टेबल पर चाय पीते समय भी झंझट और भोजन करते समय भी झंझट! व्यवसाय में भागीदार की झिड़की सहना और घर पर पत्नी की झिड़की खाना! इस उलझन में से बाहर निकलना हो, तो 'रियल' में आना पड़ेगा। 'रिलेटिव' में तो निरी उलझनें ही हैं!

परवशता किसी को भी पसंद नहीं है लेकिन परवशता से बाहर जा नहीं पाते। रोज़ वही की वही कोठड़ी, वही का वही पलंग और वही का वही तकिया! नो वेराइटी!

संसार के सार के रूप में क्या मिला? सार निकालें तो अभी ही मिले, ऐसा है! पूँजी के रूप में कौन सा सुख मिला?

४. टालो कंटाला

किसी भी जगह पर बोझ और कंटाला नहीं आए, वैसी आंतरिक स्थिति तक पहुँचना है!

उपयोगमय जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म जागृति ज्ञानी विकसित करते हैं कि नाखून काटकर रास्ते में डाल दें तो वहाँ पर असंख्य चींटियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। यदि उन पर किसी का पैर पड़े तो? उसका निमित्त डालनेवाला

बनता है! जहाँ पर परिणाम की दृष्टि खुलती जाती है, वहाँ पर आत्मा प्रकट होता जाता है। उसमें जो परिणाम को जानता है, वह आत्मा है।

५. चिंता से मुक्ति

चिंतारहित कौन है? 'मेरा क्या होगा?' करके अपार चिंताएँ करता है! चिंता भेजता कौन है? कोई भेजनेवाला नहीं है। चिंता का मूल कारण? चिंता, वह सबसे बड़ा अहंकार है। 'यह मैं चला रहा हूँ, मेरे बिना यह नहीं होगा' ऐसी जिसे मान्यता है, उसी को चिंता होती है। और वही अहंकार है! जिसकी चिंता गई उसे बरते समाधि! कर्ता संबंधित करेक्ट ज्ञान यानी 'व्यवस्थित कर्ता' है, वह ज्ञान हमेशा के लिए चिंतामुक्त बनाता है।

बेटी की शादी की चिंता, व्यापार में नुकसान हो तब चिंता, बीमार हुए कि चिंता! चिंता करने से बल्कि अंतराय कर्म डलते हैं!

ज्ञानीपुरुष आत्मज्ञान करवाते हैं, वास्तव में 'कर्ता कौन है?' कर्ता 'व्यवस्थित शक्ति' है, ऐसा समझाते हैं, तब हमेशा के लिए चिंता चली जाती है। जब चिंता बंद हो जाए, तभी से मोक्षमार्ग शुरू हुआ कहा जाता है!

इस वर्ल्ड में किसी को कुछ भी करने की सत्ता नहीं है, सबकुछ परसत्ता में ही है।

सहज अहंकार से संसार चलता रहता है, लेकिन यह चिंता तो विकृत हो चुका अहंकार है, वह जी जलाता ही रहता है रात-दिन!

प्रतिकूल संयोग आने पर यदि कोई चिंता करे तो दो नुकसान उठाता है और चिंता नहीं करे तो एक ही नुकसान उठाता है! और जो सिर्फ आत्मा में ही रहता है, उसे तो कहीं भी नुकसान है ही नहीं! अनुकूल-प्रतिकूल दोनों एक समान ही है वहाँ!

६. भय में भी निर्भयता

पूरा वर्ल्ड विरोध करे, फिर भी हम अंदर से ज़रा सा भी विचलित नहीं हों, ऐसा हो जाना चाहिए।

सामान्य रूप से 'मैं प्रयत्न कर रहा हूँ, कोशिश कर रहा हूँ।' ऐसा गलत घुस गया है। जो अपने आप हो ही जाता है, उसमें करने का कहाँ रहा?

डर और घबराहट तो कहाँ तक रहते हैं? रात को ज़रा सा चूहे ने खड़खड़ाया हो तो, वहाँ पर 'भूत घुसा' कहकर पूरी रात डर के मारे घबराता रहता है! सिर्फ अफवाह उड़े कि बड़ौदा पर बम गिरनेवाला है, तो सभी चिड़ियाँ उड़ जाती हैं! पूरा शहर खाली कर जाती हैं!

जो कुदरत के गेस्ट के रूप में जीए, उसे क्या भय? कुदरत ज़रूरत के मुताबिक भेज ही देती है। 'लोगों को कैसा लगेगा?' ऐसा करके भयभीत होते रहते हैं! ऐसा भय कहीं रखा जाता होगा? इन्कमटैक्स की चिट्ठी आए कि डर के मारे काँप उठता है! 'तार लो,' सुनकर काँप उठता है! निरे आर्तध्यान और रौद्रध्यान में जीता है! यानी वीतराग होना है। जो वीतराग हो जाए, उसके सर्व प्रकार के भय चले जाते हैं! ज्ञानी में भय क्यों नहीं होता? ज्ञानियों को ज्ञान में ऐसा बरतता है कि यह जगत् बिल्कुल करेक्ट ही है, इसलिए!

कुदरती रूप से अपने आप बुद्धि का जितना उपयोग हो उतनी ही बुद्धि काम की है, बाकी की सारी बुद्धि संताप करवाती है। किसी को हार्ट अटेक आया, ऐसा देखे, तभी से संताप शुरू हो जाता है कि मुझे भी हार्ट अटेक आएगा तो? यह सब अतिरिक्त बुद्धि! ऐसी बुद्धि झूठी शंकाएँ करवाती है। सिर्फ लुटेरे का नाम आया कि शंका में पड़ जाता है, लुटने की बात तो बहुत दूर रही! यानी कहीं भी किसी से भी घबराने जैसा नहीं है! पूरे ब्रह्मांड के मालिक हम 'खुद' ही हैं। किसी का उसमें दख़ल है ही नहीं। भगवान का भी दख़ल नहीं! जो कुछ अच्छा-बुरा हो रहा है, वह तो अपना हिसाब चुकता करवा रहा है!

जगत् निरंतर भयवाला है, लेकिन भय किसे हैं? जिसे अज्ञानता है उसे, जो शुद्धात्मा हो चुके उन्हें भय कैसा? भय लगे या निर्भयता रहे, दोनों जानने की चीज़ें हैं।

सेठ ने पचास हज़ार दान में दिए, लेकिन फिर मित्र ने कहा कि, 'यहाँ क्यों दिए? ये तो चोर लोग हैं, पैसे खा जाएँगे!' तब सेठ क्या कहता है, 'वह तो मेयर के दबाव से दिए, वर्ना मैं तो ऐसा हूँ कि पाँच रुपये भी न दूँ!' यह क्रिया तो उत्तम हुई, सत्कार्य हुआ लेकिन पिछले जन्म के भाव चार्ज किए हुए थे, उसके डिस्चार्ज के रूप में यह फल आया और दान दिया गया, लेकिन आज नया क्या चार्ज किया? जो भावना की कि पाँच रुपये भी दूँ ऐसा नहीं हूँ, वह चार्ज हुआ!

७. कढ़ापो-अजंपो

नौकर से कप-प्लेट टूट जाएँ, उस घटना का वर्णन, उसमें नौकर की व्यथा, सेठानी का आवेश, सेठ का *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) या फिर *कढ़ापा* (कुढ़न, क्लेश) होता है। हर एक की बाह्य और आंतरिक अवस्थाओं का एक्ज़ेक्ट 'जैसा है वैसा' वर्णन 'ज्ञानीपुरुष' करते हैं। नौकर को डाँटना नहीं चाहिए, ऐसा उपदेश असंख्य बार सुना है, लेकिन वह कान तक ही रहता है, हृदय तक पहुँचता ही नहीं। जबकि 'ज्ञानीपुरुष' के वचन हृदय तक पहुँचते हैं और नौकर को कभी भी डाँटें ही नहीं, ऐसी सही समझ उत्पन्न होती है। परिणाम स्वरूप अभी तक नौकर का ही दोष देखनेवाले को खुद की भूल दिखाई देती है, जो कि भगवान का न्याय है!

इसमें नौकर को ही दोषित ठहराकर उसी पर आक्षेप लगाते हैं, डाँटते हैं। तब ज्ञानी क्या कहते हैं कि नौकर सेठ का विरोधी नहीं है। उसमें उसका क्या गुनाह? नौकर बैर बाँधकर जाए, ऐसी अपनी वाणी के स्थान पर सबसे पहले क्या यह जाँच नहीं करनी चाहिए कि, 'वह जला है या नहीं?' 'भाई, तू जला तो नहीं न?' इतने ही शब्द नौकर के उस समय के डर को कितनी आश्चर्यजनक रूप से रिलीज़ कर देते हैं! और फिर यदि वह नहीं जला है तो 'भाई, धीरे से चलना।' ऐसे सहज रूप से टोकना उसमें कितना अधिक परिवर्तन लाने का सामर्थ्य रखता है लेकिन यदि वहाँ *कढ़ापा* करेगा, तो क्या होगा?

'जिसका कढ़ापा-अजंपा जाए, वह भगवान कहलाता है।' - दादाश्री

यह सीधा-सादा वाक्य ठेठ भगवान पद की प्राप्ति का मार्ग आसान कर देता है! *कढ़ापा* और *अजंपा* ये शब्द गुजराती में बहुत ही सामान्य रूप से उपयोग किए जाते हैं, लेकिन इनकी सही और संपूर्ण समझ जिस प्रकार से परम पूज्य दादाश्री ने दी है, वह तो अद्‌भुत ही है!

किसी भी जीव को दुःख दें, तो मोक्ष रुक जाता है, फिर यह नौकर तो मनुष्य रूप में है, इतना ही नहीं वह हमारा आश्रित और सेवक है! हृदयस्पर्शी शब्दों से नौकर के प्रति हमारे अभाव को ज्ञानी किस प्रकार भाव में बदल देते हैं!

खुद की किफायती प्रकृति से घर के सभी लोगों को दुःख होता है, ऐसा समझ में आने के बाद 'मेरी किफायत किए बगैर घर कैसे चलेगा?' का ज्ञान बदलकर 'मन नोबल रहेगा तभी सब को सुख दिया जा सकेगा,' ऐसा ज्ञान फिट हो जाएगा, तभी उलझनें बंद होंगी!

सफाई के आग्रही को परम पूज्य दादाश्री कैसा थर्मामीटर दिखाते हैं?

'सफाई इस हद तक की एडमिट करनी अच्छी है कि फिर मैला हो जाए तो भी हमें चिंता नहीं हो।' - दादाश्री

पूरी दुनिया दो नुकसान उठाती है : एक तो वस्तु खो दी - वह भौतिक नुकसान, और दूसरा - *कढ़ापा-अजंपा* किया, वह आध्यात्मिक नुकसान! जबकि ज्ञानी एक ही नुकसान उठाते हैं, सिर्फ भौतिक ही, कि जो अनिवार्य रूप से होना ही था, वह।

प्याले फूट जाएँ तब, नए आएँगे अथवा 'अच्छा हुआ बला टली' ऐसा करके जो व्यक्ति आनंद में रह गया उसे, चिंता करने की जगह पर आनंद में रहा, इसलिए पुण्य बँधता है! नुकसान में भी फायदा करने की कितनी सुंदर कला!

किसी चीज़ की ममता ही उसका वियोग होने पर दुःख देती है, लेकिन वे प्याले जब पड़ोसी के वहाँ फूटें, तब जैसा रहता है, वैसा ही

यदि खुद के घर पर फूटें तब भी रहे तो भगवान बन जाए! मेरापन छूटने के परिणाम सरल तरीके से समझाने की ज्ञानी की कला तो देखो! वहीं यदि प्याले फूटें और *कढ़ापा-अजंपा* हो, तब परिणाम में क्या भोगना पड़ेगा? जानवर गति!

८. सावधान जीव, अंतिम पलों में

मरणशैय्या पर पड़े हुए हों, तब भी अस्सी वर्ष के चाचा *नोंध* करते रहते हैं कि 'फलाने समधी तो तबियत पूछने भी नहीं आए!' अरे परभव की गठरियाँ समेट न! समधी का क्या करना है अभी? मरते समय ज़िंदगी का हिसाब निकालना है। सब के साथ बाँधे हुए बैर-ज़हर, राग-द्वेष के बंधन के प्रतिक्रमण, हृदयपूर्वक प्रायश्चित करके छोड़ने हैं। मरने से पहले यदि सिर्फ एक ही घंटे प्रतिक्रमण करने लगे, तब भी पूरी ज़िंदगी के सब पाप धुल जाएँ, ऐसा है! ज़िंदगी के अंतिम घंटे में पूरे जन्म का सार देख लेना होता है और उस सार के अनुसार ही उसका अगला जन्म होता है। पूरी ज़िंदगी भक्ति की होगी तो अंत समय में भी भक्ति ही होगी और कषाय किए होंगे तो वही होंगे!

स्वजन के अंत समय में रिश्तेदारों को उनका खूब ध्यान रखना चाहिए। वह खुश रहे और भक्ति में, ज्ञान में रहे, वैसा वातावरण रखना चाहिए।

इन सगे-संबंधियों का साथ कब तक? स्मशान तक। कबीर साहब ने कहा है, 'तू जन्मा तब लोग हँस रहे थे और तू रो रहा था। अब दुनिया में आकर ऐसा कुछ कर कि जाते समय तू हँसे और लोग रोएँ!'

जब रिश्तेदार मर जाएँ, तब लोग कल्पांत करते हैं। कल्पांत अर्थात् एक *कल्प* (कालचक्र) के अंत तक भटकना पड़ता है।

मरने के बाद लोग चर्चाएँ बहुत करते हैं। कैसे मर गए, कौन डॉक्टर थे और क्या इलाज किया? इसके बजाय तो सबसे कहना कि 'चाचा को बुखार आया और टप्प, शोर्टकट!' जितना आयुष्यकर्म होता है, उतना ही

जी पाते हैं। एक सेकन्ड भी अधिक नहीं जी सकते, ऐसा एक्ज़ेक्ट 'व्यवस्थित' है यह जगत्!

बेटा मर जाए तो उसके बाद रोता रहता है, भूलता नहीं। उससे क्या होगा? जो गए वे गए। राम तेरी माया। वे वापस नहीं मिलेंगे। यदि बेटे की याद आए तो उसके आत्मा का कल्याण हो ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए और उसके प्रतिक्रमण करने चाहिए।

मृत्यु के बाद लौकिक व्यवहार करने के रिवाज़ हैं। लौकिक अर्थात् सुपरफ्लुअसली आमने-सामने करने का व्यवहार, जबकि लोग उसे सच मानते हैं और दु:खी होते हैं!

हिन्दुस्तान में मरनेवाले को भय नहीं है कि मुझे कौन कंधा देगा!

कुदरत का नियम है कि अपनी मृत्यु अपने हस्ताक्षर (अपनी सहमति) के बिना आ ही नहीं सकती! दु:ख के मारे अंतिम घड़ी में कभी भी हस्ताक्षर कर देता है! इतना स्वतंत्र है यह जगत्!

आत्महत्या से कहीं छुटकारा नहीं हो। अगले सात जन्म वैसे ही बीतेंगे! खुद परमात्मा है, उसे आत्महत्या की क्या ज़रूरत? लेकिन यह भान नहीं है, इसीलिए तो न!

९. निष्कलुषितता वही समाधि

सच्चा धर्म तो उसे कहते हैं कि जिससे जीवन में क्लेश नहीं रहे।

क्लेश ही क्लेश में मन-चित्त-अहंकार सब घायल हो जाते हैं। जिसका चित्त घायल हो चुका हो, वह बेचित्त घूमता रहता है। जो मन से घायल है, वह हमेशा अकुलाया हुआ ही घूमता रहता है! जैसे पूरी दुनिया खा नहीं जाएगी उसे! आहत अहंकारवाला व्यक्ति डिप्रेशन में हो, उसे कुछ कहा जा सकता है क्या? क्लेश मात्र नासमझी से उत्पन्न होते हैं!

मन को पहले खुद बिगाड़ता है और बाद में काबू में करने जाए तो किस तरह हो पाएगा?

इस जगत् में सबसे महँगा यदि कुछ है तो वह है मुफ़्त!

मोक्ष का भान तो बाद में लेकिन इस संसार के हिताहित का भान होना चाहिए या नहीं? कोई न कोई ऐसी भूल रह जाती है कि जो जीवन में क्लेश करवाती है!

पेट में डालने से पहले पेट को पूछ तो सही कि तुझे ज़रूरत है या नहीं?

मानवधर्म किसे कहते हैं? अपने निमित्त से किसी को दुःख नहीं हो। हमें जो पसंद नहीं है, वैसा हम दूसरों को कैसे दे सकते हैं? हम सामनेवाले को सुख देंगे तो हमें सुख मिलता ही रहेगा!

१०. फ्रैक्चर हुआ तभी से शुरूआत जुड़ने की

जिसे जगत् के लोग ''पैर टूट गया,' ऐसा कहते हैं, उसे ज्ञानी *'यह तो जुड़ रहा है'* ऐसा कहते हैं।'' जिस क्षण टूटा था, उसके दूसरे ही क्षण से जुड़ने की शुरूआत हो जाती है! 'जैसा है वैसा,' देखने की, कैसी ग़ज़ब की तीक्ष्ण जागृति है ज्ञानी की!

११. पाप-पुण्य की परिभाषा

पाप-पुण्य की लंबी-लंबी, बोरियतवाली परिभाषाओं की तुलना में 'ज्ञानीपुरुष' संक्षिप्त, फिर भी छू लेनेवाली मार्मिक परिभाषा बताते हैं कि,

'जीव मात्र को कुछ भी नुकसान करना, उससे पाप बंधते हैं और किसी भी जीव को कुछ भी सुख देना, उससे पुण्य बँधते हैं।' - दादाश्री

सामान्य रूप से ऐसा माना जाता है कि अनजाने में पाप हो, उसका दोष नहीं लगता। उसके लिए ज्ञानी कहते हैं कि, *'अनजाने में अंगारों पर हाथ पड़ जाए तो जलेगा या नहीं?'* बुद्धि को फ्रैक्चर कर देनेवाला यह कैसा उदाहरण!

१२. कर्तापन से ही थकान

जगत् के नियमों में पैसों का लेन-देन है, जबकि कुदरत के

नियम में राग-द्वेष का! पाँच सौ रुपये लिए तो उतने ही वापस देंगे तो छूटेंगे, कुदरत का नियम ऐसा नहीं है। वहाँ तो राग-द्वेष के बिना निकाल होगा तभी छूट पाएँगे। फिर भले ही सिर्फ पचास रुपये क्यों नहीं लौटाए हों?

मुंबई से बड़ौदा जाएँ तो लोग क्या कहते हैं? 'मैं बड़ौदा गया! अरे, तू गया या गाड़ी लेकर गई? 'मैं गया' कहेगा तो थकान महसूस होगी और 'गाड़ी ले गई, मैं तो डिब्बे में बैठा था आराम से,' तो थकान लगेगी? नहीं। यानी यह तो साइकोलोजिकल इफेक्ट है कि 'मैं गया'। गाड़ी में बैठे, यानी दोनों स्टेशनों से मुक्त! बीचवाला काल संपूर्ण मुक्तकाल! उसका उपयोग आत्मा के लिए कर लेना है!

१३. भोगवटा, लक्ष्मी का

पूरी ज़िंदगी कमाए, घानी के बैल की तरह मेहनत की, फिर भी बैंक में कितने लाख जमा हुए? जो धन औरों के लिए खर्च हुआ वही अपना और बाकी सब पराया। गटर में गया समझो।

हेतु के अनुसार दान का फल मिलता है। कीर्ति, तख्ती या नाम के लिए दिया हो तो वह मिलेगा ही, और गुप्तदान, शुद्ध भावना से मात्र औरों को मदद करने के हेतु से दिया गया हो तो वह सच्चा पुण्य बाँधता है। और जो अकर्ताभाव से निकाल करने के लिए दे, वह कर्म से मुक्त हो जाता है!

लक्ष्मी जी मेहनत से आती हैं या अक़्ल से? मेहनत से कमा रहे होते तो मज़दूरों के पास ही खूब पैसा होता, और मुनीम जी और सी.ए. तो खूब अक़्लवाले होते हैं, लेकिन सेठ तो पैसे जन्म से ही लेकर आया होता है! उसने कहाँ मेहनत की या अक़्ल लगाई? यानी लक्ष्मी मात्र पुण्य से ही आ मिलती है!

लक्ष्मी पर प्रीति है तो भगवान पर नहीं और भगवान पर प्रीति है तो लक्ष्मी पर नहीं, वन एट ए टाइम!

लक्ष्मी आए तो भी ठीक और नहीं आए तो भी ठीक! जो सहज प्रयत्न से आ मिले, वह खरी पुण्य की लक्ष्मी!

अपने हिसाब के अनुसार ही लक्ष्मी बढ़ती-घटती है! लोगों का तिरस्कार या निंदा करने से लक्ष्मी कम हो जाती है। हिन्दुस्तान में तिरस्कार और निंदा कम हुए हैं। लोगों को समय ही नहीं है यह सब करने के लिए। *'२००५ में हिन्दुस्तान वर्ल्ड का केन्द्र बन जाएगा।'* ऐसा संपूज्य दादाश्री १९४२ से कहते आए हैं!

पैसों का या चीज़ों का कर्ज़ नहीं होता, कर्ज़ राग-द्वेष का होता है। जो अगले जन्म के कर्म चार्ज करता है! इसलिए पैसे वापस देने के लिए कभी भी भाव मत बिगाड़ना। जिसे 'दूध से धोकर' पैसे लौटाने हैं, उन्हें पैसे आ मिलेंगे और चुकता हो जाएँगे! ऐसा कुदरत का नियम है। माँगनेवाले को वसूली करने का हक़ है, लेकिन गाली देने का अधिकार नहीं है। गालियाँ देना, धमकाना, वगैरह सब एकस्ट्रा आइटम हैं। क्योंकि गालियाँ देने की शर्त समझौते में नहीं होती!

जीवन उपयोग सहित होना चाहिए, जागृति सहित होना चाहिए, ताकि किसी को हमसे किंचित्‌मात्र दु:ख और नुकसान नहीं हो!

१४. पसंद प्राकृत गुणों की

घाट (स्वार्थ,बदनियत) रहित प्रेम वही सच्चा प्रेम! और....

'स्वार्थ यानी, स्त्री पर कुदृष्टि डालना और स्वार्थ रखना वे दोनों एक समान है! जहाँ स्वार्थ नहीं हो, वहाँ परमात्मा अवश्य होते हैं।' - दादाश्री

'गांडा ने गाम ने डाह्या ने डाम।' पागल को गाँव देना पड़े तो देकर छूट जाना चाहिए, अक़्लमंद को तो बाद में समझाया जा सकता है। छूटने की भी कला आनी चाहिए। वह कला ज्ञानी के पास पूर्ण रूप से खिली हुई होती है!

अपनी हर बार की सरलता के सामने कोई हमेशा टेढ़ा व्यवहार ही

करता रहे, तब मन बिदक जाता है कि टेढ़े के सामने टेढ़े ही रहने की ज़रूरत है। वहाँ पर 'ज्ञानीपुरुष' सही समझ का प्रकाश देते हैं कि 'कितने ही जन्मों की कमाई हो, तब जाकर सरलता उत्पन्न होती है।' वहाँ पर टेढ़े का व्यवहार देखकर अपनी जन्मों-जन्म की आध्यात्म की पूँजी क्या खो देनी है? और दिवालिया निकालना है? टेढ़े के साथ सरल रहना, वह तो ग़ज़ब की चीज़ है!

संसार में दु:ख के मूल कारण का ज्ञानी ने क्या शोधन किया? जिन्हें सामनेवाला गुनहगार दिखता है, वे खुली आँखों के बावजूद अंधे हैं। भगवान की भाषा में कोई गुनहगार है ही नहीं। फूल चढ़ाए वह भी और गालियाँ दे वह भी! यदि कोई गुनहगार दिखता है, तो वह खुद की ही मिथ्यात्व रूपी दृष्टि का रोग है। खुद को जो कुछ भी कमी भासित होती है, वह अंत में तो *पुद्गल* बाज़ार की ही है न? 'अपनी' तो नहीं है न?

विश्वासघात, वह भयंकर गुनाह है। मिलावट करना, *अणहक्क* का भोगना, वह सब विश्वासघात कहलाता है। छुपकर गुनाह करने से अंतराय पड़ते हैं। खाने-पीने और दवाईयों में जो मिलावट होती है, उससे भयंकर गुनाह लागू होता है। बाकी सब जगह चलाया जा सकता है, लेकिन यहाँ तो किसी भी परिस्थिति में चलाया ही नहीं जा सकता।

जगत् अपना ही प्रतिबिंब है। सामनेवाले को हमसे दु:ख हो, तो वह अपनी ही भूल का परिणाम है। वहाँ हम भूल को खत्म करेंगे तो हल आएगा। उसके लिए कुछ भी नहीं करना है, लेकिन सही ज्ञान जानना है कि जो अवश्य ही क्रिया में फलित हो!

'हमसे होनेवाली कोई भी क्रिया सही है या गलत है,' ऐसी उलझन किसने अनुभव नहीं की होगी? 'जिससे खुद को सुख हो, वह सही और दु:ख हो, वह गलत' ऐसा सादा थर्मामीटर देकर ज्ञानी ने अनेकों की उलझनों (गुत्थियों) को कितनी सरलता से सुलझा दिया है!

खुद सर्वशक्ति संपन्न होने के बावजूद, खुद से सामनेवाले को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं होने दे, वह खरा बलवान! वहाँ प्रताप गुण उत्पन्न

होता है। जो खुद के बल और खुद की सत्ता के ज़ोर पर सामनेवाले को कुचलता रहे, वह अबला नहीं तो और क्या है?

प्रकृति के स्वभाव की उलझन से बाहर निकलने का मार्ग आज तक किसी ने नहीं दिखाया। वहाँ पर अक्रम विज्ञान क्या कहता है कि, *'प्रकृति अपना स्वभाव छोड़ेगी नहीं, लेकिन खुद का ज्ञान बदल सकता है, और ज्ञान बदलने से दुविधा बंद हो जाती है!'* – दादाश्री

१५. दुःख मिटाने के साधन

सामनेवाले के दुःख से दुःखी होनेवालों के सूक्ष्म अहंकार को फ्रैक्चर कर दे, उसके लिए ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि

'तेरे सुख के लिए उसका दुःख मिटा देना, उनके सुख के लिए नहीं।' – दादाश्री

दुःखी व्यक्ति दूसरों के दुःख कैसे ले सकेगा? किसी का दुःख नहीं लेना है, ओब्लाइज़ ही करना है, बस। गहरे उतरे वे फँस जाएँगे।

एक तरफ ज्ञानीपुरुष ऐसा समझाते हैं कि, इस दुनिया में जो भी कुछ मिलता है (सुख-दुःख), वह सब, जो खुद ने दिया हुआ है, वही वापस आता है। नया उधार देना बंद हो जाएगा तो हिसाब साफ हो जाएगा और दूसरी तरफ 'ज्ञानीपुरुष' ऐसा समझाते हैं कि अपने सफेद बाल देखकर सामनेवाले को चिढ़ हो तो, उसमें अपना क्या गुनाह? भगवान महावीर को देखकर गोशाला को दुःख होता था, उसमें भगवान महावीर का क्या दोष? वह तो सामनेवाले का मोल लिया हुआ दुःख है। इसलिए इसमें..

''यदि आप कर्ता हो, जब तक आपको 'मैं चंदूलाल ही हूँ' ऐसा रहे, तब तक जोखिमदारी आपकी है।'' – दादाश्री

और 'हमारे दिए हुए दुःख' और 'सामनेवाले द्वारा मोल लिए हुए दुःख' दोनों में बहुत फर्क है, इसे समझ लेना है। 'ज्ञानीपुरुष' कहते हैं, *'मुझे कोई दुःख नहीं देता, क्योंकि हम दुःख मोल नहीं लेते। जो मोल*

ले उसे दु:ख!' इस सोने की कटारी का उपयोग करना तो संपूर्ण अकर्तापद में पहुँच चुके 'ज्ञानीपुरुष' ही जानें!

'मुझसे गलत सहन नहीं होता' कहनेवाले कितने ही देखे जाते हैं। लेकिन गलत करनेवाला हमें ही क्यों मिला? इसकी कोई जाँच करता है? फिर भी सामनेवाले को शांति से समझाया जा सकता है कि 'ऐसा गलत नहीं करना चाहिए।' वास्तव में जनसेवक तो वह है कि जिसे किंचित्‌मात्र भी कीर्ति की, मान की, नाम की, लक्ष्मी की या किसी भी चीज़ की भीख नहीं हो, खुद अपरिग्रही होता है। जो संपूर्ण परिग्रही है, वह भला जनसेवा क्या करेगा? सेवा करते हैं, उसे भी ज्ञानी *'प्रकृति स्वभाव है, पुरुषार्थ नहीं, प्रारब्ध है।'* ऐसा कहकर सेवा की पूँजी की कमाई के फूले हुए गुब्बारे की हवा निकाल देते हैं! स्वरूपज्ञान के बाद करुणाभाव प्रकट होता है, वही सच्ची चीज़ है।

ज्ञानीपुरुष ने जीवन का ऐसा तो कैसा लक्ष्य निश्चित किया होगा कि जिससे उन्हें अभ्युदय और आनुषंगिक फल बरतते रहते हैं?

''पूरा जगत् परमशांति को प्राप्त करे और कुछ मोक्ष को प्राप्त करें!''
– दादाश्री

इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए 'ज्ञानीपुरुष' रास्ता बताते हैं कि इसमें कुछ भी नहीं करना है, मात्र हेतु निश्चित करना है और वह हेतु अपने लक्ष्य में रहना ही चाहिए, अन्य कुछ भी लक्ष्य में नहीं रहना चाहिए।

१६. बॉस-नौकर का व्यवहार

अपने अंडरहैन्ड को डाँटना नहीं चाहिए। जब तक हम किसी को डाँटते रहेंगे, तब तक हमें डाँटनेवाले मिल जाएँगे! *ऊपरी* को या अन्डरहैन्डवाले को, किसी को भी हमसे दु:ख न हो ऐसा हमारा जीवन होना चाहिए!

जो ईमानदार है, उसके साथ में और कोई नहीं तो कुदरत का न्याय तो हमेशा है ही!

१७. जेब कट जाए, वहाँ समाधान

जेब कट गई, वह कुदरत का न्याय हुआ। कुदरत का न्याय क्या कहता है कि जिसकी जेब कटी, वही गुनहगार। *'भुगते उसी की भूल।'* इस नैचरल लॉ (कानून) का रहस्य जगत् में प्रथमबार 'ज्ञानीपुरुष' ने ही अनावृत किया है। जो इतना ही समझ लेगा, वह ठेठ मोक्ष में जाएगा! जेब कटी वह 'चंदूलाल' की। आत्मा को जेब होगी, तो कटेगी न?

कुदरत के प्लानिंग में जहाँ साहूकार का स्थान है तो वहाँ पर चोरों का भी स्थान है। ये चोर, लुटेरे तो गटर हैं, बदबूदार काला पैसा शुद्ध कर देनेवाले गटर हैं! गटर नहीं होंगे तो शहर की क्या दशा होगी? इसलिए जो है, जो होता है, वह करेक्ट ही है!

चीज़ों के उपयोग के नियम होते हैं। आज दस कमीज़ों का उपयोग किया, तो आगे जाकर उतने ही कम उपयोग किए जाएँगे। पूरी ज़िंदगी के उपयोग का जितना आँकड़ा निश्चित है, उतना ही रहता है। फिर उसे एक साथ खर्च करते जाओ या फिर जैसे-जैसे ज़रूरत पड़े वैसे-वैसे खर्च करते जाओ!

१८. क्रोध की निर्बलता के सामने...

दुनिया में कोई ऐसा नहीं जन्मा कि जो क्रोध कर सके। क्रोध किया नहीं जाता, क्रोध हो जाता है। यह तो, क्रोध हो जाने के बाद खुद की गलती के बचाव के लिए अक़्लमंदों ने रास्ता ढूँढ निकाला है कि यह क्रोध तो मैंने इसे सीधा करने के लिए किया था, नहीं तो वह सीधा हो सके, ऐसा है ही नहीं!

क्रोध का शमन करने की सही समझ का पृथक्करण ज्ञानी ने कितनी सूक्ष्मता से करके बताया है! कप-प्लेट फूटें और क्रोध हो जाए, उसका क्या कारण है? अपना नुकसान हुआ इसलिए? नौकर को झिड़क दिया, वह अहंकार किया। विचारक तो तुरंत ही सोच लेता है कि यदि कप-प्लेट फूट गए हैं, तो वास्तव में वे किसने फोड़े? वह निवार्य था या अनिवार्य? हमेशा अपने मातहतों को ही डाँटते हैं। सुपरवाइज़र को क्यों

नहीं डाँटते? वहाँ पर कैसे चुप रहते हैं! एक तो प्याले गए और दूसरा क्रोध किया, ये दो नुकसान कैसे पुसाएँगे? ऊपर से सामनेवाले के साथ जन्मोजन्म के लिए बैर बँधा, वह फायदा! इस प्रकार 'ज्ञानीपुरुष' ने क्रोध, वह होने के कारण, और उसका उपाय, सब तरफ से देखकर हमारे समक्ष प्रस्तुत किए हैं!

क्रोध नहीं हो, उसके लिए 'ज्ञानीपुरुष' सम्यक उपाय समझाते हैं कि खुद की भूल को ज्ञानी के सत्संग में समझ लो तो फिर क्रोध नहीं होगा। 'क्रोध बंद करो, बंद करो' ऐसा उपदेश कितने ही काल से मिल रहा है, जबकि विज्ञान क्या कहता है कि क्रोध, वह परिणाम है, परिणाम किस तरह बंद किया जा सकता है? यह परिणाम किस आधार पर आता है, वह जानना है। खुद क्रोध की संपूर्ण स्टडी कर लेनी है। कहाँ-कहाँ पर क्रोध आता है, कहाँ-कहाँ नहीं आता, कुछ लोग हमारा लाख भला करें फिर भी वहाँ पर क्रोध आए बगैर नहीं रहता और कोई लाख उल्टा करे तो भी वहाँ पर क्रोध नहीं आता। उसका क्या कारण है? जैसी जिसके लिए ग्रंथि बन गई है, वैसी ही फूटे बगैर नहीं रहती। तो वहाँ पर क्या करना चाहिए? ज्ञानी चाबी देते हैं कि उस व्यक्ति के साथ जितने समय तक क्रोध होना है उतना होगा ही, लेकिन अब नये सिरे से उसके लिए मन नहीं बिगड़ने देना चाहिए। वहाँ खुद के ही कर्मों के उदय को देखकर, सामनेवाले को निर्दोष देखते रहना चाहिए। जब मन सुधर जाएगा, तब उस पर क्रोध नहीं होगा। मात्र पहले के असर देकर फिर हमेशा के लिए बंद हो जाएगा। जब दूसरों के दोष देखने बंद होंगे, तभी मनचाहा परिणाम आएगा।

परिणाम को ज़रा भी हिलाए बिना कारण का नाश करने का मूलभूत मार्ग इतनी बारीकी से ज्ञानी के अलावा और कौन बता सकता है? ज्ञानी हममें जागृति ला दें, उसके बाद ही यह सब सूक्ष्मता से दिखता है और उसके बाद वह दूर होता है।

१९. व्यापार की अड़चनें

जो अड़चनों को प्रिय बनाए वह प्रगति करता है और अड़चन को

अप्रिय माने उसकी प्रगति रुँध जाती है। सामनेवाला अड़चन डाले, वहाँ पर वीतराग रहकर आगे चलने लगे तो मोक्ष में पहुँच पाएगा।

समता का सूक्ष्म स्पष्टीकरण ज्ञानी देते हैं। व्यवहार के लक्ष्यसहित बरतनेवाली समता अहंकार बढ़ानेवाली होती है और वह ढीठ बनने में परिणामित होती है। जहाँ पर आत्मज्ञान है, वहीं पर सच्ची समता बर्तती है।

इस कलियुग में तो जैसे-जैसे इच्छापूर्ति होती जाती है, वैसे-वैसे अहंकार बढ़ता जाता है और टकराता है। इच्छा के अनुसार नहीं हो तो अहंकार ठिकाने रहता है।

व्यापार में फायदे-नुकसान के असर में इन्वोल्व हो चुके लोगों को 'ज्ञानीपुरुष' एक ही वाक्य में जागृत कर देते हैं कि...

'लेकिन यदि नुकसान हो रहा हो तो दिन में होना चाहिए न? रात को भी यदि नुकसान होता हो तो रात को तो हम जागते नहीं हैं, तो रात को कैसे नुकसान होता है? र्थात् नुकसान के और फायदे के कर्ता हम नहीं हैं, नहीं तो रात को नुकसान कैसे हो सकता है? और रात को फायदा किस तरह होता है? अब, क्या ऐसा नहीं होता कि मेहनत करते हैं फिर भी नुकसान होता है?' – दादाश्री

नुकसान के संयोगों में घिरे हुए लोगों को 'ज्ञानीपुरुष' सुंदर मार्ग दिखाते हैं कि खूब मेहनत करने के बावजूद भी कुछ नहीं हो पाता! नुकसान अधिक हो, तब संयोग साथ नहीं दे रहे ऐसा करके वहाँ पर अधिक ज़ोर लगाने के बजाय उस समय हमें आत्मा के लिए कर लेना चाहिए।

सुनार की नज़र मिलावटवाले सोने की तरफ नहीं, लेकिन उसी तरफ होती है कि उसमें प्योर सोना कितना है। इसीलिए तो वह ग्राहक को डाँटता नहीं है कि इतनी मिलावट कहाँ से कर लाया? ज्ञानी तत्वदृष्टि से देखते हैं, अवस्थादृष्टि से नहीं! फिर जगत् निर्दोष ही दिखेगा न?

'जगत् पूरा ही निर्दोष है। मुझे खुद को निर्दोष अनुभव में आता है,

आपको वह जब निर्दोष अनुभव में आएगा, तब आप इस जगत् से छूटोगे।'
– दादाश्री

व्यापार में घरवालों के साथ एकमत होकर रहना चाहिए, लेकिन साथ ही सब को मिलकर तय कर लेना चाहिए कि 'इतनी संपत्ति इकट्ठी हो जाए, तभी तक व्यापार करना है।' ऐसी लिमिट बना लेनी चाहिए। आयुष्य का एकस्टेन्शन मिल रहा हो तो अन्‌लिमिटेड व्यापार करना काम का, वर्ना इसकी भागदौड़ में ज़िंदगी खत्म हो जाए तो फिर आत्मा के लिए कब हो पाएगा?

पैसे कमानेवाले खटपट करनेवाले जल्दबाज़ लोगों को 'ज्ञानीपुरुष' उसके परिणाम दिखाते हैं कि,

'१९७८ में कमाने की बहुत जल्दबाज़ी करें तो १९८८ में अपने पास जो संपत्ति आनेवाली थी, वह अभी १९७८ में आ जाएगी, उदीरणा (भविष्य में फल देनेवाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना) *हो जाएगी, फिर १९८८ में क्या करेंगे आप?'*
– दादाश्री

लोकसंज्ञा के अनुसार चलकर लोग गलत करना सीख जाते हैं। लोगों को चालाकी करके कमाई करते हुए देखे तो खुद भी वह ज्ञान सीखकर वैसे ही करने लगता है। वहाँ पर 'ज्ञानीपुरुष' भयसिग्नल दिखाते हैं कि, जितना 'व्यवस्थित' में है, उतना ही तुझे मिलेगा जबकि चालाकी से कर्म बँधेंगे और एक भी पैसा बढ़ेगा नहीं! नासमझी से कितना बड़ा नुकसान उठाते हैं?

व्यापार में गलत करनेवाले पर 'ज्ञानीपुरुष' शाब्दिक प्रहार करते हुए समझाते हैं,

'लेकिन गलत करते ही क्यों हो? ऐसा सीखे ही कहाँ से? कोई कुछ अच्छा सिखाए तो वहाँ से अच्छा सीखकर आओ। यह गलत करना किसी से सीखे हो, इसीलिए तो गलत करना आता है, नहीं तो गलत करना

आएगा ही कैसे? अब गलत सीखना बंद कर दो और अब गलती के सभी कागज़ जला डालो।'
– दादाश्री

नुकसान का असर ही नहीं हो, उसके लिए 'ज्ञानीपुरुष' सुंदर चाबी देते हैं। पाँच सौ रुपये का नुकसान हो तब, पहले से ही जो 'अमानत' नुकसान के समय के लिए रखी हुई हो वह पूँजी उस खाते में जमा कर लेनी चाहिए। यह क्या स्थायी बही है?

ज्ञान से पहले 'उन्हें' व्यापार में नुकसान हुआ था, तो रात को नींद भी नहीं आई। लेकिन हिसाब लगाया कि इस नुकसान में हिस्सेदार कौन-कौन हैं? हिस्सेदार, उनके बीवी-बच्चे, खुद की पत्नी वे सभी हैं, और चिंता खुद अकेले ही सिर पर लें, ऐसा कैसा? और तुरंत ही वे चिंतामुक्त हो गए! ज्ञानी की कैसी ग़ज़ब की विचक्षणता! व्यापार में भी लोग चोरियाँ करते थे, उसे जान-बूझकर होने देते थे। जिसे हिसाब चुकाने ही हैं, उनके लिए चोर ले जाए या और कोई ले जाए, दोनों एक समान ही हैं न?

२०. नियम से अनीति

व्यवहार मार्ग से मोक्ष की ओर क्रमपूर्वक आगे बढ़नेवालों को 'ज्ञानीपुरुष' इस काल के अनुरूप ऐसा मार्ग बताते हैं कि जो बिल्कुल नया ही अभिगम (दृष्टिकोण) है कि,

'संपूर्ण रूप से नीति का पालन कर, वैसा भी नहीं हो सके तो नीति का नियम से पालन कर और वैसा भी नहीं हो सके और अनीति करे तो भी वह नियम में रहकर कर। नियम ही तुझे आगे ले जाएगा!'
– दादाश्री

अनीति भी मोक्ष में ले जाएगी, लेकिन नियम में रहकर। ज्ञानी की इस बात ने तो धर्म में ग़ज़ब की क्रांति सर्जित की है! व्यवहार में नीति के आग्रही अंत में अहंकार की विकृति में परिणामित होकर मार्ग से च्युत हो जाते हैं, वहीं पर नियमपूर्वक की गई अनीति मार्ग में आगे ले जा सकती

है! नीति-अनीति का महत्व खत्म करके नियम को प्रधानता देकर 'ज्ञानीपुरुष' ने नई राह दिखाई है और उस प्रकार से मोक्ष में पहुँचने की खुद, भगवान के-वीतरागों के प्रतिनिधि के रूप में गारन्टी देते हैं!

अनीति में, कि जहाँ पर नियम रह सके ऐसा है ही नहीं, वहाँ पर जो नियम रखना जानता है, उसका मन कैसे बाउन्ड्री में आ जाता है! भूखा रहना आसान है, लेकिन 'तीन ही कौर खाओ!' इस प्रकार से कंट्रोल करना बहुत कठिन है! वैसी कठिनता को जो पार कर जाए, उसकी शक्तियाँ कैसी गज़ब की खिलेंगी!

नियमपूर्वक अनीति के सटीक उदाहरणों द्वारा विशेष स्पष्टीकरण दे देते हैं! नियम से उसका मन बंध जाता है, इतना ही नहीं, लेकिन नीति से जो कैफ़ चढ़ जाता है वह, 'खुद अनीति कर रहा है' ऐसा भान रहने से नम्रता में रहता है, जिसकी मोक्षमार्ग में विशेष रूप से आवश्यकता है, नीति के बजाय! नियमपूर्वक अनीति में फिर घोटाला नहीं करना चाहिए, उतनी ही उसके लिए चेतावनी भी दी है। घोटाला करनेवाले की ज़िम्मेदारी दादाश्री खुद स्वीकार नहीं करते।

'नीति का पालन नहीं हो पाता' ऐसा करके अनीति में डूब रहे लोगों को दादाश्री नियमपूर्वक अनीति के तिनके से संसार पार करवा देते हैं! ऐसी ज़िम्मेदारी, कौन लेगा? और भगवान के वहाँ पर नीति पर राग नहीं और अनीति पर द्वेष नहीं है, वहाँ तो अहंकार करने पर आपत्ति है!

कोई भी वस्तु नियमपूर्वक की जाए, और वह भी 'ज्ञानीपुरुष' की आज्ञापूर्वक, तो वह अवश्य मोक्ष में ले जाएगी। ज्ञानी की आज्ञा इसमें मुख्य भूमिका अदा करती है, 'ज्ञानीपुरुष' इस प्रकार से खुलासा करते हैं।

नीति का पालन करनेवाला जब संयोगों के शिकंजे में फँस जाए, तब अनीति करने लगता है और उसमें फँस जाता है, वहाँ पर 'नियमपूर्वक अनीति' के इस माध्यम द्वारा आगे मार्ग पार किया जा सकता है। अनीति में भी 'नो नेगेटिव पॉलिसी,' इस अक्रम मार्ग का विज्ञान तो देखो!

२१. कला, जान-बूझकर ठगे जाने की

'ज्ञानीपुरुष' ने जीवन में एक सूत्र संपूर्ण रूप से आत्मसात कर लिया होता है, 'जान-बूझकर ठगे जाना।' कैसी विशेषता! ठगने वाले की मेहनत बेकार नहीं जाए, ज्ञानी उसका ख्याल रखते हैं। और फिर ठगनेवाले के साथ कषाय हों उसके बजाय ठगे जाने पर कषाय में से मुक्ति का मार्ग उन्होंने ढूँढ निकाला! जो जान-बूझकर ठगे जाते हैं, वे मोक्ष में जाते हैं। ब्रेन ऐसा टॉप तक डेवेलप होता है कि सुप्रीम कोर्ट के जज को भी मात दे। अनजाने में तो पूरी दुनिया धोखा खा ही रही है न? 'धोखा नहीं खानेवाले' तो किसी को भी मिल जाएँगे, लेकिन 'जान-बूझकर धोखा खाए' ऐसे कहाँ से मिलेंगे?

ज्ञानीपुरुष ने इस जगत् को कैसे स्वरूप में देखा होगा? कोई पैसा हड़प जाए, वह भी करेक्ट ही है। 'आप साफ हो, तो कोई आपका नाम भी नहीं देगा, ऐसा है यह जगत्।' कहीं भी घबराने जैसा नहीं है। फिर भी 'मेरा नाम कौन देगा?' ऐसा चेलेन्ज देने जैसा नहीं है। जगत् पूर्ण रूप से न्यायस्वरूप है। 'ज्ञानीपुरुष' वह हिसाब निकालकर बैठे होते हैं।

सरकार के कानून को तोड़कर अपने रुपये कोई हड़प ले जाए, लेकिन नेचर के कानून किसी से कैसे तोड़े जा सकते हैं? नेचर का कानून तो, उस रकम को ब्याज के साथ चुकवाएगा। एक-एक परमाणु का हिसाब जहाँ पर करेक्ट है, वहाँ पर घबराना कैसा! हम यदि करेक्ट हैं तो लुटेरों के गाँव में से लुटे बिना आरपार निकल पाएँगे, नहीं तो जहाँ पर हिसाब है, वहाँ पर लाख प्रोटेक्शन के बावजूद भी लुट जाएँगे!

कर्ज़दार के विवेक के उपदेश बहुत सुने हैं, लेकिन वसूलनेवाले को भी उतना ही विवेक रखना है, ऐसा 'इन' ज्ञानी ने ही कहा! पैसों की क़ीमत की बजाय यह अधिक महत्वपूर्ण है कि मन कमज़ोर नहीं पड़ जाए।

वसूलनेवाले को एक सुंदर चाबी देते हैं। किसी को पैसा देते समय

भीतर बटन दबा देना कि यह पैसा हम काली चिंदी में बाँधकर समुद्र में डाल रहे हैं!

वसूली करनेवाला अगर कर्ज़दार को गालियाँ दे, तो वे गालियाँ लेन-देन के व्यवहार में 'एकस्ट्रा आइटम' हैं। उसका हिसाब क्या है, वह 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा क्या किसी और ने सोचा?

अपना भाव शुद्ध है तो कितना भी कर्ज़ा होगा, लेकिन वह चुक ही जाएगा, ऐसा कुदरत का नियम है। भाव में इतना ही होना चाहिए कि जल्दी से जल्दी उधार चुका दूँ!

२२. वसूली की परेशानी

इन 'ए. एम. पटेल' ने व्यापार में कैसा व्यवहार किया है? जहाँ-जहाँ लेना था वहाँ पर खुद ने ही वसूलना बंद कर दिया, ताकि फिर से कोई माँगने ही नहीं आए, और इस प्रकार इस व्यापार में से छूटे। अरे, उन्होंने तो इतनी हद कर दी कि पाँच सौ रुपये की वसूली करने जाते हुए, सामनेवाला कहने लगा कि 'मुझे ही आप से पाँच सौ रुपये लेने हैं।' तब उन्होंने 'चलो, हिसाब पूरा हुआ' कहकर चुपचाप चुका दिए!

२३. रुकावट डालने से पड़ते हैं अंतराय

कार्य की सफलता की इच्छा कौन नहीं रखता? लेकिन उसका रहस्य क्या है? ज्ञानी कहते हैं, 'तेरा विल पावर होगा तो वह कार्य सफल होगा ही।' अपना भाव और दुआ दोनों ज़रूरी हैं। संपूर्ण निरीच्छक पद तक पहुँचे हुए की दुआ प्राप्त हो तो क्या से क्या प्राप्त हो जाए!

अंतराय कैसे पड़ते हैं? खुद के ही विचारों से डाली हुई रुकावटों से। वह छूटे किस तरह? उसके प्रतिस्पर्धी विचारों से - 'मुझसे पहाड़ नहीं चढ़ा जाएगा' अंदर ऐसा विचार आए, तो वहाँ पर चढ़ने में अंतराय पड़ेंगे ही और 'क्यों नहीं चढ़ सकता?' कहा तो वहाँ पर अंतराय टूटेंगे ही। किसी को लाभ हो रहा हो, वहाँ पर रुकावट डालें तो हमें लाभ के अंतराय आएँगे ही।

जहाँ अंतराय कर्म नहीं रहें, वहाँ पर पूरे ब्रह्मांड का वैभव प्रकट होता है। 'खुद परमात्मा ही है,' 'ज्ञानीपुरुष' ऐसा स्पष्ट देखते हैं लेकिन तुझे अनुभव में नहीं आता। क्योंकि खुद ने ही खुद के लिए अंतराय डाले हैं, 'मैं चंदूलाल हूँ' करके...। 'ज्ञानीपुरुष' से मिलने पर वे अंतराय टूटते हैं और भगवान से भेंट हो जाती है!

– **जय सच्चिदानंद**

– **डॉ. नीरूबहन अमीन**–

अनुक्रमणिका

१. जागृति, जंजाली जीवन में...

२. लक्ष्मी की चिंतना

३. उलझन में भी शांति!

४. टालो कंटाला!

५. चिंता से मुक्ति

६. भय में भी निर्भयता

७. कढ़ापा-अजंपा

८. सावधान जीव, अंतिम पलों में

९. निष्क्लुशितता, ही समाधि है

१०. फ्रैक्चर हो, तभी से आदि जुड़ने की!

११. पाप-पुण्य की परिभाषा

१२. कर्तापन से ही थकान

१३. भोगवटा, लक्ष्मी का

१४. पसंद, प्राकृत गुणों की

१५. दुःख मिटाने के साधन

१६. बॉस-नौकर का व्यवहार

१७. जेब कटी? वहाँ समाधान!

१८. क्रोध की निर्बलता के सामने

१९. व्यापार की अड़चनें

२०. नियम से अनीति

२१. कला, जान-बूझकर ठगे जाने की

२२. वसूली की परेशानी

२३. रुकावट डालने से डलें अंतराय

❖❖❖❖❖

आप्तवाणी श्रेणी - ७

[१]

जागृति, जंजाली जीवन में...

संसार के सार रूप में क्या पाया?

परवशता नहीं लगती? ऐसा जीवन सब पसंद है? परवशता लगे तब क्या करते हो आप, उस घड़ी? राजा का बेटा हो और जंगल में खो जाए, तो फिर भीख भी माँगेगा! 'अरे! राजा का बेटा है, फिर भी भीख माँग रहा है?' तब कहे, 'और कोई चारा ही नहीं न!' ऐसा है यह संसार! यह कैसे पसंद आए? ऐसा संसार आपको क्यों पसंद है? ऐसी कुछ भावना होती है कि अब देहाध्यास कुछ छूटे? देहाध्यास छोड़कर मोक्ष में चले जाना है, अब इस संसार में नहीं रहना है, ऐसी भावना तो होती है न? लेकिन फिर मनुष्य वापस भूल जाता है!

मार खाता है और फिर भूल जाता है, वापस मार खाता है और भूल जाता है, यह मोह कहलाता है! मार खाई थी उस घड़ी तय तो किया था लेकिन फिर से इस मोह ने जकड़ लिया, इसमें तो चूसने को क्या है? यह निरी गंदगी है, जूठन है!

इस संसार का वर्णन यदि 'ज्ञानीपुरुष' से सुने तो उसे सुनते ही पागल हो जाए! यह तो अंधेरे में सबकुछ चलता रहता है। फिर भी संसार का दोष नहीं है। संसार तो बेचारा अच्छा है, आपकी समझ ही उल्टी है। उसमें यह संसार क्या करे? आप ही मान बैठे हो कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ,' 'मैं ही ब्राह्मण हूँ' ऐसा सब उल्टा मान बैठे, उसमें संसार का क्या दोष? संसार में तो ये (ज्ञान प्राप्त महात्मा) सभी रहते ही हैं न? और मैं क्या संसार से बाहर निकल गया हूँ? हम भी कहते हैं कि 'इस सेठ का मैं चाचा हूँ' लेकिन जिस तरह आप वह कहते हो उस तरह से हम नहीं कहते। हम व्यवहार से कहते हैं। यह तो व्यवहार से पहचानने का साधन है। अन्य कोई साधन नहीं है। वास्तव में वह चाचा हैं ही नहीं। यानी वास्तव में यदि चाचा होते न, तो हमें कोई चाचा बनने ही नहीं देता। यानी वास्तव में चाचा होते ही नहीं, यह तो व्यवहार में पहचानने का साधन है कि ये मेरे चाचा हैं, ये मेरे मामा हैं लेकिन वह वास्तविक रूप से नहीं है। आपको पसंद आई ये सारी बातें?

इस तरह माया की मार खा-खाकर दम निकल गया। माया यानी कौन? खुद के स्वरूप की अज्ञानता, वही माया। यदि यह अज्ञानता चली जाए तो संसार दुःखदायी नहीं है। संसार कष्टदायी नहीं है। संसार किसी भी प्रकार से बाधक हो सके, ऐसा नहीं है। मैं व्यापार भी करता हूँ, मुझ पर सेल्सटैक्स की, इन्कमटैक्स की तलवारें लटकती हैं। कोई कहेगा कि, 'ये तो साधु हो चुके हैं, और हम तो संसारी हैं।' तो आप ऐसी जुदाई मानना मत। मैं आपके जैसा ही हूँ। फिर भी ऐसे पद में रहा जा सकता है, ऐसा आप मुझे देखो तो ऐसी हिम्मत आएगी कि ये संसारी हैं तो हमसे भी क्यों नहीं रहा जा सकता? जबकि उन संन्यासियों ने संसार छोड़ दिया हो तो हमारे मन में ऐसा लगता है कि, 'भाई, इन्हें तो इन्कमटैक्स नहीं, सेल्सटैक्स नहीं, खाने-पीने की कोई मुश्किल नहीं, वे तो कर सकते हैं। इनके जैसा हमसे नहीं

हो पाएगा।' ऐसा हमें एक फर्क लगता है, लेकिन यहाँ पर ऐसा फर्क नहीं रहता। यह तो मैं रूबरू ही हूँ न?

संसार में कितने प्रकार की चुभन? एक ही प्रकार की चुभन काटती है। सभी चुभन एकसाथ एकदम से नहीं काटतीं। सभी बारी-बारी से काटती हैं। एक काट चुके तब फिर दूसरी आकर काटती है, फिर तीसरी आकर काटती है। चुभन निरंतर काटती ही रहती है। सभी उलझे हुए हों तो क्या हो सकता है? काटेंगे तो सही न? उलझाएँगे भी सही न?

जंजालों में जकड़े हुए जीवन!

यह संसार जंजाल छोड़ने से छूट पाए, ऐसा नहीं है, यह ज्ञान से छूटे, ऐसा है। कितने समय से जंजाल से छूटने की इच्छा हो रही है? जवानी में तो छूटने की इच्छा होती नहीं, जवानी में तो जंजाल बढ़ाने की इच्छा होती है न?

प्रश्नकर्ता : वह तो बुढ़ापे में भी छूटने की इच्छा नहीं होती, लेकिन अब आपकी तरफ से कुछ प्रयत्न होंगे तो छूट पाएँगे।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। बुढ़ापे में भी जंजाल में से छूटने की इच्छा नहीं होती, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : इसमें से छूटने का कोई रास्ता?

दादाश्री : इस जंजाल में से छूटने का रास्ता यही है कि 'हम कौन है?,' वह ज्ञान प्राप्त हो जाए 'ज्ञानीपुरुष' से, तो छूट जाएँगे ऐसा है। जंजाल किसी को भी पसंद नहीं है। आपको पसंद है क्या यह जंजाल?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : बिल्कुल नहीं? कोई फूलमाला पहनाए तो?

प्रश्नकर्ता : वह जोखिम लगता है।

दादाश्री : लेकिन पसंद तो है न? जोखिम तो ऐसा है न कि यह सब जोखिम ही है। लेकिन पसंद है न? मीठा लगता है न? वास्तव में सभी जंजालें पसंद नहीं हैं, लेकिन यहाँ पर रहने जितना उसे थोड़ा-बहुत पसंदीदा चाहिए कि यहाँ पर बैठूँ या वहाँ पर बैठूँ? यानी जहाँ पर पसंद आए वहाँ पर बैठता है, उस जैसा है! इस जंजाल में से कभी छूटने की इच्छा होती है क्या? जंजाल पसंद ही नहीं है न? यह तो जंजाल में घुसे हुए हैं! जब तक नहीं छूट पाएँ, तब तक यह सब खाना-पीना, जैसा सब लोग करते हैं वैसा करते रहना है। लेकिन यदि छूटने को मिल जाए, 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो छूट जाएगा। इस जंजाल में से छूट जाए तो परमानंद! मुक्ति!

मनुष्यों को ये क्रोध-मान-माया-लोभ एक क्षणभर भी चैन से नहीं बैठने देते। निरंतर छटपटाहट, छटपटाहट, छटपटाहट! ऐसा आपने देखा है? यह मछली तड़फड़ाती है न? जैसे पानी से बाहर निकालने पर मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही ये मनुष्य बिना बाहर निकाले ही तड़फते हैं। घर में हों तब भी तड़फाड़ती, ऑफिस में जाए तब भी तड़फाड़ती, पूरे दिन तड़फड़ाहट! अब यह तड़फड़ाहट मिट जाए तो कितना आनंद रहे? देखो, हमें तड़फड़ाहट मिट गई है तो कैसी-कैसी बातें निकलती हैं न? पूरे जगत् को तड़फड़ाहट, तड़फड़ाहट और तड़फड़ाहट ही रहनेवाली है। इन्हें तो, यदि अच्छा भोजन हो, फिर भी खाते समय भीतर तड़फड़ाहट बंद नहीं होती। बोलो, किस तरह जी पाते हैं यह भी आश्चर्य है न?

जीवन जीना सीखो

बड़े फ्लेटवाले के वहाँ पर बाथरूम और संडास रूम जितने बड़े होते हैं और भगवान का झरोखा तो इतना सा ही होता है। मंदिर जितने बड़े तो संडास बनाए! संडास में किसके दर्शन करने हैं? यह तो अपने को भी शरम आए! एक सेठ ने मुझे कहा कि देखो भगवान के लिए यह झरोखा है। फिर बाथरूम दिखाया

और तीन बड़े संडास दिखाए! मुझे फ्लेट दिखाने ले गए थे कि 'आईए, मेरे घर पर आईए। चाय पीकर जाइए।' तो हम वहाँ गए थे। जैसे स्मशान रूम में बैठे हों न, वैसा लग रहा था, कुछ ठंडक ही नहीं लगे!

'मेरे लिए हितकारी क्या है' इतना तो सोचना चाहिए न? कि विवाह किया उस दिन का आनंद याद करें तो हितकारी है या वैधव्य आया उस दिन का शोक याद करें तो हितकारी है? विवाह किया उस दिन का आनंद याद करें तो वह अपने लिए हितकारी है। वैधव्य के शोक का क्या करना है? दो जन विवाह करने बैठते हैं तभी से दोनों में से एक को तो वैधव्य भोगना ही है। यह विवाह करने का सौदा ही ऐसा किया है और उसमें फिर क्या कलह? जहाँ पर सौदा ही ऐसा हो, वहाँ पर कलह होती होगी? दोनों में से एक वैधव्य नहीं भोगेगा?

जो सुगंध फैलाए, वास्तव में वही जीवन

इज़्ज़तदार तो किसे कहते हैं कि जिसकी सुगंध आए। ये तो ढँकते फिरते हैं। यों तो काला बाज़ारी करते हैं और फिर ढँकते रहते हैं। झूठ बोलते हैं, लुच्चाई करते हैं, हरामखोरी करते हैं, फिर भी ढँकते रहते हैं। ये मिलावट नहीं करते अभी? और फिर हम कहें कि मिलावट करनी चाहिए या नहीं?' तो कहेंगे कि, 'नहीं करनी चाहिए।' अरे, तू मिलावट करके आया है और फिर कहता है कि नहीं करनी चाहिए? यह किस प्रकार का ज्ञान है? लेकिन इसमें उसका दोष नहीं है, उसके साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स बदले हैं।

उसमें उसके सामने चूड़ियाँ रखें तो वह क्या करेगा? जैसे न जाने कितनी इज़्ज़त चली गई! और घर पर पत्नी झिड़कती रहती है। घर पर पत्नी झिड़कती है या नहीं झिड़कती? जमाना क्या ऐसा नहीं है? जानते हो, कैसे झिड़कती है? 'आज खाना नहीं दूँगी,' ऐसा भी कहती है। वह फिर बाहर किसी से कह

नहीं देता। हम कहें कि, 'कैसी हैं, आपकी पत्नी?' तो वह भाई कहेगा कि, 'यह पत्नी तो, कितने ही पुण्य किए होंगे इसलिए मुझे मिली है' फिर ऐसा बोलता है! क्यों ऐसा बोलता होगा? आबरू ढँकता है। वह समझता है 'कि कोई जान जाएगा तो मेरी आबरू चली जाएगी।' अरे, आबरू है ही कहाँ? किसकी आबरू है? आबरूदार तो कोई दिखता ही नहीं बाहर! इसे जीवन कैसे कहेंगे? जीवन कितना सुशोभित होना चाहिए! एक-एक व्यक्ति की सुगंध आनी चाहिए। आसपास कीर्ति फैली हुई हो कि कहना पड़े, 'ये सेठ रहते हैं न, वे कितने सुंदर, उनकी बातें कितनी अच्छी, उनका व्यवहार कितना सुंदर!' ऐसी कीर्ति सब ओर दिखती है? ऐसी सुगंध आती है लोगों की?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभार किसी-किसी की सुगंध आती है।

दादाश्री : किसी-किसी इंसान की, लेकिन वह भी कितनी? तब फिर उनके घर पर पूछो न, तो दुर्गंध मार रहा होता है। बाहर सुगंध आती है लेकिन उसके घर पर पूछो तब कहेंगे कि, 'उसका नाम ही मत लो। उसकी तो बात ही मत करना।' अतः यह सुगंध नहीं कहलाएगी।

हिन्दुस्तान के मनुष्य ऐसे तो कैसे हो सकते हैं? आपको कैसा लगता है हिन्दुस्तान का डेवेलपमेन्ट? सभी डेवेलपमेन्ट में सबसे टोपमोस्ट डेवेलपमेन्ट अपने भारत देश का है। यानी कि हम लोग अध्यात्म में संपूर्ण डेवेलप हैं लेकिन भौतिक में अन्डरडेवेलप्ड हैं। भौतिक में अपना संपूर्ण डेवेलपमेन्ट नहीं है, लेकिन अध्यात्मिक में तो हम पूरे डेवेलप्ड हैं। तो अपनी सुगंधी तो होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए?

बच्चे को आप टोकते रहो तो बच्चा विरोध करेगा या नहीं? मनुष्य तो कैसा होना चाहिए? सुगंधीवाला होना चाहिए। लाइफ सुगंधीवाली होनी चाहिए। सुगंधी होगी तो शोभा देगा न? अपने में सुगंधी आए तो जगत् पूरा बदलेगा। लेकिन यह तो खुद में

ही बरकत नहीं है और लोगों को बदलने निकले हैं ये लोग! यह तो एक प्रकार का व्यापार लेकर बैठे हैं। फिर भी, शराब पीए, मांसाहार करे और उल्टे रास्ते पर चला जाए उससे तो यह अच्छा है!

अपने हिन्दुस्तान के एक-एक मनुष्य में कितनी अधिक शक्ति है? ज़बरदस्त शक्तियाँ हैं, भीतर अनंत शक्ति है! लेकिन अगर 'ज्ञानीपुरुष' से भेंट हो जाए तो वे शक्ति को व्यक्त कर देंगे। अर्थात् शक्ति तो उसमें भरी हुई हैं सारी, लेकिन अप्रकट रहती है और ऐसे करते-करते बूढ़े हो जाते हैं और अंतिम स्टेशन तक पहुँच जाते हैं। ऐसा मनुष्य जन्म भी देखो बिना काम के बेकार चला जाता है! बहुत बुद्धिशाली को भी एक दिन बुद्धू होना पड़ेगा। यानी बुद्धि की भी नॉर्मेलिटी ही अच्छी।

नकलों में जाने क्या ही मान बैठे!

नया पेन्ट पहनकर दर्पण में देखता रहता है। 'अरे, दर्पण में क्या देख रहा है?' यह किसकी नकल कर रहा है, वह तो देखो! अध्यात्मवाले की नकल की या भौतिकवाले की नकल की? यदि भौतिकवाले की नकल करनी हो तो वे अफ्रीकावाले हैं, उनकी क्यों नहीं करते? लेकिन ये तो साहब जैसे लगने के लिए नकलें कीं, लेकिन तुझमें बरकत तो है नहीं! किसलिए 'साहब' बनने को फिरता है? लेकिन साहब बनने के लिए ऐसे यों दर्पण में देखता है, बाल जमाता रहता है। और खुद मानता है कि अब ऑलराइट हो गया हूँ। फिर पतलून पहनकर ऐसे पीछे हथेलियाँ मारता रहता है। अरे, किसलिए बिना काम के मारता रहता है? कोई बाप भी देखनेवाला नहीं है। सभी अपने-अपने काम में पड़े हुए हैं। अपनी-अपनी चिंता में पड़े हुए हैं। तुझे देखने के लिए कौन फालतू है? सभी अपनी-अपनी झंझट में पड़े हुए हैं। लेकिन खुद अपने आपको न जाने क्या ही मान बैठा है! मन में मानता है कि यह तीन सौ रुपये मीटर का कपड़ा है, इसलिए लोग

मेरी क़ीमत करेंगे। लेकिन इसे देखने के लिए भी कोई फालतू नहीं है न! लेकिन फिर भी मन में फूला नहीं समाता, और थोड़ा भी घर से बाहर जाना हो न, तो पेन्ट बदलता रहता है। 'एय, दूसरी पेन्ट लाओ!' फिर कहेगा, 'यह नहीं, टेरेलीन की पेन्ट लाओ।' ये लोग क्या ऐसे–वैसे हैं?! अरे, क्या मान लिया है तूने यह? तुझे देखने के लिए कोई बाप भी फालतू नहीं। तुझमें देखने जैसा है ही क्या? लेकिन फिर भी अच्छी पेन्ट पहनकर मन में न जाने क्या मानता रहता है! ऐसा है यह जगत्!

इस काल की बातें तो हैं न, मैंने ऐसा एक भी इंसान नहीं देखा कि जिसकी बात करेक्ट हो। आधे पागल जैसे, हाफमेन्टल लोग हैं। इसीलिए पहले एक बार तो, इनकी बातों को उतरने ही मत देना, पहले जाँच करना। वर्ना तो यदि उतरने दोगे न, तो आपको इफेक्ट होगा, यानी कि ये आधे पागल जैसों का काल है। अभी तो अपने को कहने आते हैं कि 'आपका गोडाउन जल रहा है।' तब पूछना चाहिए कि, 'हमारा गोडाउन जल रहा है?' तब कहेगा कि, 'मैं अभी देखकर ही आ रहा हूँ न!' फिर आराम से पानी–वानी पीकर हमें जाना चाहिए। पता लगाएँ कि हकीकत में है क्या? अब वह कहता है कि आपका ही जल रहा है। फिर भी हम कहें कि 'नहीं, ज़रा पता तो लगाएँ!' तब वहाँ जाकर देखे तो नगीनभाई का जल रहा होता है, यानी इस जगत् का कुछ ठिकाना नहीं है! किसी भी बात के लिए कोई ठिकानेवाला आदमी मैंने देखा ही नहीं।

ऐसा विचित्र है यह काल। मनुष्य बेचारे बिदके हुए घोड़ों जैसे हैं। घबराहट बैठ गई है कि 'क्या होगा, क्या होगा?' तेरा कोई बाप भी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है, वहाँ क्या हो जाएगा फिर? इतनी हिम्मत देनेवाला कोई मिले, तो भी हिम्मत आ जाएगी न? मैंने तो क्या कहा है कि तेरा *ऊपरी* कोई नहीं है। तुझमें दख़ल करनेवाला भी कोई नहीं है, और यह परमानेन्ट

बात डिसाइडेडपूर्वक कह रहा हूँ। कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है, आप ही हो। *ऊपरी,* आपके ब्लंडर्स और मिस्टेक्स दो ही हैं। ब्लंडर्स तो, जब 'ज्ञानीपुरुष' तोड़ देंगे तो टूटेंगे। उसके बाद भूलें निकल जाएँगी। नहीं तो ब्लंडर्स निकल सकें ऐसे नहीं हैं। खुद फँसा हुआ है, वह खुद से निकल पाए, ऐसा नहीं है।

समझ हिताहित की...

भगवान क्या कहते हैं कि मेरी बात को समझो, जिसे समझने से आपका हित होगा। जिसे हिताहित का भान नहीं हो, उसे मनुष्य कहेंगे ही नहीं न! जो व्यापारी नफा-नुकसान को नहीं समझता, उसे व्यापारी कैसे कहेंगे? यहाँ दुकान लगाकर बैठा है लेकिन नफे-नुकसान के व्यापार को नहीं समझे तो क्या होगा? दिवालिया निकालना पड़ेगा! उसी तरह यह हिताहित का भान अर्थात् जिससे इस लोक का हित और परलोक का हित, दोनों संभल जाएँ वह हिताहित का भान कहलाता है। सिर्फ परलोक के हित को संभाले तो एक भी नहीं संभल पाएगा। यह तो, पहले इस लोक के हित की आवश्यकता है, फिर उसमें परलोक का हित समाया हुआ ही होता है। जो इस लोक में हित करता है, उसका परलोक का हित उसमें समाया हुआ ही होता है।

जो खुद का अहित ही कर रहा हो, वह दूसरों का क्या हित करेगा? जो खुद का हित करें, वे लोग दूसरे का, पर का हित कर सकते हैं। ये लोग तो, जैसे मुँह पर अरंडी का तेल चुपड़ा हो न, ऐसे दिखते हैं। उसका क्या कारण है? 'अरंडी का तेल चुपड़ा है?' तब कहेंगे, 'नहीं, अरंडी का तेल बहुत महँगा हो गया है, वह कहाँ से चुपड़ेंगे?' यह तो भीतर पूरे दिन *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) रहा करता है कि ऐसा करूँ या वैसा करूँ? ऐसा करूँ या वैसा करूँ? ऐसा भीतर चलता रहता है! उससे फिर अरंडी का तेल चुपड़े बगैर मुँह पर तेल दिखता है! अरे, संडास जाने की तो ताक़त है नहीं! इस वर्ल्ड में कोई ऐसा

जन्मा नहीं है कि जिसकी खुद की संडास जाने की स्वतंत्र शक्ति हो। अरे, तू क्या कर रहा है यह? क्यों बेकार सोचता रहता है? सोचने की कोई हद होती होगी या नहीं होगी? दवाई पीने की हद होती है या नहीं होती? आप से कहा हो कि इस दवाई से रोग मिट जाएगा, लेकिन ऐसी सात-एक दवाई की शीशियाँ पीनी पड़ेंगी। तो यदि आप सभी डोज़ एक ही दिन में पी जाओ तो? डोज़ तो हिसाब से ही लेनी चाहिए या एक ही दिन में ले लेनी चाहिए? कुछ रात को बारह बजे तक ओढ़कर योजनाएँ गढ़ते रहते हैं। अरे, किसलिए योजनाएँ कर रहा है? यह सब तू तेरा खुद का हित बिगाड़ रहा है! इन गढ़ी जा चुकी योजनाओं को किसलिए बिगाड़ रहे हो? जो गढ़ी जा चुकी हैं, एक्सेप्ट हो चुकी हैं, मंज़ूर हो चुकी हैं, उसमें आप क्या करोगे अब? बेकार ही क्यों ऐसा करते हो? खुद अपना हित बिगाड़ रहे हो! ये तो सभी गढ़ी जा चुकी योजनाएँ हैं, इनमें आप क्यों नया गढ़ रहे हो? यह तो आप अगले जन्म का गढ़ रहे हो!

किसी के सिर पर घने बाल (माथेरान) होते हैं और किसी के सिर पर *वीरान* यानी गंजापन आ जाता है। माथेरान अर्थात् जिसके बाल मेरे जैसे घने हों, वह माथेरानवाला गंजापन ढूँढता है कि मुझे ऐसा गंजापन क्यों नहीं आता और गंजा आदमी बाल बढ़ाने की दवाई सिर पर लगाता है, ऐसा है यह जगत्! यानी अपने लिए तो जो हुआ वही सही! गंजापन आया तो गंजापन सही और रान रहा तो रान सही। किसी का देखकर हमें क्या करना है? पहले एक-दो लोग मुझसे कहते थे कि, 'मेरे सिर पर गंज क्यों नहीं पड़ती?' मैंने कहा, 'तुझे गंज का क्या काम है?' तब कहता है, मैंने ऐसी कहावत सुनी है कि 'शायद ही कोई निर्धन गंजा।' जो गंजा है, वह शायद ही निर्धन होगा। यानी कि ये धनवान होने के लिए गंजापन लाते हैं! और गंजे लोग बाल उगाने के लिए दवाई लगाते रहते हैं! ऐसा यह घनचक्कर है जगत्। खुद के हिताहित का भान नहीं है। खुद के हिताहित का बिल्कुल भी भान नहीं

है। सांसारिक हिताहित का भान भी खो दिया है। सांसारिक हित किसमें है वह भी पता नहीं, तो फिर उस मोक्ष के हिताहित का भान तो कैसे हो सकता है?

अभी तो, सांसारिक हित का भान किसे कहेंगे? जिसमें नैतिकता की कक्षा हो, प्रामाणिकता की कक्षा हो, जिसका लोभ नॉर्मल हो, जिसमें कपट नहीं हो, मान भी नॉर्मल हो, उसे सांसारिक हित का भान कहेंगे। वर्ना जो एब्नॉर्मल लोग हैं, उन्हें कहीं हित का भान रहता होगा? जो लोभांध हो चुका हो, वह न जाने किसके साथ सिर टकरा दे, वह कैसे कहा जा सकता है? जिसे सांसारिक हित का भान हो, वह मनुष्य कहलाता है। वर्ना इनका तो यदि फोटो खींचें तो लोग कहेंगे ज़रूर कि मनुष्य का फोटो है, लेकिन भीतर मनुष्य के गुण नहीं हैं।

हमें इस मनुष्यजन्म में क्या काम करना है? तब कहें कि मोक्ष हेतु के लिए पर्याप्त हो उतना, उतना ही काम पूरा करना है। मोक्ष के हेतु के लिए जो साधन मिल जाएँ, उन साधनों की आराधना के लिए ही यह मनुष्य देह है। अपने हिन्दुस्तान के लिए इतना ही है। बाकी दूसरे लोग तो जो करते हैं, वही करेक्ट है। उसमें उनकी कोई भूल है ही नहीं।

लोगों को तो खुद के संपूर्ण हित की खबर ही नहीं है। इन्हें तो शारीरिक हित की खबर है, भौतिक हित की खबर है। लेकिन अध्यात्मिक हित की उन्हें खबर नहीं है इसलिए भौतिक का ही कार्य करते हैं!

आँखें मिचीं हुई थीं तभी तक सीधा था। जागते ही वापस शोर-शराबा और कलह मचा देता है! कि 'सब टेढ़ा है, ऐसा है, वैसा है, यह चाय केतली में क्यों नहीं लाए?' अरे छोड़ न यह सब, चाय पी न शांति से! फिर भी कहेगा, 'चाय फीकी क्यों है?' वह केतली सिर पर मारे तो फिर क्या होगा? जागा और आँखें खुलीं कि कलह करके रख देता है। ऐसा माल है या नहीं?

जागा तभी से यही का यही, 'चाय केतली में क्यों नहीं लाए?' चाय कड़क नहीं बनी! अरे, सीधा रहकर पी ले न चुपचाप, कड़क और अच्छी कहे बिना! लेकिन कितनी तरह की कमियाँ निकालता रहता है। तब फिर पत्नी चिढ़ ही जाएगी न कि इन्हें आदत ही बुरी पड़ी हुई है, लेकिन मन में समझ जाती है, बोल नहीं पाती। मन में कहेगी कि, 'यह मूलतः टेढ़ा ही है। शादी करने आया तभी से टेढ़ा है।' ऐसा सब समझती है। लेकिन मुँह पर किस तरह बोले? लेकिन फिर वह सीमा में न रहे तो बहू लाज में नहीं रहती। इसीलिए एक दिन पत्नी सामने बोलती है। सुबह उठते ही कलह करती है न? असल खाने-पीने की चीज़ें हैं। किसी काल में नहीं थीं ऐसी चीज़ें मिल रही हैं, तब इन लोगों को भोगना नहीं आता। सारी समझ ही टूट गई है। 'जीवन किस तरह जीएँ?' उसका किसी प्रकार का भान ही नहीं है।

[२]

लक्ष्मी की चिंतना

लक्ष्मी की दौड़ में, हम तो नहीं हैं न?

दुनिया का कानून ऐसा है कि हिन्दुस्तान में जो बगैर बरकत के मनुष्य जन्म लेते हैं उनके वहाँ लक्ष्मी बढ़ती जाती है और जो बरकतवाला हो उसके पास रुपये नहीं आने देती। यानी यह तो बगैर बरकतवाले लोगों के यहाँ लक्ष्मी इकट्ठी हुई है और टेबल पर भोजन मिलता है। कैसे खाना-पीना चाहिए, सिर्फ वही नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : जिसे प्राप्त हो चुका है, वह अधिक पाने के लिए और जिसे प्राप्त नहीं हुआ है, वह प्राप्त करने के लिए व्यग्र क्यों रहते हैं?

दादाश्री : क्या प्राप्त करने की बात है इसमें?

प्रश्नकर्ता : यह आर्थिक बात है। भौतिक बात है। जिन्हें भौतिक की प्राप्ति हो चुकी है, उन्हें अधिक प्राप्त करने की व्यग्रता रहती है और जिन्हें प्राप्ति नहीं हुई है, वे प्राप्त करने के लिए व्यग्र रहते हैं, वह किसलिए?

दादाश्री : लोगों को रेसकोर्स में उतरना है। रेसकोर्स में जो घोड़े दौड़ते हैं, उनमें से कौन-से घोड़े को इनाम मिलता है?

प्रश्नकर्ता : पहले घोड़े को।

दादाश्री : तो आपके शहर में कौन सा घोड़ा पहले नंबर

पर है? रेसकोर्स में जो प्रथम आया, उसमें किसका नाम है? यानी कि सभी धोड़े दौड़ते रहते हैं और हाँफ-हाँफकर मर गए लेकिन पहला नंबर किसी का भी नहीं लगता। और इस दुनिया में भी किसी का पहला नंबर नहीं लगा। ये तो बिना बात की दौड़ में पड़े हुए हैं! वे हाँफ-हाँफकर मर जाएँगे! और इनाम तो एक को ही मिलेगा! इसलिए इस दौड़ में पड़ने जैसा नहीं है। हमें हमारी ओर से शांतिपूर्वक काम करते जाना है। अपने सभी फ़र्ज़ पूरे करने हैं, लेकिन इस रेसकोर्स में पड़ने जैसा नहीं है। आपको इस रेसकोर्स में उतरना है?

प्रश्नकर्ता : जीवन में आए हैं तो रेसकोर्स में उतरना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : तो दौड़ो, कौन मना करता है? जितना दौड़ा जा सके उतना दौड़ो! लेकिन हम आप से कह देते हैं कि फ़र्ज़ सही तरह से पूरे करना और शांतिपूर्वक पूरे करना। रात को ग्यारह बजे हम सब जगह पता लगाने जाएँ कि लोग सो गए हैं या नहीं सो गए? तब अगर पता चले कि लोग सो गए हैं तो आप भी ओढ़कर सो जाना और दौड़ना बंद कर देना। लोग सो गए हों और हम अकेले-अकेले बिना काम के भाग-दौड़ करते रहें, वह कैसा? यह क्या है? लोभ नाम का जो गुण है, वह सताता है।

...तो, आत्मा की भजना कब?

आपको रात-दिन लक्ष्मी के स्वप्न आते हैं?

प्रश्नकर्ता : स्वप्न नहीं आता लेकिन उस स्वप्न की इच्छा ज़रूर रखता हूँ।

दादाश्री : तो कोई तकलीफ में हो और आपके पास सौ रुपये माँगने आए, तब आपकी क्या दशा होगी? हाय बाप, कम हो जाएँगे तो? ऐसा हो जाता है? कम करने के लिए ही तो ये रुपये हैं। ये कहीं साथ में नहीं ले जाने हैं। यदि साथ में

ले जाने होते न, तो बनिये तो बहुत अक़्लवाले लोग! लेकिन अपनी जाति में पूछकर देखो, कोई ले गया है? मुझे लगता है कि अंटी में डालकर ले जाते होंगे? यदि ये पैसे साथ में ले जाए जा सकते तो हम उसका ध्यान भी करें। लेकिन वे साथ में नहीं ले जाने हैं न?

प्रश्नकर्ता : तो फिर मनुष्य मात्र की पैसे इकट्ठा करने की प्रबल वृत्ति क्यों रहती होगी?

दादाश्री : वह तो लोगों का देखकर करते रहते हैं। 'यह ऐसा करता है और मैं रह गया' ऐसा उसे होता रहता है। दूसरा, उसके मन में ऐसा रहता है कि पैसा होगा तो सबकुछ लाया जा सकेगा, पैसों से सबकुछ मिलता है। लेकिन दूसरा नियम वह नहीं जानता कि पैसे किस आधार पर आते हैं! जैसे शरीर की तंदुरस्ती हो तब नींद आती है, उसी तरह जब मन की ऐसी तंदुरस्ती हो तो लक्ष्मी जी आती हैं।

प्रश्नकर्ता : फिर भी अभी तो मोक्ष किसी को भी नहीं चाहिए, सिर्फ पैसा चाहिए।

दादाश्री : इसीलिए तो भगवान ने कहा है न, कि ये प्राणियों की मौत मर रहे हैं। कुत्ते, गधे, जिस तरह प्राणी मरते हैं न, वैसे ये लोग मर जाते हैं, बेमौत मरते हैं। हाय पैसा! हाय पैसा! करते-करते मरते हैं! पैसे का तो याद आना भी बहुत बड़ा जोखिम है, तब फिर पैसे की भजना करने में कितना अधिक जोखिम होगा? मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह आपको समझ में आता है?

प्रश्नकर्ता : वह समझ में आया, लेकिन उसमें जोखिम क्या है वह समझ में नहीं आया। उसमें तो तुरंत ही, तात्कालिक लाभ होता है न! पैसा हो तो सभी चीज़ें मिलती हैं। ठाठ-बाट, मोटर-बंगला सबकुछ प्राप्त होता है न?

दादाश्री : लेकिन क्या कोई पैसे की उपासना करता होगा?

प्रश्नकर्ता : वही करते हैं न?

दादाश्री : तो फिर महावीर की उपासना बंद हो गई और यह उपासना शुरू हो गई, ऐसा न? मनुष्य एक ही जगह पर उपासना कर सकता है, या तो पैसों की उपासना कर सकता है या फिर आत्मा की। दो जगह पर एक व्यक्ति का उपयोग नहीं रह सकता। दो जगह पर उपयोग कैसे रहेगा? एक ही जगह पर उपयोग रहता है, तो अब क्या हो? लेकिन इतना अच्छा है कि अभी मनुष्य को पैसा साथ में ले जाने की छूट दी है। वह अच्छा है न?

प्रश्नकर्ता : पैसे कहाँ साथ में ले जाते हैं? सब यहीं पर रखकर तो जाते हैं, कुछ भी साथ में नहीं आता।

दादाश्री : ऐसा! लेकिन साथ में ले जाते हैं न? नहीं, आप वह कला नहीं जानते(!) वह कला तो उन ब्लडप्रेशरवाले को पूछकर देखना कि इसकी कला कैसी है? वह आप नहीं जानते।

एक सेठ मिले थे, यों तो वैसे लखपति थे। मुझसे पंद्रह साल बड़े, लेकिन मेरे साथ बैठते-उठते थे। उस सेठ से एक दिन मैंने कहा कि, 'सेठ, ये बच्चे, सब कोट-पेन्ट पहनकर घूमते हैं और आप यह इतनी सी धोती और दोनों घुटनें खुले दिखें, ऐसा क्यों पहनते हो?' वे सेठ जिनालय में दर्शन करने जाते थे न, तो ऐसे खुले बदन दिखते थे। इतनी सी धोती, जैसे लंगोटी लपेटकर जा रहे हों, ऐसा लगता था। इतना सा बनियान और सफेद टोपी, और दौड़धाम करते हुए दर्शन करने जाते थे। मैंने कहा कि, 'मुझे लगता है कि यह सब साथ में ले जाओगे।' तब मुझे कहने लगे कि, 'नहीं ले जा सकते अंबालालभाई! साथ में नहीं ले जा सकते।' मैंने कहा कि, 'आप तो अक़्लवाले, हम पटेलों को तो समझ नहीं है लेकिन आप तो अक़्लवाली कौम। कुछ ढूँढ निकाला होगा!' तो कहने लगे कि, 'नहीं, किसी से भी नहीं ले जाया जा सकता।' बाद में उनके बेटे से पूछा कि, 'पिता जी तो ऐसा कह रहे थे।'

तब वह कहने लगा कि, 'वह तो अच्छा है कि साथ में नहीं ले जाया जा सकता। यदि साथ में ले जाया जा सकता न, तो मेरे पिता जी तो तीन लाख का कर्ज हमारे सिर पर रखकर जाएँ ऐसे हैं। मेरे पिता जी तो बहुत पक्के हैं। इसलिए नहीं ले जाया जा सकता वही अच्छा है। वर्ना पिता जी तो तीन लाख का कर्ज रखकर हमें भटका मारे।' मेरे पास तो पहनने को कोट-पेन्ट भी नहीं बचे! साथ में ले जाना होता न तो हमें खाली कर देते, ऐसे पक्के हैं!'

प्रश्नकर्ता : कर्ज करके भी ले जाते।

दादाश्री : पैसा कर्ज करके भी खुद साथ में ले जाते लेकिन यह देखो वह कहता है न कि, 'नहीं ले जा सकते वही अच्छा है, वर्ना मेरे पिता जी तो तीन लाख का कर्ज छोड़कर जाएँ ऐसे हैं!'

संतोष लक्ष्मी से रहता है या ज्ञान से?

प्रश्नकर्ता : ये लोग पैसों के पीछे पड़े हैं, तो संतोष क्यों नहीं रखते?

दादाश्री : अपने को कोई कहे कि संतोष रखना। तब हम कहें कि 'भाई, आप क्यों नहीं रखते और मुझे कह रहे हो?' वस्तुस्थिति में संतोष रखने से रहे, ऐसा नहीं है। उसमें भी किसी के कहने से रहे, ऐसा नहीं है। संतोष तो, जितना ज्ञान हो, उस अनुपात में अपने आप स्वाभाविक रूप से संतोष रहता ही है। संतोष करने जैसी चीज़ नहीं है। वह तो परिणाम है। जैसी आपने परीक्षा दी होगी, वैसा परिणाम आएगा। उसी तरह जितना ज्ञान होगा, परिणाम स्वरूप उतना ही संतोष रहेगा। संतोष रहे उसके लिए तो लोग इतनी सारी मेहनत करते हैं। देखो न, संडास में भी दो काम करते हैं। दाढ़ी और दोनों करते हैं! इतना अधिक लोभ होता है! यह तो सब इन्डियन पज़ल है! इसलिए इस पज़ल को

कोई सोल्व नहीं कर सकता है कि ऐसा क्यों होता होगा? इसीलिए इन्डियन पज़ल कहा है न!

जिसकी मात्रा नक्की, उसकी चिंतना कैसी?

पैसे तो जितने आने होंगे उतने ही आएँगे। धर्म में पड़ेगा तो भी उतने ही आएँगे और अधर्म में पड़ेगा तो भी उतने ही आएँगे। लेकिन अधर्म में पड़ेगा तो दुरुपयोग होगा और दुःखी होगा। और धर्म में सदुपयोग होगा तो सुखी होगा और मोक्ष में जा पाएगा, वह अलग। वर्ना पैसे तो उतने ही आनेवाले हैं।

पैसों के लिए विचार करना, वह एक बुरी आदत है। वह बुरी आदत कैसी है? एक मनुष्य को बहुत बुखार चढ़ जाए और हम उसे भाप देकर बुख़ार उतारें। भाप दी तो उसे पसीना बहुत आ जाता है, ऐसे फिर वे रोज़ भाप दे-देकर पसीना निकालते रहे तो, उसकी स्थिति क्या होगी? वह ऐसा समझेगा कि इसी तरह एक दिन मुझे बहुत फायदा हुआ था, मेरा शरीर हल्का हो गया था, तो अब यह रोज़ की आदत रखनी है। रोज़ भाप ले और पसीना निकालता रहे तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : शरीर में से सभी पानी निकल जाएगा।

दादाश्री : फिर लकड़ी जैसा हो जाएगा, जैसे इस प्याज़ को सुखाते हैं न? वैसा ही है ये, लक्ष्मी की चिंतना करना, वह उसके जैसा है। जैसे यह पसीना सही मात्रा में ही निकलता है, उसी तरह लक्ष्मी सही मात्रा में आती ही रहती है। आपको अपना काम करते जाना है। काम में गाफ़िल मत रहना। लक्ष्मी तो आती ही रहेगी। लक्ष्मी के विचार मत करना कि 'इतनी आओ और उतनी आओ,' या 'फिर आए तो अच्छा,' ऐसा कुछ भी नहीं सोचना है। इससे तो लक्ष्मी जी को बहुत गुस्सा आता है। मुझे लक्ष्मी जी रोज़ मिलती हैं, तब मैं उनसे पूछता हूँ कि, 'आप क्यों नाराज़ हैं?' तब लक्ष्मी जी कहती हैं कि, ''ये लोग अब ऐसे हो गए

हैं कि, 'आपको मेरे यहाँ से जाना नहीं है' ऐसा कहते हैं।'' तब लक्ष्मी जी क्या उनके पीहर नहीं जाएँ? लक्ष्मी जी को क्या घर में रोककर रखना चाहिए?

लक्ष्मी बढ़ी, तो कषाय घटे?

इस कलियुग में पैसों का लोभ करके खुद का जन्म बिगाड़ता है, और फिर मनुष्यपन में आर्तध्यान, रौद्रध्यान होते रहते हैं, तो मनुष्यपन चला जाता है। बड़े-बड़े राज्य भोग-भोगकर आए हैं। ये कहीं बिल्कुल भिखारी नहीं थे, लेकिन अभी मन भिखारी जैसा हो गया है। तो यह चाहिए और वह चाहिए होता रहता है। नहीं तो जिसका मन तृप्त हो, उसे कुछ भी नहीं दें, फिर भी वह राजसी (बड़ा दिलवाला) होता है। पैसा ऐसी चीज़ है कि मनुष्य को लोभ की तरफ दृष्टि करवाता है। लक्ष्मी तो बैर को बढ़ानेवाली चीज़ है। उससे जितना दूर रहा जा सके उतना उत्तम और यदि खर्च हो, तो अच्छे काम में खर्च हो जाए तो अच्छी बात है।

प्रश्नकर्ता : अभी तो पैसा सस्ता हो गया है।

दादाश्री : पैसा सस्ता हुआ है। पैसा सस्ता तो मनुष्य सस्ता हो जाता है। पैसा महँगा हो जाए, तब मनुष्य महँगा हो जाता है। मनुष्य की क़ीमत कब तक? पैसा महँगा हो तब तक रहती है। पैसा सस्ता हो जाए, तब मनुष्य की क़ीमत सस्ती हो गई! पैसा सस्ता हो जाए यानी मनुष्य की क़ीमत सस्ती हो गई! फिर बाल कटवाना भी महँगा हो जाता है, सबकुछ महँगा हो जाता है।

लक्ष्मी के ध्यान से, जोखिम अपार

लक्ष्मी तो हाथ का मैल है और मैल नैचरली आएगा ही। आपको इस साल पाँच हज़ार सात सौ और पाँच रुपये और तीन आने, इतना हिसाब आनेवाला होगा न, तो हिसाब से बाहर कभी जाएगा ही नहीं। और फिर भी ये जो अधिक आते हुए दिखाई देते हैं, वे तो जैसे बुलबुले फूटते हैं वैसे फूट जाएँगे। लेकिन

जितना हिसाब है उतना ही रहेगा। अगर आधी पतीली दूध हो, उसके नीचे लकड़ी जलाई और दूध की पतीली ऊपर रखी तो दूध पूरी पतीली हो जाता है न? उफनने से पूरी पतीली भर जाती है, लेकिन क्या वह भरा हुआ टिकता है? वह उफना हुआ टिकता नहीं है। यानी जितना हिसाब है उतनी ही लक्ष्मी रहेगी। यानी कि लक्ष्मी तो अपने आप ही आती रहती है। मैं ज्ञानी हुआ हूँ, मुझे संसार संबंधी विचार ही नहीं आता, फिर भी लक्ष्मी आती रहती है न! आपके पास भी अपने आप ही आती है, लेकिन आप काम करने के लिए बाध्य हो। आपके लिए कर्तव्यरूप क्या है? वर्क (काम) है।

लक्ष्मी तो बाइ प्रोडक्ट है। जैसे कि 'अपना हाथ अच्छा रहेगा या पैर अच्छा रहेगा,' उसके लिए रात-दिन सोचना पड़ता है क्या? नहीं। क्यों? क्या हाथ-पैरों की हमें ज़रूरत नहीं है? है, लेकिन उसके लिए सोचना नहीं पड़ता। उसी प्रकार लक्ष्मी के लिए भी नहीं सोचना है। वह भी जैसे हमें यहाँ से हाथ दु:ख रहा हो तो उसे ठीक करने के लिए सोचना पड़ता है, उसी प्रकार लक्ष्मी के लिए कभी सोचना पड़े तो वह भी उस समय के लिए ही, फिर सोचना ही नहीं, दूसरे झंझट में नहीं उतरना। लक्ष्मी के स्वतंत्र ध्यान में जाना चाहिए? यदि एक तरफ लक्ष्मी का ध्यान है, तो दूसरी तरफ दूसरा ध्यान चूक जाते हैं। स्वतंत्र ध्यान में लक्ष्मी तो क्या, स्त्री के ध्यान में भी नहीं जाना चाहिए। स्त्री के ध्यान में जाएगा तो स्त्री जैसा हो जाएगा। लक्ष्मी के ध्यान में जाएगा तो चंचल हो जाएगा। लक्ष्मी चलायमान और वह भी चलायमान! लक्ष्मी तो सब ओर घूमती ही रहती है निरंतर, उसी तरह वह भी सब ओर घूमता रहेगा। लक्ष्मी का तो ध्यान ही नहीं करना चाहिए। सबसे बड़ा रौद्रध्यान है वह तो। वह आर्तध्यान नहीं रौद्रध्यान है। क्योंकि खुद के घर पर खाने-पीने का है, सबकुछ है लेकिन अभी तक अधिक लक्ष्मी जी की आशा रखता है, यानी उतनी ही दूसरे के वहाँ कमी हो जाती है। दूसरे के वहाँ कमी हो जाए, वैसा

संतुलनभंग मत करो। नहीं तो आप गुनहगार हो। अपने आप सहज रूप से आए, उसके लिए आप गुनहगार नहीं हो! सहज तो पाँच लाख आएँ या पचास लाख आएँ। लेकिन फिर आने के बाद लक्ष्मी जी को रोककर नहीं रखना चाहिए। लक्ष्मी तो क्या कहती है? हमें रोकना मत। जितनी आई उतनी दे दो।

की हुई मेहनत कब काम की?

प्रश्नकर्ता : हमारे विचार ऐसे हैं कि व्यापार में इतने अधिक ओतप्रोत हैं कि लक्ष्मी का मोह जाता ही नहीं। उसीमें डूबे हुए हैं।

दादाश्री : उसके बावजूद पूर्ण संतोष भी नहीं होता न! पच्चीस लाख इकट्ठे करूँ, पचास लाख इकट्ठे करूँ, ऐसा रहा करता है न? ऐसा है, पच्चीस लाख इकट्ठे करने में मैं भी पड़ा रहता, लेकिन मैंने तो हिसाब लगाकर देखा कि ये यहाँ पर आयुष्य का एक्सटेन्शन नहीं मिलता। हर एक चीज़ का एक्सटेन्शन होता है न? दूसरी जो मुद्दत होती है न, उसे बढ़ा देते हैं, एक्सटेन्शन कर देते हैं, लेकिन आयुष्य में एक्सटेन्शन नहीं होता न! तो फिर हम क्यों परेशान हों? सौ के बदले हज़ारेक वर्ष जीना होता, तो समझो ठीक है कि मेहनत की हुई काम की। यह तो किस घड़ी हैं या नहीं, उसका कुछ ठिकाना नहीं, और यह सब आप करते हो या कोई करवाता है? आपको क्या लगता है?

कमाई-नुकसान, सत्ता किसकी?

प्रश्नकर्ता : सब हम ही करते हैं न? कोई करवाता नहीं है।

दादाश्री : नहीं, यह कोई और ही करवाता है और आपके मन में भ्रांति है कि मैं कर रहा हूँ। यह तो, किसी को रुपये देते हो, वह भी कोई करवा रहा है। और नहीं देते, वह भी कोई करवा रहा है। बिज़नेस है, वह भी कोई करवा रहा है।

नुकसान होता है, वह भी कोई करवा रहा है, फायदा होता है वह भी कोई करवा रहा है। आपको ऐसा लगता है 'मैं कर रहा हूँ' वह इगोइज़म है। यह कौन करवा रहा है? उसे पहचानना पड़ेगा न? हम उसकी पहचान करवा देते हैं। जब ज्ञान देते हैं, तब सबकुछ समझा देते हैं कि 'कौन कर रहा है?'

एक स्वसत्ता है, दूसरी परसत्ता है। स्वसत्ता, कि जिसमें खुद परमात्मा बन सकता है। जबकि पैसा कमाने की आपके हाथ में सत्ता नहीं है, वह परसत्ता है। तो पैसे कमाना अच्छा या परमात्मा बनना अच्छा? पैसे कौन देता है? वह मैं जानता हूँ। पैसे कमाने की सत्ता यदि खुद के हाथ में होती न, तो झगड़ा करके भी कहीं से भी ले आता। लेकिन वह परसत्ता है। इसीलिए भले ही कुछ भी करो, फिर भी कुछ होगा नहीं। एक व्यक्ति ने पूछा कि, 'लक्ष्मी किस जैसी है?' तब मैंने कहा कि, 'नींद जैसी।' कुछ लोगों को लेटते ही तुरंत नींद आ जाती है और कुछ लोगों को पूरी रात करवटें बदलते रहने पर भी नींद नहीं आती, और कुछ नींद के लिए गोलियाँ खाते हैं। यानी यह लक्ष्मी आपकी सत्ता की बात नहीं है, यह परसत्ता है। और परसत्ता के लिए परेशान होने की हमें क्या ज़रूरत?

इतना पैसा! लेकिन मौत नहीं सुधरती!

जैसे शक्करकंद भट्ठी में भुनता है न, वैसे सारी ज़िंदगी ये मनुष्य भुन रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, घुटन में ही जी रहे हैं।

दादाश्री : नहीं जीएँ तो क्या करें? कहाँ जाएँ वे? यह जीना भी अनिवार्य है फिर और मरने की भी किसी के हाथ में सत्ता नहीं है। मरने जाएँगे, तब पता चलेगा। पुलिसवाला पकड़कर केस करेगा। जैसे जेल में गए हुए व्यक्ति को मजबूरन सबकुछ करना पड़ता है न, वैसे ही यह जीना भी अनिवार्य है, पैसा भी अनिवार्य है।

लक्ष्मी के लिए कहीं हाय-हाय की जाती होगी? और उसके लिए हाय-हाय करके कोई संतुष्ट हुआ है? इस दुनिया में किसी का भी पहला नंबर आया हो, ऐसा लगा? यहाँ मुंबई म्युनिसिपालिटी में किसी का नाम नोट किया गया है कि यह फर्स्ट नंबर पर आया और यह सेकन्ड नंबर पर आया, ऐसे नाम नोट किए गए हैं? यह तो जन्म लेता है, करोड़ों रुपये कमाता है और फिर मर जाता है। कुत्ते की मौत मर जाता है। कुत्ते की मौत किसलिए कहता हूँ कि डॉक्टरों के पास जाना पड़ता है। पहले तो लोग इंसान की मौत मरते थे। वे क्या कहते थे कि, 'भाई, अब मेरे जाने का समय हो गया है।' तब फिर घरवाले दीया करते और आजकल तो अंतिम घड़ी में बेहोश हो जाता है। कुत्ते भी मरते समय बेहोश नहीं होते।

जितना स्मरण, उतना वियोग

एक भाई आए थे। उन बेचारे को व्यापार में हर महीने नुकसान होता था, वे पैसों के लिए हाय-हाय करते थे। मैंने उनसे कहा कि पैसों की बात क्यों कर रहे हो? पैसे को तो याद करना ही बंद कर दो। लेकिन तब से उनके पैसे बढ़ने लगे। तब हर महीने तीस हज़ार रुपयों का फायदा होने लगा। नहीं तो पहले बीस हज़ार रुपये का नुकसान होता था। क्योंकि पैसों को याद करते रहते थे न! पैसों को कभी याद किया जाता होगा? लक्ष्मी जी तो भगवान की पत्नी कहलाती हैं। भला उनका नाम लेना चाहिए?

लक्ष्मीवान की तो, सुगंधी आए!

यदि लक्ष्मी जी सुगंध सहित हों तो भगवान ने भी हमेशा उसका स्वीकार किया है। मुंबई में इतने लक्ष्मीवान हैं लेकिन सुगंध आई है किसी की भी?

प्रश्नकर्ता : कोई तो होगा न?

दादाश्री : 'होगा' ऐसा बोलना बहुत ही जोखिमवाला है। या तो 'नहीं' बोलो या फिर 'है' ऐसा बोलो। 'होगा' ऐसा गोलमाल बोलना भयंकर जोखिम है। गोलमाल के कारण ही तो जगत् ऐसा है। 'जैसा है वैसा' बोलो और पता तो लगाओ, और कह दो कि 'भाई मेरे ध्यान में अभी तक ऐसा कोई आया नहीं है। हमें कहने का राइट कितना है? कि आज तक मेरी ज़िंदगी में बहुत घूमा, लेकिन मुझे अभी तक कोई ऐसा मिला नहीं है। वर्ना सुगंधी सहित लक्ष्मी कहीं भी होती ही नहीं। अभी इस काल में होगी तो भी बहुत कम होगी, शायद ही कहीं पर होगी।

प्रश्नकर्ता : सुगंधी सहित लक्ष्मी, 'वह' लक्ष्मी कैसी होती है?

दादाश्री : वह लक्ष्मी हमें बिल्कुल भी *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) नहीं करवाती। घर में सौ रुपये पड़े हों न, फिर भी हमें बिल्कुल भी *उपाधि* नहीं करवाती। कोई कहे कि कल से शक्कर पर कंट्रोल आनेवाला है, फिर भी मन में *उपाधि* नहीं होगी। *उपाधि* नहीं, हाय-हाय नहीं। ऐसा व्यवहार कितना सुगंधीवाला, वाणी कितनी सुगंधीवाली और उसे पैसे कमाने का विचार तक नहीं आता। ऐसे पुण्यानुबंधी पुण्य होते हैं। पुण्यानुबंधी पुण्यवाली लक्ष्मी हो, उसे पैसे पैदा करने का विचार ही नहीं आता। यह तो सब पापानुबंधी पाप की लक्ष्मी है। इसे तो लक्ष्मी कहा ही नहीं जा सकता! निरे पाप के ही विचार आते हैं। 'कैसे जमा करूँ, कैसे जमा करूँ?' वही पाप है। तब कहते हैं कि पहले ज़माने में सेठ के वहाँ पर लक्ष्मी थी, वह? वह लक्ष्मी जमा हो जाती थी, जमा करनी नहीं पड़ती थी। जबकि इन लोगों को तो जमा करनी पड़ती है। वह लक्ष्मी तो सहज भाव से आती रहती थी। खुद ऐसा कहता था कि, 'हे प्रभु! यह राजलक्ष्मी तो मुझे स्वप्न में भी न आए।' फिर भी वह आती ही रहती थी। क्या कहते थे कि आत्मलक्ष्मी आए, लेकिन यह राजलक्ष्मी तो हमें स्वप्न

में भी नहीं आए। फिर भी वह आती रहती थी, वह पुण्यानुबंधी पुण्य। उनके पास लक्ष्मी तो ढेर सारी आती थी, आने में कमी नहीं रहती थी। कभी सोचते तक नहीं थे, बल्कि ऊब जाते थे कि अब ज़रा कम आए तो अच्छा। लेकिन फिर भी लक्ष्मी आती थी। ऐसी लक्ष्मी आए तब क्या करना पड़ता था? उसका निबेड़ा तो लाना पड़ता था न? अब निबेड़ा लाने में बहुत मेहनत हो जाती थी। उसे क्या रास्ते पर थोड़ा फेंक देते? अब वह निबेड़ा कैसा होता था कि उससे लक्ष्मी जाती थी और फिर से बार-बार उगकर वापस आती थी।

बात को समझना तो पड़ेगा न!

अभी जो है, वह तो लक्ष्मी ही नहीं कहलाती। यह तो पापानुबंधी पुण्यवाली लक्ष्मी है। तो पुण्य ऐसे बाँधे थे कि अज्ञान तप किए थे, उससे पुण्य बंध गया था। उसके फलस्वरूप लक्ष्मी आई। यह लक्ष्मी मनुष्य को पागल बना देती है। इसे सुख कहेंगे ही कैसे? सुख तो, पैसों का विचार नहीं आए, वह सुख है। हमें तो वर्ष में एकाध दिन विचार आता है कि जेब में पैसे हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बोझ जैसा लगता है?

दादाश्री : नहीं, बोझा तो हमें नहीं होता, लेकिन हमें वैसा विचार ही नहीं आता न! क्यों सोचें? सब आगे-पीछे तैयार ही होता है! जैसे खाने-पीने का आपके टेबल पर आता है या नहीं आता? या फिर सुबह से उसके लिए सोचकर बैठे रहते हो? माला फेरते रहते हो कि 'खाना बनेगा या नहीं बनेगा? खाने को मिलेगा या नहीं मिलेगा?' क्या ऐसा करते रहते हो? क्या खाने के लिए जाप नहीं करना पड़ता? या सुबह उठते ही जाप करते हो?

प्रश्नकर्ता : किसी को जाप होता भी होगा।

दादाश्री : किसी के लिए क्यों झंझट करते हो? आपको किसी दिन हुआ है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : नहाने के लिए गरम पानी मिलेगा या नहीं मिलेगा, मिलेगा या नहीं मिलेगा, ऐसा सोचते रहो रात से सुबह तक, तो ऐसा जाप करने की ज़रूरत पड़ती है? फिर भी सुबह नहाने को गरम पानी मिलता है या नहीं मिलता?

प्रश्नकर्ता : मिलता है।

दादाश्री : ऐसा है, कि जो नेसेसिटी है, वह नेसेसिटी अपने टाइम पर आती ही है। उसका ध्यान करने की ज़रूरत नहीं है। इसीलिए तो कहा है न, कि लक्ष्मी तो हाथ का मैल है। जैसे पसीना आए बगैर नहीं रहता, वैसे ही लक्ष्मी भी आए बगैर नहीं रहती। जैसे किसी को पसीना अधिक आता है, उसी तरह लक्ष्मी भी अधिक आती है। और जैसे किसी को पसीना कम आता है, उसी तरह लक्ष्मी भी कम आती है। बात तो समझनी पड़ेगी न?

लक्ष्मी, दान देने से बढ़े अपार

लक्ष्मी तो, कभी भी कम नहीं पड़े, उसका नाम लक्ष्मी! फावड़े से खोद-खोदकर धर्मदान करता रहे न, फिर भी कमी न पड़े, वह लक्ष्मी कहलाती है। यह तो धर्मदान करे, तो बारह महीने में दो दिन देता है, उसे लक्ष्मी कहेंगे ही नहीं। एक दानवीर सेठ थे, अब दानवीर नाम कैसे पड़ा? कि उनके वहाँ सात पीढ़ियों से धन था। वे फावड़े से खोद-खोदकर देते ही रहते थे। सात पीढ़ियों से धन देते ही रहते थे, फावडे से खोदकर ही देते थे। वे जो भी आए उसे, आज फलाना आया कि 'मेरी बेटी की शादी करवानी है,' तो उसे दे दिए। कोई ब्राह्मण आया, उसे दे दिया। किसी को दो हज़ार की ज़रूरत है, उसे दे दिए। साधु-संतों के लिए वहाँ पर जगह बनवाई थी। वहाँ पर सभी साधु-

संतों के ठहरने की व्यवस्था, भोजन वगैरह, यानी कि दान तो ज़बरदस्त चल रहा था, इसीलिए दानवीर कहलाए! हमने यह देखा है सारा। जैसे-जैसे हर एक को देते जाते थे, वैसे-वैसे धन बढ़ता जाता था।

धन का स्वभाव कैसा है? यदि कभी अच्छी जगह पर दान में जाए तो अत्यधिक बढ़ता है। ऐसा धन का स्वभाव है। और यदि जेब काटो तो आपके घर पर कुछ भी नहीं रहेगा। इन सभी व्यापारियों को हम इकट्ठा करें और पूछें कि भाई, कैसा चल रहा है आपका? बैंक में दो हज़ार तो होंगे न? तब कहेगा कि साहब, बारह महीने में लाख रुपये आए, लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं! इसीलिए तो कहावत पड़ी न कि चोर की माँ कोठी में मुँह डालकर रोए! कोठी में कुछ होगा नहीं, तो रोएगी ही न!

लक्ष्मी का प्रवाह दान है और जो सच्चा दान देनेवाला है वह कुदरती रूप से एक्सपर्ट ही होता है। इंसान को देखते ही समझ जाता है कि 'भई, ज़रा ऐसे ही लग रहे हैं।' इसलिए उनसे कहता है कि, 'बेटी की शादी के लिए पूरे पैसे नहीं मिलेंगे। तुझे जो भी कपड़े-लत्ते चाहिए, बाकी और कुछ चाहिए तो ले जाना।' और कहेगा कि बेटी को यहाँ बुला ला। वह बेटी को कपड़े, ज़ेवर वगैरह देता है। रिश्तेदारों के वहाँ मिठाई खुद के घर से भिजवा देता है। उसका सारा व्यवहार संभाल लेता है, लेकिन समझ जाता है कि यह टुच्चा आदमी है, हाथ में नक़द देने जैसा नहीं है। यानी कि दान देनेवाले भी बहुत एक्सपर्ट होते हैं।

पुण्य के प्रताप से पैसा

लक्ष्मी जी तो पुण्यशाली के पीछे ही घूमती रहती हैं। और मेहनती लोग लक्ष्मी जी के पीछे घूमते हैं। इसलिए हमें देख लेना चाहिए कि पुण्य होगा तो लक्ष्मी जी पीछे आएँगी। वर्ना मेहनत से तो रोटी मिलेगी, खाना-पीना मिलेगा और एकाध बेटी होगी तो उसकी शादी कर सकेंगे। वर्ना पुण्य के बिना लक्ष्मी नहीं मिलती।

अतः खरी हकीकत क्या कहती है कि तू यदि पुण्यशाली है तो बेकार हाथ-पैर किसलिए मारता है? और तू पुण्यशाली नहीं है तब भी बेकार हाथ-पैर किसलिए मारता है?

पुण्यशाली तो कैसा होता है? ये अमलदार भी जब ऑफिस में से अकुलाकर घर आते हैं, तब पत्नी क्या कहेगी कि, 'डेढ़ घंटा लेट हो गए, कहाँ गए थे?' ये देखो पुण्यशाली! पुण्यशाली को ऐसा होता होगा? पुण्यशाली को तो हवा का एक उल्टा झोंका भी नहीं छू पाता। बचपन से ही वह क्वॉलिटी अलग होती है। अपमान का संयोग नहीं मिलता। जहाँ जाए वहाँ पर 'आओ-आओ भाई' इस तरह से पले-बढ़े होते हैं। और यह तो जहाँ-तहाँ टकराता ही रहता है। उसका अर्थ क्या है? फिर, जब पुण्य खत्म हो जाता है, तब थे वैसे के वैसे! यानी अगर तू पुण्यशाली नहीं है तो पूरी रात पट्टियाँ बाँधकर घूमने से भी क्या सुबह पचास मिल जाएँगे? इसलिए बेकार हाथ-पैर मत मार और जो मिला है, उसमें खा-पीकर सोया रह न चुपचाप!

प्रश्नकर्ता : वह तो प्रारब्धवादी हुआ न?

दादाश्री : नहीं, प्रारब्धवादी नहीं। तू अपनी तरह से काम कर, मेहनत करके रोटी खा। बाकी दूसरी तरफ हाथ-पैर किसलिए मारता रहता है? ऐसे इकट्ठा करूँ और वैसे इकट्ठा करूँ! यदि तेरा घर में मान नहीं है, बाहर मान नहीं है, तो किसलिए बेकार हाथ-पैर मारता है? और जहाँ जाए वहाँ पर उसे 'आईए, बैठिए' कहनेवाले होते हैं, जो ऐसे बहुत बड़े पुण्य लेकर आए हों, उनकी तो बात ही अलग होती है न?

ये सेठ पूरी ज़िंदगी में पच्चीस लाख लेकर आए होते हैं, वह पच्चीस लाख के बाइस लाख करता है, लेकिन बढ़ाता नहीं है। बढ़ेगा कब? यदि वह हमेशा ही धर्म में रहे तो। लेकिन यदि उसमें खुद की दख़ल करने गया तो बिगड़ जाएगा। कुदरत में हाथ डालने गया कि बिगड़ जाएगा। लक्ष्मी आए, तब उसे वह

समझता है कि इस रेती में से लक्ष्मी आ रही है। इसलिए वह रेती को घोटता रहता है, लेकिन कुछ नहीं मिलता। लक्ष्मी तो पुण्य का फल है, सिर्फ पुण्य का ही फल है। मेहनत का फल होता न, तब तो सारी मज़दूरों के हाथ में ही गई होती। और अक़्ल का फल होता न, तो इन लोहे के व्यापारियों जैसा अक़्लवाला कोई नहीं है। तो सारी लक्ष्मी वहाँ पर गई होती। लेकिन ऐसा नहीं है। लक्ष्मी तो पुण्य का फल है।

पुण्यशाली तो किसे कहेंगे?

लक्ष्मी इंसान को मज़दूर बना देती है। यदि लक्ष्मी अधिक आ जाए तो फिर इंसान मज़दूर जैसा बन जाता है। इनके पास लक्ष्मी अधिक है, लेकिन साथ-साथ ये दानेश्वरी हैं, इसलिए अच्छा है। नहीं तो मज़दूर ही कहलाएँगे न? और पूरे दिन गधे की तरह काम करता ही रहता है, उसे पत्नी की नहीं पड़ी होती, बच्चों की नहीं पड़ी होती, किसी की भी नहीं पड़ी होती। सिर्फ लक्ष्मी की ही पड़ी होती है। यानी लक्ष्मी धीरे-धीरे इंसान को मज़दूर बना देती है और फिर वह तिर्यंच गति में ले जाती है, क्योंकि पापानुबंधी पुण्य है न! पुण्यानुबंधी पुण्य हो तो हर्ज नहीं है। पुण्यानुबंधी पुण्य तो किसे कहते हैं कि पूरे दिन में सिर्फ आधा घंटा ही मेहनत करनी पड़े। वह आधा घंटा मेहनत करता है और सारा काम धीरे-धीरे सरलता से चलता रहता है। दानेश्वरी हैं, इसलिए ये बच गए, नहीं तो भगवान के वहाँ ये भी मज़दूर ही माने जाते।

यह जगत् तो ऐसा है, कि इसमें भोगनेवाले भी होते हैं और मेहनत करनेवाले भी होते हैं। सबकुछ मिला-जुला होता है। मेहनत करनेवाले ऐसा समझते हैं कि यह 'मैं कर रहा हूँ।' उनमें इस बात का अहंकार होता है। जबकि भोगनेवाले में वह अहंकार नहीं होता, लेकिन उसे भोक्तापन का रस मिलता है। उस मेहनत करनेवाले को अहंकार का गर्वरस मिलता है!

एक सेठ ने मुझे कहा, 'मेरे इन बेटों से कुछ कहिए न, मेहनत नहीं करनी है, आराम से भोगते हैं।' मैंने कहा, 'कुछ कहने जैसा है ही नहीं। वे अपने खुद के हिस्से का पुण्य भोग रहे हैं, उसमें हम क्यों दख़ल करें?' तब उसने मुझसे कहा कि, 'उन्हें समझदार नहीं बनाना?' मैंने कहा कि, 'दुनिया में जो भोगता है, वह समझदार कहलाता है, जो बाहर डाल दे वह पागल कहलाता है और जो मेहनत करता रहे, वह तो मज़दूर कहलाता है।' लेकिन जो मेहनत करता है, उसे अहंकार का रस मिलता है न! लंबा कोट पहनकर जाता है इसलिए लोग 'सेठ आए, सेठ आए' करते हैं, बस इतना ही। और भोगनेवाले को ऐसी कुछ सेठ-वेठ की नहीं पड़ी होती। हम तो जितना अपना भोगें उतना सच्चा है।

प्रिय चीज़ को खुला छोड़ देने से समाधि

समाधि कब आएगी? संसार में जिस पर अतिशय प्रीति है, उसे खुला छोड़ दिया जाए तब। संसार में किस पर अतिशय प्रीति है? लक्ष्मी जी पर। तो उसे बहा दो। तब कहते हैं कि बहा देते हैं तब और अधिक आने लगी। तब मैंने कहा कि, 'अधिक आए तो अधिक बहा देना।' प्रिय चीज़ को छोड़ो तो समाधि हो जाती है।

संचित किया हुआ टिका है किसी का भी?

लक्ष्मी जी तो अपने आप ही आने के लिए बद्ध हैं। और हमारे संचय करने से संचित होंगी नहीं और आज संचय करके रखें तो पच्चीस साल बाद बेटी की शादी करते समय, उस दिन तक रहेगी, उस बात में माल नहीं है और कोई ऐसा माने तो उस बात में दम नहीं है। वह तो उस दिन जो आएगी वही सही है, फ्रेश होना चाहिए। ये जो चींटियाँ होती हैं, वे सुबह चार बजे से उठती हैं। हम चाय पी रहे हों और शक्कर का एक कण गिर गया हो तो लेकर चली जाती है। 'अरे, तुम चींटियों

की तो बेटियाँ भी नहीं हैं।' फिर भी लेकर वहाँ पर जमा करती रहती हैं। और कुछ नहीं करतीं। अन्न के दाने, शक्कर के दाने, सारे जमा करती रहती हैं। और जब भूख लगे, तब वहाँ जाकर थोड़ा खाकर आ जाती हैं और फिर बाहर निकलकर पूरा दिन यही व्यापार। वह जब बहुत जमा हो जाए न, तब चूहा छेद करके सब खा जाता है।

ऐसा है यह जगत्। इसलिए अगर संचय करोगे, तो कोई खानेवाला मिल जाएगा। उसका फ्रेश-फ्रेश उपयोग करो। जैसे सब्ज़ी-भाजी का संग्रह करके रखो तो क्या होगा? उसी तरह लक्ष्मी जी का फ्रेश उपयोग करो। और लक्ष्मी जी का दुरुपयोग करना बहुत बड़ा गुनाह है।

ऐसा तो क्यों मान बैठे हो?

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी नहीं होगी तो साधन नहीं होंगे और साधन के लिए लक्ष्मी की ज़रूरत है, अतः लक्ष्मी के साधन के बिना हम जो ज्ञान लेना चाहते हैं, तो वह कब मिलेगा? अतः यह लक्ष्मी ज्ञान की शाला में जाने का पहला साधन है, ऐसा नहीं लगता?

दादाश्री : नहीं, लक्ष्मी बिल्कुल भी साधन नहीं है। ज्ञान के लिए तो नहीं, लेकिन वह किसी भी प्रकार से बिल्कुल भी साधन नहीं है। इस दुनिया में कोई गैरज़रूरी चीज़ हो तो वह लक्ष्मी है। जो ज़रूरत महसूस होती है, वह तो भ्रांति और नासमझी से मान बैठे हैं। ज़रूरत किसकी है? सबसे पहले हवा की ज़रूरत है। यदि हवा नहीं होगी तो तू कहेगा कि नहीं, हवा की ज़रूरत है, क्योंकि हवा के बिना मर जाते हैं। लक्ष्मी के बगैर मरनेवाले नहीं देखे गए। यानी यह लक्ष्मी ज़रूरी साधन है, ऐसा जो कहते हैं, वह तो सारी मेडनेस है। क्योंकि दो मिलवाले को भी लक्ष्मी चाहिए, एक मिलवाले को भी लक्ष्मी चाहिए, मिल के सेक्रेटरी को भी लक्ष्मी चाहिए, मिल के मज़दूर को भी लक्ष्मी चाहिए।

तो फिर सुखी कौन है? ये तो विधवा भी रोए और सुहागन भी रोए और सात पतियोंवाली भी रोए। यह विधवा रोए, तो हम समझ सकते हैं कि उस स्त्री का पति मर गया है, लेकिन यह सुहागन, 'तू किसलिए रो रही है?' तब वह कहेगी, 'मेरा पति नालायक है' और सात पतियोंवाली तो चेहरा ही नहीं दिखाती! ऐसी ये लक्ष्मी की बातें हैं। तो फिर क्यों इस लक्ष्मी के पीछे पड़े हो? ऐसे कहाँ फँसे आप?

प्रश्नकर्ता : यह पुण्य की लक्ष्मी अपने पास आनेवाली है या नहीं, उसके लिए कुछ तो सहज पुरुषार्थ होना चाहिए न?

दादाश्री : पुण्य की लक्ष्मी के लिए कैसा पुरुषार्थ होता है? ऐसे सरल और सहज पुरुषार्थ होता है। यह तो जो सरल और सहज है, उसे हम नासमझी से कठिन बना देते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि हमें ऐसा लगे कि सहज और सरल नहीं है और कठिन है तो फिर उसे छोड़ दें? हमें ऐसा लगे कि अपना पुण्य इतना अधिक नहीं है कि सरल रास्ते से लक्ष्मी आए, तो फिर वहाँ क्या हमें सहज हो जाना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, नहीं। धीरज रखो तो सब अपने आप सरल ही निकलता है! लेकिन यह तो धीरज नहीं रहता और भागदौड़ करके रख देता है और सारा बिगाड़ देता है।

प्रश्नकर्ता : धीरज नहीं रहता न, 'ऐसा करूँ, वैसा करूँ' ऐसा हो जाता है!

दादाश्री : हाँ, ऐसा कर डालूँ, वैसा कर डालूँ, उससे सारा उलझा देता है। ट्रेन पकड़नी हो, वहाँ पर भी उसे धीरज नहीं रहता, वहाँ क्या चैन से चाय पीता है? ना, उसे तो 'गाड़ी अभी आएगी, गाड़ी अभी आएगी' उसी में होता है। उसे कहें कि, 'भाई, ज़रा यहाँ आओ, बातचीत करनी है' लेकिन फिर भी वह नहीं सुनता। उसी तरह यह अधीरता से 'ऐसा कर डालूँ, वैसा कर डालूँ'

करता है। फिर उसके कारण क्लेश और थकान का अनुभव करता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा है, व्यापार में अपने सिर पर स्वाभाविक रूप से कुछ तलवारें लटकती हैं कि इन्कमटैक्स भरना है, सेल्सटैक्स भरना है, तन्ख्वाह बढ़ानी है। तो उसके दबाव के कारण वह मिथ्या प्रयत्न करता है कि ऐसा कर लूँ और वैसा कर लूँ। यदि उसे पेमेन्ट करने हों, तो उसका रास्ता तो ढूँढेगा न!

दादाश्री : फिर भी कुछ होगा नहीं, बेकार कोशिश करनेवाला वही करता रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जैसा आपने कहा वैसे धीरज रखें, तो क्या अपने आप ही व्यवस्था हो सकेगी?

दादाश्री : धीरज से ही सब होगा। शांति से, धीरज से सब आएगा, वे घर बैठे बुलाने आएँगे। और फिर ऐसा नहीं है कि हमें बाज़ार में ढूँढना पड़े। वर्ना मेहनत करके मर जाए, बुद्धि का उपयोग करके मर जाए फिर भी आज चार आने भी नहीं मिलेंगे। और यह तू अकेला थोड़े ही इसे पकड़ बैठा है? पूरी दुनिया लक्ष्मी के पीछे पड़ी है!

राजलक्ष्मी नहीं, आत्मलक्ष्मी ही हो

यह सब डिस्चार्ज है, हो चुका है, उसे अब तू क्या करेगा? यह जो तुझे ऑर्डर मिलता है वह भी सारा पुण्य है और यदि ऑर्डर नहीं मिलें, वह तो, जब पाप का उदय हो तभी ऑर्डर नहीं मिलते। अब इसमें वापस चालबाज़ी करता है, जो मिलनेवाला ही है उसमें चालबाज़ी करता है, ट्रिक आज़माता है। ट्रिक आज़माता है या नहीं आज़माता? भगवान को क्या ट्रिक आती थीं? भगवान ने तो क्या कहा कि, 'यह राजलक्ष्मी मुझे स्वप्न में भी न हो।' क्योंकि राज जैसी संपत्ति और ये जो दूसरी सारी संपत्ति है, उसके

मालिक होने जाएँ तो फिर मोक्ष में कैसे जाएँगे? अतः वह संपत्ति तो स्वप्न में भी नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में क्यों नहीं जाने देगी?

दादाश्री : मोक्ष में कैसे जाने देगी? ये चक्रवर्ती राजा सारा चक्रवर्तीराज्य छोड़ देने पर मोक्ष में जा पाते हैं, नहीं तो चित्त उसी सब में उलझा रहेगा। उन दिनों क्या अक्रमविज्ञान था? क्रमिकमार्ग था। यह तो अक्रमविज्ञान है, इसलिए आराम से ज्ञान को सेट करके सो जाता है और पूरी रात भीतर समाधि रहती है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था न, कि अच्छे खानदान में जन्म हुआ हो तो सबकुछ लेकर ही आया होता है इसलिए अधिक झंझट करने की ज़रूरत नहीं रही, ऐसा है न?

दादाश्री : हाँ, सबकुछ लेकर ही आया होता है, लेकिन वह व्यवहार चलाने जितना ही, खुद का सबकुछ चले उतना ही। वर्ना करोड़ाधिपति तो शायद ही कोई बनता है।

प्रश्नकर्ता : चक्रवर्ती राजा भी अंत में मोक्ष में जाने को ही अधिक इम्पोर्टन्ट मानते थे न? महत्वपूर्ण तो मोक्ष ही है। चक्रवर्ती होने में भी सुख नहीं है न?

दादाश्री : 'महत्वपूर्ण तो मोक्ष ही है,' उन्हें ऐसा नहीं था, लेकिन वह चक्रवर्ती का पद उन्हें इतना अधिक काटता था कि उन्हें होता था कि 'कहाँ भाग जाऊँ?' इसलिए मोक्ष याद आता था! कोई कितना अधिक पुण्यशाली हो तो चक्रवर्ती बनता है, लेकिन भाव तो मोक्ष में जाना है ऐसा ही होता है। बाकी पुण्य तो सब भोगने ही पड़ेंगे न!

प्रश्नकर्ता : इतने सारे जन्मों में यह सब भोगा, राजा बने, फिर भी इच्छाएँ बाकी रह जाती हैं, उसका क्या कारण होगा?

दादाश्री : भोगा हुआ कभी दिखता है? यह तो सिर्फ दिखता है, इतना ही है। जब सामने दिखता है तब भोग नहीं पाते। हमें पावागढ़ कब तक अच्छा लगता है? कि हमने तय किया कि उस दिन पावागढ़ जाना है, तभी से अंदर पावागढ़ के लिए बहुत आकर्षण रहता है। लेकिन जब पावागढ़ जाएँ और देखें, तब वह आकर्षण टूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी हमें अभी तक इसका टेस्ट नहीं मिला है? यह जो लक्ष्मी भोगने का या विषय भोगने का टेस्ट अभी तक पूरा नहीं हुआ है इसलिए इनके विचार आते हैं?

दादाश्री : ऐसा है, पिछले जन्म में श्रीमंत का जन्म मिला हो, अब श्रीमंत यानी, स्त्री, लक्ष्मी वगैरह सबकुछ तैयार ही होता है, तब मन ही मन ऊब जाता है कि इससे तो कम *उपाधि* हो और जीवन सादा हो तो अच्छा। इसलिए फिर विचार भी सारे ऐसे होते हैं और वापस जब गरीबी में जन्म ले तो उसे लक्ष्मी और विषय, वह सब याद आता रहे, वैसा माल भरा हुआ रहता है।

कैसी-कैसी अटकणें, मनुष्य में!

किसी में विषय की *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) पड़ी हुई होती है, किसी में मान की *अटकण* पड़ी हुई होती है, ऐसी तरह-तरह की *अटकणें* पड़ी हुई होती हैं। किसी में 'कहाँ से कमाऊँ, कहाँ से कमाऊँ?' ऐसी *अटकण* पड़ी हुई होती है। यानी इस तरह से पैसों की *अटकण* पड़ी हुई होती है, इसलिए सुबह उठे तब से उसे पैसों का ध्यान रहा करता है! वह भी बड़ी *अटकण* कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पैसों के बगैर तो चलता नहीं है न!

दादाश्री : चलता नहीं है, लेकिन लोग वह नहीं जानते कि पैसे किस वजह से आते हैं, और उसके पीछे दौड़ते रहते हैं।

पैसा तो पसीने की तरह आता है। जिस तरह किसी को पसीना अधिक आता है और किसी को कम पसीना आता है और जिस तरह पसीना हुए बगैर नहीं रहता उसी तरह यह पैसा भी आता ही है लोगों के पास!

मुझे तो शुरू से ही पैसों की *अटकण* ही नहीं थी। बाईस साल का था, तभी से मैं व्यापार कर रहा था। फिर भी, मेरे घर पर जो कोई भी आए हों, उनमें से कोई मेरे व्यापार की बात जानता ही नहीं था। बल्कि मैं ही उन्हें पूछता रहता था कि आप किसी परेशानी में हैं क्या?

कमी या भराव नहीं, वही उत्तम!

हमारे गाँव में सत्संग के लिए बुलाया था, तो वहाँ पर हम सत्संग कर रहे थे। उस गाँव के एक भाई थे न, वे चचेरे भाई थे, वे टेढ़ा बोलते थे। ऐसा बोले कि, 'आप नीचे दबाकर बैठे हैं, खूब मोटी रकम दबाकर बैठे हैं, तो अब चैन से सत्संग होगा ही न!' मैं समझ गया कि यह चचेरेपन के गुण के कारण बोल रहे हैं, उनसे सहन नहीं हो रहा था न! फिर मैंने कहा कि, 'मैं क्या दबाकर बैठा हूँ, वह आपको कैसे पता चले? बैंक में क्या है, वह आपको क्या पता चले?' तब कहने लगे, 'अरे, दबाए बगैर तो ऐसे चैन से सत्संग होगा ही कैसे?' मैंने कहा कि, 'बैंक में जाकर पता लगा आओ।'

मेरे यहाँ कभी भी कमी नहीं पड़ी और भराव भी नहीं हुआ। लाख रुपये आने से पहले तो कोई न कोई बम आ जाता था और वे खर्च हो जाते। इसलिए भराव तो होता ही नहीं था कभी भी और कमी भी नहीं पड़ी, बाकी कुछ भी दबाया-किया नहीं। क्योंकि हमारे पास गलत धन आएगा, तभी तो दबाएँगे न? ऐसा उल्टा धन ही नहीं आता तो दबाएँ कैसे? और ऐसा हमें चाहिए भी नहीं। हमें तो कमी नहीं पड़े और भराव भी नहीं हो

तो बहुत हो गया! भराव हो तो बहुत *उपाधि* होती है, फिर बैंक में रखना वगैरह सारी *उपाधि*। फिर साला आएगा कि, 'आपके पास तो बहुत सारे रुपये हैं, तो दस-बीस हज़ार दीजिए।' फिर मामा का बेटा आएगा, फिर जमाई आएगा कि 'मुझे लाखेक रुपया दीजिए।' अगर भराव हो तब कहते रहेंगे न? लेकिन भराव ही नहीं होगा तो? पैसों का भराव होने के बाद लोगों में कलह होती है।

लोग आकर मुझ से कह जाते हैं कि 'देखिए न, हमारे जमाई आए, वे लाख रुपये माँग रहे हैं। जमाई तो इसके लिए आ गए हैं, सभी को देता रहूँ तो मेरे पास क्या रहेगा?' उसकी बात भी सही है। सभी को देता रहे तो उसके पास कुछ रहेगा नहीं न! यानी कि भराव हो गया तभी लेने आ गए न! अब वहाँ पर उनके साथ जमाई झगड़ा करता है, गालियाँ देता है! तब अंत में कहेगा, 'मेरे पास अधिक पैसे नहीं हैं। लो, ये बीस हज़ार ले जाओ और अब वापस मत आना।' अरे, देने थे तब कलह करके दिए, उसके बजाय तो समझाकर देने थे न! नहीं तो एक बार झूठ बोल दे कि, 'ये सब लोग कहते हैं कि मेरे पास दस लाख आए हैं, लेकिन मेरा मन जानता है कि कितने आए हैं, मुश्किल से डेढ़ लाख आए हैं।' ऐसा-वैसा करके झूठ बोलकर भी जमाई को समझा देना चाहिए, ताकि लड़ाई तो नहीं हो, झगड़ा भी नहीं हो लेकिन ऐसा करना आता नहीं है न! और फिर वह जमाई तो लाख के लिए पीछे पड़ता है, बीस हज़ार नहीं लेता। यानी कि ये रुपये अधिक आ जाएँ तो फिर भाई के साथ लड़ता है, साले के साथ लड़ता है, जमाई के साथ लड़ता है। अधिक रुपये आ जाएँ, तो उसकी सभी के साथ लड़ाई होती है और नहीं होते, तब सभी एकसाथ बैठकर खाते-पीते हैं और मज़े करते हैं। ऐसा है इन पैसों का काम। इसलिए भराव हो जाए तो वह भी *उपाधि* है जबकि कमी नहीं पड़े तो बहुत हो गया।

इस शरीर में भी जब कमी पड़े तब मनुष्य कमज़ोर हो

जाता है और अधिकता हो जाए तब सूजन हो जाती है। सूजन हो तब वह समझता है कि मैं अब मोटा हो गया। अरे, यह तो सूजन चढ़ी है! यानी भराव नहीं हो वह उत्तम है और उसके जैसा कोई पुण्यानुबंधी पुण्य नहीं है। मिल जाए तो गिनने की झंझट होती रहेगी न! दस हज़ार रुपये हों, तो रुपया-रुपया करके दस हज़ार गिनने जाए, तो कब अंत आएगा? और फिर एक-दो की भूल आई तो फिर वापस गिनेगा! अच्छी तरह गिनने के बाद ही सोता है। तब एक व्यक्ति मुझे कहता है कि, 'आप क्या करते हो?' मैंने कहा कि, 'यह तो दस हज़ार की बात है, लेकिन सौ के नोट के छुट्टे किसी दुकान से लेने हों, तो जब दुकानदार सौ गिनकर दे, तब मैं जेब में रख लेता हूँ।' कभी दुकानदार कहे कि, 'साहब, गिन लीजिए।' मैं कहता हूँ कि, 'आप पर मुझे बहुत विश्वास है।' अगर निन्यानवे होंगे तो भी एक रुपया तो गिनने की मेहनत का जाएगा, लेकिन वह गिनने में टाइम चला जाएगा न! इसलिए भले ही रुपया कम हो, लेकिन झंझट नहीं न! इसलिए मैं कभी भी रुपये गिनता ही नहीं। सौ के नोट के सौ रुपये हों तो उन्हें गिनते-गिनते तो दस मिनट चले जाएँगे। फिर जीभ को ऐसे अंगूठा लगाता रहता है! यानी ऐसा करते-करते दो रुपये कम होंगे तो चलेगा। उसमें फिर यदि एक-दो कम होंगे न, तो सौ रुपये की रेज़गारी देनेवाले से लड़ पड़ेगा कि 'ये आपने सौ रुपये दिए, लेकिन पूरे नहीं है, इसमें दो कम हैं।' तब वह कहेगा कि, 'आप वापस गिनिये। बेकार किच-किच मत करो, ज़्यादा माथापच्ची मत करो, नहीं तो लाओ मेरे रुपये वापस।' तब वह वापस नहीं देता और वापस गिनने बैठ जाता है! अरे, लेते समय कलह, किसी को दे तब भी कलह, स्मशान में जाते समय भी कलह! जन्म हुआ तभी से कलह, कलह और कलह!! आया तब 'ऊँवा, ऊँवा' करता है और जाते समय 'डॉक्टर साहब, मुझे बचाइए, बचाइए' करेगा! कब तू बगैर कलह के रहा है! तेरा एक दिन भी आनंद में नहीं बीता! फिर भी खुद परमात्मा है। वह भले

ही कलह करे, लेकिन अपने को तो दर्शन करने पड़ेंगे न! ऐसा यह जगत् है। इसलिए कमी नहीं पड़े और भराव नहीं हो, तो वह सबसे अच्छा।

एक बहन कह रही थीं कि, 'इस साल इतनी अधिक बरसात हो रही है, तो अगले साल क्या होगा? फिर कमी पड़ेगी!' लोग कमी के दौरान भी आशा रखते हैं कि इस साल तो दो-तीन लाख रुपये आ जाएँ तो अच्छा। अरे, अभी के बाद से तो आनेवाले सभी वर्षों में अकाल पड़ेगा! इसलिए आशा मत रखना। लक्ष्मी की बरसात एक साथ हो गई, अब तो पाँच वर्षों तक अकाल पड़ेगा। इसके बजाय यदि वह किश्तों में आए न, तो किश्तों में आने देना ही ठीक है, नहीं तो पूरा धन एकसाथ आएगा तो खर्च हो जाएगा। इसलिए ये जो किश्तें रखी हैं, वह ठीक है। हमें तो, सामनेवाले को संतोष हो वैसा करना है। 'व्यवस्थित' जितनी लक्ष्मी भेजे उतनी स्वीकार कर लेना। कम आए और दिवाली पर दो सौ-तीन सौ कम पड़ जाएँ तो अगली दिवाली पर अधिक बरसात होगी, इसलिए उसमें आपत्ति मत उठाना।

नोट रहे, गिननेवाले गए!

इस लौकिक सुख के बजाय अलौकिक सुख होना चाहिए कि जिस सुख में हमें तृप्ति मिले। ये लौकिक सुख तो *अजंपा* बढ़ाते हैं बल्कि। जिस दिन पचास हज़ार रुपये की कमाई हो जाए न, तो गिन-गिनकर ही दिमाग़ सारा खाली हो जाएगा। दिमाग़ तो इतना अधिक अधीरतावाला हो जाएगा कि खाना-पीना अच्छा नहीं लगेगा। क्योंकि मेरे पास भी पैसा आता था, वह सब मैंने देखा है कि दिमाग़ कैसा हो जाता था तब! इनमें से कुछ भी मेरे अनुभव से बाहर का नहीं है न? मैं तो इस समुद्र में से तैरकर बाहर निकला हूँ, इसलिए मैं सब जानता हूँ कि आपको क्या होता होगा? अधिक रुपये आएँ, तब अधिक अकुलाहट होती है, दिमाग़ डल हो जाता है और कुछ याद नहीं रहता, *अजंपा* ही *अजंपा*

रहा करता है। ये तो नोट गिनते ही रहते हैं, लेकिन वे सभी नोट यहीं के यहीं रह गए और गिननेवाले चले गए! नोट कहते हैं कि, 'तुझे समझना हो तो समझ लेना, 'हम रहेंगे और तू जाएगा!' इसलिए हमें ज़रा सावधान हो जाना चाहिए न! और कुछ नहीं, हमें उनके साथ कोई बैर नहीं बाँधना है। पैसे से हम कहें, 'आओ भाई।' उसकी ज़रूरत है! सभी की ज़रूरत तो है न? लेकिन उसके पीछे ही तन्मयाकार रहे! तो गिननेवाले गए और पैसे रह गए, फिर भी गिनना पड़ता है। वह भी चारा ही नहीं न! शायद ही कोई सेठ ऐसा होगा कि मुनीम जी से कहे कि, 'भाई, मुझे खाते समय परेशान मत करना, आप आराम से पैसे गिनकर तिजोरी में रखना और तिजोरी में से ले लेना।' उसमें दख़ल नहीं करे ऐसा शायद ही कोई सेठ होगा। हिन्दुस्तान में ऐसे दो-पाँच सेठ होंगे जो निर्लेप रहें! वे मेरे जैसे!! मैं कभी भी पैसे नहीं गिनता!! यह क्या झंझट! इन लक्ष्मी जी को आज मैंने बीस-बीस सालों से हाथ में नहीं पकड़ा, तभी इतना आनंद रहता है न?

जब तक व्यवहार है तब तक लक्ष्मी जी की भी ज़रूरत है, उसकी मनाही नहीं है, लेकिन उसमें तन्मयाकार नहीं होना चाहिए। तन्मयाकार तो नारायण में होना। सिर्फ लक्ष्मी जी के पीछे पड़ेंगे तो नारायण चिढ़ जाएँगे। लक्ष्मीनारायण का तो मंदिर है न! लक्ष्मी जी क्या कोई ऐसी-वैसी चीज़ है?

आपको कुछ पसंद आई यह बात?

[३]

उलझन में भी शांति!

उलझनों में जीवन, कितनी मुश्किल?

कोई बात पूछो कुछ! कब तक इस उलझन में पड़े रहोगे?

प्रश्नकर्ता : अभी तो कोई उलझन नहीं है।

दादाश्री : वह तो अभी ऐसा लग रहा है। वर्ना, भोजन के समय टेबल पर मतभेद हो जाए न, तो झंझट हो जाती है। बात-बात में उलझनें ही हैं, एक-एक शब्द पर सिर्फ उलझन है। जितनी उलझन नहीं लगती, उतनी बेशुद्धि है, नहीं तो एक क्षणभर भी सहन नहीं हो, ऐसा यह संसार है। हमें तो यह संसार एक क्षण के लिए भी सहन नहीं होता था। किसी रात मैं सोया ही नहीं था इतना अधिक अपार दु:ख रहता था!

आसपास के सभी लोगों से पूछें कि, 'ये सुखी हैं या दु:खी?' तब सभी कहेंगे कि, 'ये तो बहुत सुखी हैं।' जबकि मुझे खुद को बहुत दु:ख महसूस होता था, क्योंकि अज्ञानता में था। यों हर एक बात में भान आ चुका था, लेकिन अज्ञानता थी। बोलो, दोनों तरफ की दशा, अब क्या हो? यहाँ उजाला हो और जिसने ऐसा देख लिया कि साँप घुस गया है तो उसकी क्या दशा होगी? जिसने नहीं देखा, वह सो जाएगा लेकिन जिसने देखा हो, वह? उसे फिर नींद ही नहीं आएगी। फिर भी इस संसार में किस तरह जीते हैं, वही आश्चर्य है!

घर जाएँ तो पत्नी की झिड़की खानी पड़ती है, व्यापार में

पार्टनर की झिड़की खानी, इन्कमटैक्स ऑफिसर की झिड़कियाँ खानी, नौकरी में साहब की झिड़की खानी। जहाँ-तहाँ झिड़कियाँ ही खाता रहता है, फिर भी शर्म तक नहीं आती कि 'अरे, इतनी झिड़कियाँ खाकर जी रहा हूँ, वह किसलिए जी रहा हूँ?' लेकिन अब कहाँ जाए? फिर ढीठ हो जाता है!

उलझनों का हल, ज्ञानी के माध्यम से

यहाँ पर सभी प्रश्न पूछे जा सकते हैं। आपको उलझन खड़ी नहीं होती? होती है न? तो यहाँ पर उसके सभी खुलासे पूछे जा सकते हैं और फिर हमें उलझनें खड़ी ही नहीं हों, वैसी लाइफ हो जाए तो कितना अच्छा! वह लाइफ कितनी अच्छी कि जिसमें उलझनें खड़ी ही नहीं हों!

प्रश्नकर्ता : उलझनें तो हर एक की लाइफ में होती ही हैं न?

दादाश्री : नहीं, नहीं। हमारे यहाँ पर दस हज़ार लोगों को उलझनें नहीं होतीं। हमें पिछले बाईस सालों से एक भी उलझन नहीं हुई।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य की ज़िंदगी में कुछ न कुछ उलझनें तो होती ही रहती हैं न?

दादाश्री : नहीं, उलझनें हों तो उसे मनुष्य कहेंगे ही कैसे? उलझनवाले मनुष्य को मनुष्य कहेंगे ही कैसे?

प्रश्नकर्ता : उलझनों में भी स्वस्थ मन से सुखी रहना, ऐसा हो सकता है, लेकिन उलझनें तो मनुष्य को होंगी ही न?

दादाश्री : उलझनें नहीं होंगी, तब उसे मनुष्य कहा जाएगा। हिन्दुस्तान का मनुष्य है और अभी तक उलझन में रहा?

प्रश्नकर्ता : उलझन होती है, लेकिन उसमें से हमें रास्ता मिलता है।

दादाश्री : ऐसा है, यह वर्ल्ड इटसेल्फ ही पज़ल है। जिन लोगों की यह पज़ल सोल्व नहीं होती तो वे इस पज़ल में ही डिज़ोल्व हो चुके लोग हैं। हम उस पज़ल को सोल्व कर देते हैं, फिर वह डिज़ोल्व नहीं होता। आपकी यह पज़ल सोल्व करने की इच्छा है क्या?

पहले कभी पढ़ा नहीं हो, जाना नहीं हो, ऐसा यह अपूर्व विज्ञान है। अत: एक घंटे में सारी पज़ल सोल्व कर देता है। फिर वापस पज़ल खड़ी ही नहीं होती, घंटेभर में ऐसा इलाज कर देते हैं, फिर भय नहीं लगता और संसार चलता रहता है।

उलझनें कौन निकाल कर देगा?

कब तक इन उलझनों में पड़े रहना है? जहाँ देखो वहाँ उलझनें ही खड़ी होती रहती हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दस सालों से इसी समाधान की खोज में हूँ, उसे खोजते-खोजते दादा के पास आ गया हूँ।

दादाश्री : यहाँ पर आए तो आपको कुछ हल मिलेगा और ये सारी उलझनें चली जाएँगी। जगत् को उलझनें पसंद नहीं हैं। उसमें, जिसके पास जाएँ वे फिर और अधिक उलझन कर देते हैं, लेकिन उसमें उनका दोष नहीं है। हम समझते हैं कि यहाँ पर हमारी उलझनें कम हो जाएँगी, लेकिन वहीं पर उलझनें बढ़ जाती हैं। अत: यदि उलझनें यदि खत्म हो जाएँ तो हमें शांति रहेगी। नहीं तो शांति कैसे रहेगी? रुपयों से कहीं शांति नहीं हो पाती। स्त्रियों से यदि शांति मिलती तो चक्रवर्तियों की तेरह सौ-तेरह सौ रानियाँ थीं, लेकिन वे भी ऊबकर ज्ञानी के पास दौड़ गए। यानी कि लक्ष्मी से या स्त्री से शांति नहीं मिलती। इसके बावजूद यह जगत् असत्य भी नहीं है। जगत् रिलेटिव सत्य है और आत्मा रियल सत्य है। यदि रियल में आ जाएँ तो उलझनें मिट जाएँगी, वर्ना उलझनें नहीं मिटेंगी और तब तक उलझनें खड़ी

ही रहेंगी। और उलझन में कुछ भी ठीक से नहीं हो पाता। उन उलझनों के कारण कुछ भोग भी नहीं पाते न! कैसे भोगें? क्योंकि सिर पर तलवार लटकी रहती है वहाँ!

प्रश्नकर्ता : भय में रहना पड़ता है।

दादाश्री : यह जगत् भय में रहकर ही सब भोगता है, इसके बजाय तो नहीं भोगना अच्छा।

इसमें परवशता नहीं लगती?

अन्य सभी योनियों के जीव परवश हैं, यह मनुष्य जन्म परवश और स्ववश दोनों हैं। जब तक इन मनुष्यों में अज्ञानता होती है तब तक परवशता और ज्ञान होने के बाद फिर स्ववश, खुद के वश में होता है। अन्य सभी योनियों में परवशता ही है। परवशता यानी, क्या संयोगों के अधीन रहना पड़ता है कभी? ये सभी लोग संयोगों के अधीन ही हैं। भोजन की थाली मिले वह भी संयोगों के अधीन और नहाने का पानी मिले, वह भी संयोगों के अधीन, यह सब व्यवहार संयोगों के अधीन ही है।

अभी तक उलझनों में थे, निरी उलझनें! और फिर पिसे हुए को ही पीसना, तो क्या होगा? यह तो वही की वही कोठड़ी, वही की वही खटिया और वही का वही पलंग और वही का वही तकिया। अब शर्म नहीं आए? मुझे तो बहुत बोरियत होती थी, वही कमरा और वही पलंग देखकर! रोज़-रोज़ नया-नया नहीं चाहिए? रोज़-रोज़ वैसा नया नहीं मिल रहा हो तो 'अपने घर' चले जाना ही अच्छा। अपने घर पर सभी प्रकार का वैभव है। अपने घर का मतलब आप समझे? यदि यहाँ पर संसार दशा में रोज़ नया-नया नहीं मिले, वेराइटी नहीं मिले, तो अपने घर, नहीं चले जाएँ? हमें तो, रोज़ वही का वही तकिया और वही का वही पलंग, तो मुझे तो बोरियत होती थी। यह वही की वही थाली और वही का वही आसन, और वही की वही एक दिन

खिचड़ी और एक दिन चावल! अरे, इतना सारा तरह-तरह का भोजन, लेकिन यह तो रोज़ वही का वही, और 'अपने घर' में तो अपार सुख है और अपार सामग्रियाँ हैं। वह सभी सामान वहाँ पर रखकर यहाँ आए, तो यहाँ पर रोज़ वही की वही कोठड़ी कैसे पसंद आए? फिर संडास भी बदबू मारती है। रोज़ अलग-अलग हो और आनंद आए तो हम समझें कि मोक्ष में जाने की क्या ज़रूरत है? लेकिन यह तो सात महल हों और सभी तरह-तरह के कमरे और तरह-तरह के पलंग हों, फिर भी आखिर में भीतर चैन नहीं पड़ता, वहाँ पर पुसाए ही कैसे? फिर अर्थी निकालते हैं, तब यह सब फ्रैक्चर हो जाएगा। ये लोग तो अर्थी निकाले बगैर रहते ही नहीं न!

अतः यदि अनेक वराइटीज़ नहीं मिल रही हों तो अपने घर पर चले जाना अच्छा। अपने घर पर तो अपार सुख है! लेकिन ज्ञानी मिलें, तब वे हमें हमारे घर तक ले जाएँगे, वर्ना घर तक कोई पहुँचा ही नहीं। ज्ञानी पुरुष खुद पहुँच चुके हैं, इसलिए वे ले जा सकते हैं।

देखो न, आपके लिए रविवार, वह आनंद का दिन है या दुःख का दिन?

प्रश्नकर्ता : काम करना पड़े तो दुःख का दिन लगता है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन रविवार का दिन दुःख का दिन है या आनंद का दिन?

प्रश्नकर्ता : वैसे तो आनंद का दिन है कि, बाहर घूमने-फिरने जाने को मिलता है, उससे आनंद रहता है।

दादाश्री : यानी मुक्त जीवन चाहते हो? मुक्त जीवन का मतलब हमें पसंद आए, जहाँ अनुकूल आए वहाँ पर जाएँ-आएँ, ऐसा पसंद है न? अब कुछ लड़कों का जीवन मुक्त होता है। हम कहें, 'क्यों भाई?' तब कहेगा, 'बिल्कुल बेकार हूँ।' तो उसे

मुक्त जीवन कहेंगे ही नहीं न! वह तो छह दिन मेहनत करके पैसा कमाकर एक दिन मुक्त जीवन रखे, तभी मज़ा आएगा! यानी यह तो मुक्ति पसंद है, यह परवशता पसंद नहीं है। आपको जगत् में ये सब परवशता नहीं लगती?

प्रश्नकर्ता : परवशता तो निभानी पड़ेगी न?

दादाश्री : तो कब तक निभाते रहोगे ऐसा? पत्नी के साथ निभाना, वह तो समझो कि दोनों में से एक मरेगा तो छूटे, लेकिन यह परवशता कब तक निभाते रहोगे? आप अपने होस्पिटल में रोज़ जाते हो, वह राज़ीखुशी से जाते हो या परवशता से जाते हो?

प्रश्नकर्ता : राज़ीखुशी से।

दादाश्री : कभी परवशता से जाना पड़ता है? किसी का विवाह समारोह हो तब बरबस जाना पड़ता है? विवाह में ऐसा जवाब देते हो कि, 'मेरे सभी पेशेन्ट वहाँ पर बैठे हुए हैं, राह देख रहे हैं? मुझे वहाँ जाना ही पड़ेगा।' ऐसे बरबस वहाँ पर गए हो क्या?

प्रश्नकर्ता : ऐसा शुरूआत में होता था। अब नहीं होता।

दादाश्री : यानी यह सब परवशता है। पूरा जगत् परवशता से ही काम कर रहा है, स्ववश से काम नहीं कर सकते। सभी परवशता से ही काम कर रहे हैं, क्योंकि डिस्चार्ज है। अब उसमें राज़ीखुशी से करो या एतराज़ उठाकर करो, लेकिन किए बिना चारा ही नहीं। अनिवार्य है सभी। आपको थोड़ा-बहुत भी अनिवार्यतः करना पड़ता है क्या?

प्रश्नकर्ता : ड्यूटी तो करनी पड़ेगी न?

दादाश्री : हाँ, यानी अनिवार्य है न? उलझन नहीं हो, तो समझना कि हम छूट गए, फिर कोई गालियाँ दे, तो भी उलझन

नहीं होगी या जेब काटे तब भी उलझन नहीं होगी, मारे फिर भी उलझन नहीं होगी, चोट नहीं लगेगी और अन्इफेक्टिव रहा जा सकेगा। यह तो निरी इफेक्ट, इफेक्ट और इफेक्ट। रात को साड़े दस बजे कहा हो कि, 'चाचा, सो जाओ। और चाचा ओढ़कर सो गए, फिर विचार आया कि आज वह एन्ट्री करना रह गया, मुद्दत तो चली गई, तो फिर रात को कितनी देर तक जगता रहेगा?'

प्रश्नकर्ता : पूरी रात।

दादाश्री : लेकिन क्या हो सकता है फिर? यह सारी परवशता कहलाएगा, बेचारगी कहलाएगा! पुलिसवाला झिड़के तब उसे बेचारगी समझ में आती है, या फिर लुटेरों की पकड़ में जाए, ट्रेन खड़ी रखवाकर लुटेरे चढ़ आएँ तब बेचारगी महसूस होती है, ऐसा होता है या नहीं होता? तो यह बेचारगी कब तक पुसाएगी?

जगत् में उलझनें कब मिटेंगी?

इस जगत् में किसी की भी बात गलत नहीं होती, लेकिन अपने-अपने व्यू पोइन्ट हैं। हमें किसी का गलत दिखता ही नहीं, लेकिन जब उलझन जाए, तब समझ जाते हैं कि यह करेक्ट है। तब तक करेक्ट नहीं कहते किसी को भी। उलझन हमेशा के लिए चली जाए, तब करेक्ट कहते हैं, वर्ना तब तक करेक्ट नहीं कहा जा सकता। फिर भी किसी का भी गलत नहीं है, वह उसका, हर एक का व्यू पोइन्ट है और जब तीन सौ साठ व्यू पोइन्ट पूरे हो जाएँगे, तब उलझनें जाएँगी, नहीं तो उलझनें जाएँगी नहीं। तप करो, जप करो, ध्यान करो, योग करो, लेकिन सभी 'करो, करो' कहते हैं, वे सभी उलझन में डालते हैं।

प्रश्नकर्ता : उलझन में से कैसे निकला जा सकता है?

दादाश्री : यहाँ आओ तो आपकी उलझनें निकाल देंगे, दो-तीन दिनों तक आओ तो उलझनों में से बाहर निकाल देंगे। ये डॉक्टर भी ओपरेशन करने से पहले थोड़ा टाइम लेते हैं, दो दिन

पहले कुछ जुलाब की दवाई देते हैं, पेट को साफ करने के बाद ओपरेशन करते हैं, उसी तरह हमारे यहाँ साफ करने के बाद ओपरेशन होगा, फिर उलझनें निकल जाएँगी। फिर हमारे कहे अनुसार चलेगा तो फिर से उलझनें नहीं आएँगी। वर्ना यह जगत् तो पूरा उलझनों से ही भरा हुआ है। भले ही कितने भी शास्त्र पढ़े, कुछ भी करे, फिर भी उलझनें जाएँगी नहीं।

उलझनों का 'एन्ड' कब आएगा? रिलेटिव और रियल, ये दो ही चीज़ें जगत् में हैं। ऑल दीज़ रिलेटिव्ज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट और रियल इज़ दी परमानेन्ट। अब परमानेन्ट भाग कितना और टेम्परेरी भाग कितना, उनके बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल दें, तो उलझनें बंद हो जाएँगी, नहीं तो उलझनें बंद नहीं होंगी। चौबीसों तीर्थंकरों ने वह डिमार्केशन लाइन डाली थी। कुन्दकुन्दाचार्य ने यह लाइन डाली थी। अभी अपने यहाँ पर डिमार्केशन लाइन डाल देते हैं कि तुरंत उसका सब ठीक हो जाता है। रिलेटिव और रियल, इन दोनों की उलझनों के बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल देते हैं कि यह भाग तेरा और यह पराया भाग है। अब पराये भाग को 'मेरा' मत मानना। उसे ऐसा समझा दिया कि उसका समाधान हो जाता है। यह तो पराया माल ले लिया है, उस वजह से कहासुनी चल रही है। झगड़े चलते ही रहते हैं। उलझन यानी झगड़े चलते ही रहेंगे और एक भी खुद की भूल दिखेगी नहीं। ऐसे तो है पूरा ही भूलवाला बहीखाता, लेकिन खुद की भूल क्यों नहीं दिखती? कि खुद वकील, खुद जज और खुद ही अभियुक्त, फिर खुद गुनाह में आएगा ही नहीं न? और दूसरों के सभी गुनाह निकाल बताएगा। यानी रिलेटिव और रियल का ज्ञान होने के बाद खुद की ही भूलें दिखेंगी। जहाँ देखो वहाँ पर खुद की ही भूलें दिखेंगी और भूल है ही खुद की। खुद की भूलों से यह जगत् खड़ा है, यह जगत् किसी की भूल से नहीं खड़ा है। जब खुद की भूलें खत्म हो जाएँगी तो फिर वह सिद्धगति में ही चला जाएगा!

...फिर परतंत्रता आती ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : उलझनों में से बाहर निकल चुके लोग फिर से उलझन में फँस सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, फिर यदि खुद की इच्छा हो और फँसना हो, तो फँसेगा। खुद की इच्छा हो, तो वह भी एक हद तक ही। बाद में खुद उस ओर के रास्ते पर जाता है, स्वतंत्रता में जाता है। उसके बाद परतंत्र होना चाहे, फिर भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

नहीं तो, उलझनों में उलझा जीवन!

मनुष्यजन्म के एक मिनट की क़ीमत तो कही जा सके वैसा नहीं है, इतनी अधिक क़ीमत है। यह हिन्दुस्तान के मनुष्यों की बात है। हिन्दुस्तान के लोगों को क्यों दूसरों से अलग मानते हैं कि, इन लोगों की बिलीफ में पुनर्जन्म आ चुका है। हिन्दुस्तान के अलावा, बाहर के लोगों की बिलीफ में पुनर्जन्म नहीं आया है। इसलिए हिन्दुस्तान के इंसान के एक मिनट की भी बहुत क़ीमत है, लेकिन यह तो यों ही बीत जाता है, पूरे दिन बगैर भान के यों ही बेभानता में बीत जाता है। आपका कोई क्षण बेकार गया है?

प्रश्नकर्ता : बहुत सारे बेकार गए हैं।

दादाश्री : ऐसा? तो काम में कितने आए? किसमें काम आए?

इंसान पूरे दिन उलझनों में उलझता रहता है। साधु-संन्यासी सभी उलझे रहते हैं। बड़ा राजा हो या वकील हो, लेकिन वह भी उलझा रहता है, जिसके पास जायदाद कम हो वह कम उलझा रहता है और अधिक जायदादा हो तो अधिक उलझा रहता है, यानी कि यह पूरा संसार उलझन ही है। तो इस उलझन में से

निकलें कैसे? उसके बारे में सवाल पूछकर जवाब प्राप्त कर लेने चाहिए और आपको इस उलझन में से निकलने के रास्ते ढूँढने चाहिए। जो उलझनों में से निकल चुके हैं, वे हमें उलझन में से बाहर निकाल देंगे, बाकी इस उलझन में से कोई निकला ही नहीं है। वही हमें उलझन में डाल देता है न! आपको कभी उलझन में से निकलने की इच्छा होती है क्या? पैसों के बिस्तर बनाने से भी नींद नहीं आती और उससे कोई सुख नहीं मिलता। कितने भी पैसे हों, तब भी दुःख! उन पैसों को भी फिर रखने जाना पड़ता है, फिर उन्हें संभालना भी दुःख, और खर्च हो जाएँ उस घड़ी भी दुःख, खर्च करते समय दुःख होता रहता है, कमाते समय भी दुःख होता रहता है! यानी जहाँ पर दुःख और सिर्फ दुःख ही है, जन्म लिया तब एक तरफ के रिश्तेदार थे, फादर-मदर और जब शादी की तब ससुर-सास, दादीसास, मौसीसास, वे सब मिले। ये उलझनें क्या कम थीं, कि और बढ़ाई!

जगत् का रूप ही उलझन!

यानी यह उलझन है, उसमें कुछ पूछकर अपनी उलझन निकाल लें ऐसा रास्ता ढूँढ निकालना चाहिए। ऐसा पूछो कि आपके मन में से सभी उलझनें निकल जाएँ, वर्ना यह जगत् तो निरा उलझनोंवाला ही है, पूरा। और हमने क्या कहा है कि द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। यह इटसेल्फ पज़ल हुआ है। गॉड हेज़ नोट पज़ल्ड दिस वर्ल्ड एट ऑल। यदि भगवान ने पज़ल किया होता न, तो ये लोग उसे पकड़कर बुलवाते कि क्यों लोगों को परेशान कर रहा है, बेकार में? और कहना पड़ता कि क्या यह तेरी बपौती है कि लोगों का बिगाड़ रहा है? लेकिन यह किसी की बपौती नहीं है। यह तो हर किसी की खुद की संपत्ति है और जिन्हें *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण। मेरापन) लगा उन सभी की ज़ायदाद है, लेकिन उस ज़ायदाद को भोगना नहीं आता।

तो संसार के सार के रूप में क्या मिला?

संसार का सार निकाला है क्या? व्यापार का सार (बैलेन्सशीट) तो हर साल निकालते हो, लेकिन क्या संसार का सार निकाला है कि 'कौन-से बहीखाते में नुकसान है और कौन से बहीखाते में नफा है?' ऐसा आपने नहीं निकाला? ऐसा है न, यह सार सबसे पहले निकालना चाहिए कि भाई, बार-बार इस संसार का आराधन करते हैं, तो यह सही है या गलत है? उसमें फायदा होता है या नुकसान होता है! ऐसा सार नहीं निकालना चाहिए? मैं तो अनंत जन्मों से इस संसार का सार ही निकालता आया था।

कृपालुदेव से किसीने पूछा कि संसार में आपको ऊब होती है क्या, साहब? तब वे क्या बोले? कि, 'संसार में ऊब तो... बहुत समय से ऊब गए हैं।' वे क्यों ऊब गए होंग? क्योंकि सार निकालकर देख लिया था। उसी तरह क्या आपने वैसा सार नहीं निकाला? यानी कि ज़्यादा बोरियत नहीं होती न! इसलिए अब सार निकाल लेना। कब तक ऐसा अंधेर राज चलाओगे? और यह राज कोई अंधेर राज नहीं है, यह तो वीतरागों का मत है! आज भगवान के दर्शन कर आए, तो क्या वे आपके घर पर आकर हेल्प करेंगे? वे तो कहते हैं, 'तेरा हिसाब तेरे साथ। मुझे जितने समय तक याद करेगा, उतने समय तो तुझे शांति रहेगी। उसकी गारन्टी देता हूँ, लेकिन अगर मुझे भूल जाएगा तो मार खाएगा!'

[४]

टालो कंटाला!

कंटालारहित जीवन, संभव है?

दादाश्री : कभी कंटाला-वंटाला आता है क्या?

प्रश्नकर्ता : कंटाला (बोरियत) तो आता है न! जो चीज़ अप्रिय हो, उससे कंटाला आता है।

दादाश्री : वह तो नापसंदगी उत्पन्न होती है। इस जगत् में कोई चीज़ प्रिय लगाने जैसी नहीं है, उसी प्रकार अप्रिय लगाने जैसी भी नहीं है। अपनी भूलों के कारण प्रिय-अप्रिय दिखता है। आपका बेटा है, वह आपको अभी प्रिय लगता है। बचपन से वह अभी तक आपको प्रिय ही लगा है, लेकिन एक दिन जब सामने बोले तब? तब अप्रिय लगेगा न? अब, वह नहीं बदला है, आप बदल गए हो। वह सामने बोलता है, उसमें वह नहीं बदला, वह तो उसकी प्रकृति है, वह तो आप ही बदल गए हो। जो आपको प्रिय लगता था, वह अभी अप्रिय क्यों लग रहा है? आप में ही कुछ भूल है! आपके इगोइज़म को आघात लगता है। आपको समझ में आया न? खुद की स्त्री भी अप्रिय लगने लगती है, सबकुछ अप्रिय लगने लगता है। अंत में जो खुद की प्रियातिप्रिय देह है, वह भी अप्रिय लगने लगती है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे अप्रिय लगना, वह क्या अपनी भूल है?

दादाश्री : हाँ। क्योंकि वह प्रिय लगती थी, इसलिए अप्रिय हो जाती है। प्रिय-अप्रिय दोनों ही द्वंद्व नहीं चाहिए। सबकुछ नॉर्मल

रखना अच्छा। यह तो कोई मान दें तो प्रिय लगने लगता है और अपमान करे तो अप्रिय लगने लगता है। जहाँ अप्रिय लगे वहाँ पर द्वेष होता है। जहाँ द्वेष होता है वहाँ कर्म बंधते हैं। जहाँ कर्म बंधें, वहाँ पर अगला जन्म मिलता है। इस प्रकार ये सब मुश्किलें हैं इसमें।

प्रश्नकर्ता : प्रिय-अप्रिय, पसंद-नापसंद, वह सब किस आधार पर खड़े हैं?

दादाश्री : वे सब अज्ञानता के कारण खड़े हैं। इन सबका मूल आधार अज्ञानता है और फिर वह अज्ञानता भी आधारी है। अज्ञानता को आधार देनेवाला कोई चाहिए या नहीं चाहिए?

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता को आधार देनेवाला कौन है?

दादाश्री : वह खुद ही, वही अहंकार है। अहंकार के कारण खुद, अज्ञान को आधार देता है कि, 'नहीं, ठीक है, करेक्ट है।' अब जब हम वह अहंकार निकाल देते हैं, तब अज्ञान निराधार होकर गिर पड़ता है, वर्ना अहंकार ही हर रोज़, पूरे दिन, अज्ञान को आधार देता रहता है।

कंटाला (बोरियत) उस शब्द का पृथक्करण किया है कि कंटाला शब्द किस पर से बना होगा? ये काँटें सब यों ही बिखरे पड़े हों, और उन पर बिस्तर बिछाएँ तो फिर कैसी शांति रहेगी? फिर कंटाला आएगा। काँटे का बिस्तर, उसी का नाम कंटाला। तुझे ऐसे बिस्तर पर सोना पसंद है? ऐसा पसंद है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा किसे पसंद आएगा?

दादाश्री : पसंद नहीं आए तो उसका उपाय ढूँढ निकालना पड़ेगा। क्या तूने ढूँढ निकाला है? क्या ढूँढा है?

प्रश्नकर्ता : वह तो अपने आप ही निकल आता है।

दादाश्री : तो अब फिर से, छह महीने बाद भी कंटाला नहीं आएगा, क्या ऐसा तय हो गया है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन वह तो उसकी कंपनी, फ्रेन्ड सर्कल पर निर्भर करता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन कंपनी किस पर निर्भर है? आज किस तरह की कंपनी मिलेगी, वह किस पर निर्भर है? आज मैं तुझे मिलनेवाला हूँ, यह कंपनी मिलनेवाली है, वह किस पर निर्भर है?

प्रश्नकर्ता : यह तो जीवन का चक्र है!

दादाश्री : हाँ, लेकिन इस चक्र को कौन घुमाता है? किसलिए घुमाता है? किसी को ऐसी जगह पर क्यों पटक देता है और किसी को जेब कटे वैसी जगह पर क्यों ले जाता है?

प्रश्नकर्ता : यह सब कुदरती है क्या?

दादाश्री : हाँ, कुदरत। उसे अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स कहते हैं, वही इस पूरे जगत् को चलाती है।

अब यदि तुझे कोई ऐसी दवाई मिल जाए जिससे कंटाला नहीं आए, तो तुझे अच्छा नहीं लगेगा? ज़िंदगीभर कंटाला नहीं आए, चिंता नहीं हो, *उपाधि* नहीं हो, तो बहुत अच्छा रहेगा न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा होगा ही नहीं न, इम्पोसिबल बात है।

दादाश्री : ऐसा है न, कि यह 'इम्पोसिबल' शब्द है न, वह भी 'पोसिबल' शब्द में से उत्पन्न हुआ है। यानी कि 'इम्पोसिबल' शब्द का जन्मस्थान 'पोसिबल' शब्द है। इसलिए सभी कुछ संभव है। अभी 'इन' सभी को कोई चिंता नहीं है। 'इन' सभी से कहा है कि एक भी चिंता हो तो मुझ पर दावा करना।

प्रश्नकर्ता : कंटालारहित ज़िंदगी हो और जीवन में सुख ही मिले तो फिर मनुष्य मदहोश नहीं हो जाएगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा है न, यह जो सांसारिक सुख है वह कल्पित सुख है, इस सुख से इंसान मदहोश हो जाता है। लेकिन जब खुद का सच्चा सुख, शाश्वत सुख मिले जो कि तृप्ति देता है, तो उससे इंसान मदहोश होगा ही नहीं। यह तो कल्पित सुख से इंसान ऐसे मदहोश हो जाता है। सच ही कहा है, वह कल्पित सुख यदि हमें हमेशा के लिए मिल जाए तो इंसान फिर मदहोश हो जाएगा, पागल हो जाएगा। क्योंकि कल्पित सुख है और कल्पित सुख यदि अधिक बढ़ जाए तो इंसान मदहोश हो जाता है। इसलिए उसके लिए कंट्रोल की ज़रूरत है ही। थोड़ी देर मार पड़ती है और फिर थोड़ी देर सुख मिलता है! ये मार और सुख, दोनों कल्पित हैं। और यह आत्मा का सुख, वह शाश्वत सुख है, स्थायी सुख है। यह सुख आने के बाद जाता नहीं है। यह सुख तो जब खुद को खुद के स्वरूप का ज्ञान हो जाए, खुद के सेल्फ का रियलाइज़ेशन हो जाए, तब उत्पन्न होता है।

यह घड़ी चलती है या नहीं, तू ऐसा रियलाइज़ करके लाया है या यों ही ले आया?

प्रश्नकर्ता : रियलाइज़ करके।

दादाश्री : हाँ, तो यह सब रियलाइज़ करके लाया है और खुद अपने आप को रियलाइज़ नहीं किया। लोग वाइफ को भी रियलाइज़ करके लाते हैं न? लेकिन खुद अपने आपको रियलाइज़ कर ले न! वह नहीं करना चाहिए क्या?

[५]

चिंता से मुक्ति

जगत् में, चिंता की दवाई क्या है?

दादाश्री : आपने कभी चिंता देखी है या नहीं देखी?

प्रश्नकर्ता : देखी है न।

दादाश्री : अच्छी तरह से पहचानते हो?

प्रश्नकर्ता : चिंता में और सिर्फ चिंता में ही डूबा हुआ हूँ।

दादाश्री : चिंता में ही रहते हो, फिर देखने को रहा ही कहाँ? हमेशा चिंता ही है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन चिंता तो सभी को होती है न!

दादाश्री : तो फिर ऐसा घर जैसा ही संबंध होगा न? बार-बार आए और जाए, बार-बार आए और जाए, ऐसा संबंध है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन यों तो मुझे चिंता रखनी ही नहीं है न!

दादाश्री : वह तो, सभी ऐसा ही कहते हैं कि मुझे चिंता नहीं रखनी है, लेकिन चिंता किसी को भी छोड़ती नहीं है न! वह तो रात को ग्यारह बजे भी आकर साथ में ही खड़ी रहती है और पूरे दिन भी चिंता, कि 'ऐसा हो जाएगा और वैसा हो जाएगा।' उसके बाद फिर मुँह पर जैसे अरंडी का तेल चुपड़ लिया हो वैसा नहीं हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : हो जाएगा न!

दादाश्री : तो उसका हल तो लाना पड़ेगा न? इन रोंग बिलीफों को कब तक पकड़कर रखोगे? अब अगर वरीज़ चखी हों न, तभी वास्तव में इस जगत् का स्वाद पता चलता है, वर्ना तब तक इस जगत् का स्वाद समझ में नहीं आता। निरी वरीज़, वरीज़, वरीज़! जैसे शक्करकंद भट्ठी में भुनते हैं, वैसे ही जगत् भुन रहा है! जैसे मछलियाँ तेल में तली जाती हैं वैसी छटपटाहट हो रही है! इसे लाइफ कैसे कहेंगे? अब जब यह चिंता होती है, तब कौन सी दवाई लगाते हो?

प्रश्नकर्ता : शांत निद्राधीन हो जाएँ, तो चिंतामुक्त हुआ जा सकेगा।

दादाश्री : निद्राधीन? लेकिन नींद आती है क्या, उस घड़ी?

प्रश्नकर्ता : वह तो थककर नींद आ जाती है।

दादाश्री : हाँ, मन थक जाए तो नींद आ जाती है। सच कह रहे हो, गलत नहीं कह रहे हो आप। अब चिंता पसंद नहीं है न? तो उसे भेजता कौन है?

प्रश्नकर्ता : भगवान।

दादाश्री : ऐसा? भगवान बेचारों के माँ-बाप नहीं हैं, तो उन्हें लोग भला-बुरा कहते रहते हैं। किसी के बच्चे को हम भला-बुरा कहें तो उसके माँ-बाप हमें छोड़ेंगे नहीं न? लेकिन भगवान के तो माँ-बाप हैं नहीं, इसलिए सभी भगवान को बदनाम करते हैं कि भगवान ने मेरे साथ ऐसा किया! भगवान ने क्यों सभी लोगों को चिंता में रखा होगा?

प्रश्नकर्ता : कर्म के फल भुगतने के लिए।

दादाश्री : हमने जो कर्म किए उनका फल हमें ही भुगतना

है। वह बात सही है न? तो इसमें फिर बीच में ईश्वर की ज़रूरत ही क्या है?

जहाँ चिंता, वहाँ पर अनुभूति कहाँ से?

प्रश्नकर्ता : चिंता से पर होने के लिए भगवान के आशीर्वाद माँगते हैं कि 'मैं इसमें से कब छूटूँगा,' इसलिए 'भगवान-भगवान' करते हैं। उस माध्यम से हम लोग आगे बढ़ना चाहते हैं। फिर भी अभी तक मुझे मेरे भीतरवाले भगवान की अनुभूति नहीं हो पाती।

दादाश्री : अनुभूति कैसे होगी? चिंता में अनुभूति होगी ही नहीं न! चिंता और अनुभूति, दोनों साथ में नहीं हो सकते। चिंता बंद होगी, तब अनुभूति होगी।

प्रश्नकर्ता : चिंता किस तरह मिटेगी?

दादाश्री : यहाँ सत्संग में रहने से। कभी सत्संग में आए हो?

प्रश्नकर्ता : दूसरी जगह सत्संग में जाता हूँ, लेकिन यहाँ तो एक-दो बार ही आया हूँ।

दादाश्री : जिस सत्संग में जाने से चिंता बंद नहीं होती तो वह सत्संग छोड़ देना चाहिए। बाकी, सत्संग में चिंता बंद होनी ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जितनी देर वहाँ बैठे रहते हैं, उतनी देर शांति रहती है।

दादाश्री : नहीं, उसे कहीं शांति नहीं कहते। उसमें शांति नहीं है। ऐसी शांति तो... हम गप्प सुनें तब भी शांति रहेगी। सच्ची शांति तो निरंतर रहनी चाहिए, जानी ही नहीं चाहिए। अतः जहाँ चिंता हो, उस प्रकार के सत्संग में जाएँ ही क्यों? सत्संगवालों

से कह देना चाहिए कि, 'भाई, हमें चिंता होती है, इसलिए अब हम यहाँ पर नहीं आएँगे, वर्ना आप कुछ ऐसा इलाज कीजिए कि चिंता नहीं हो।'

प्रश्नकर्ता : ऑफिस में जाऊँ या घर आऊँ, फिर भी कहीं मन नहीं लगता।

दादाश्री : ऑफिस में तो आप नौकरी के लिए जाते हो और तनख़्वाह तो चाहिए न! घर संसार चलाना है, इसलिए घर नहीं छोड़ देना है, नौकरी नहीं छोड़ देनी है। लेकिन जहाँ पर चिंता नहीं मिटे वह सत्संग छोड़ देना। दूसरा नया सत्संग ढूँढना, तीसरे सत्संग में जाना। कई तरह के सत्संग होते हैं, लेकिन सत्संग से चिंता जानी चाहिए। किसी और सत्संग में नहीं गए?

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें ऐसा कहा गया है कि भगवान आपके अंदर ही हैं, आपको शांति अंदर से ही मिलेगी, बाहर भटकना बंद कर दो।

दादाश्री : हाँ, ठीक है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर जो भगवान बिराजमान हैं, उनका ज़रा सा भी अनुभव नहीं होता।

दादाश्री : चिंता में अनुभव नहीं होता। चिंता होगी, तो जो अनुभव हुआ होगा वह भी चला जाएगा। चिंता तो एक प्रकार का अहंकार कहलाता है। भगवान कहते हैं कि, ''तू अहंकार करता है? तो हमारे पास से चला जा! जिसे चलाने का ऐसा अहंकार हो कि 'यह मैं चलाता हूँ' वही चिंता करेगा न?'' भगवान पर ज़रा सा भी विश्वास नहीं हो वही चिंता करेगा न?

प्रश्नकर्ता : भगवान पर तो विश्वास है।

दादाश्री : विश्वास हो तो ऐसा करे ही नहीं न! भगवान के विश्वास पर छोड़कर चैन से ओढ़कर सो जाएगा। उसकी चिंता

भला कौन करे? अत: भगवान पर विश्वास रखो। भगवान आपका थोड़ा बहुत चलाते होंगे या नहीं? अंदर भोजन डालने के बाद क्या फिर चिंता करते हो? पाचक रस डल गए या नहीं, पित्त डल गया, ऐसी सब चिंताएँ नहीं करते? 'इसमें से खून बनेगा या नहीं बनेगा? इसमें से संडास बनेगा या नहीं?' ऐसी चिंता करते हो? यानी चलाने के लिए ये अंदर का बहुत कुछ है, बाहर तो क्या चलाना है, कि उसकी चिंता करते हो? फिर भगवान को बुरा ही लगेगा न! अहंकार करते हो, इसलिए चिंता होती है। चिंता करनेवाले लोग अहंकारी कहलाते हैं। एक हफ्ता सब भगवान पर छोड़कर चिंता करना बंद कर दो। फिर यहाँ पर कभी भगवान का साक्षात्कार करवा देंगे, तब हमेशा के लिए चिंता मिट जाएगी!

चिंता जाए, तभी से समाधि

चिंता नहीं हो तब सचमुच में उलझन गई। चिंता नहीं हो, वरीज़ नहीं हों और *उपाधि* में समता रहे, *उपाधि* में भीतर समाधि रहे तो समझना कि सचमुच में उलझन चली गई।

प्रश्नकर्ता : ऐसी समाधि लानी हो फिर भी नहीं आती।

दादाश्री : वह तो ऐसे लाने से नहीं आएगी! 'ज्ञानीपुरुष' उलझन निकाल दें, सबकुछ शुद्ध कर दें तब निरंतर समाधि रहेगी।

प्रश्नकर्ता : क्या वह भी 'व्यवस्थित' नहीं है कि 'उलझन निकलेगी ही नहीं?'

दादाश्री : आपकी उलझनें नहीं निकलतीं, वह भी 'व्यवस्थित' ही है और उलझनें निकल जाएँ, वह भी 'व्यवस्थित' ही है। इसीलिए मैं कहता हूँ न, मैं तो निमित्त हूँ, मैं कुछ इसका कर्ता नहीं हूँ।

चिंता चली जाए, उसी को समाधि कहते हैं। उससे फिर काम भी पहले से ज़्यादा होगा, क्योंकि उलझन नहीं रहीं न फिर! ऑफिस में जाकर बैठे कि काम शुरू। घर के विचार नहीं आएँगे,

बाहर के विचार नहीं आएँगे, अन्य कोई भी विचार नहीं आएँगे और संपूर्ण एकाग्रता रहेगी।

जिसके संसार के काम बिगड़ते हैं, उसके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'धर्म प्राप्त किया।' संसार का काम सुधरना चाहिए, संसार सुधरना चाहिए। आसपासवाले भी कहें कि, 'नहीं भाई, ये बहुत अच्छे आदमी हैं।' जबकि भक्त तो बहुत बावरे होते हैं, उनका तो संसार भी बिगड़ता है और धर्म भी बिगड़ता है, सबकुछ बिगड़ जाता है, और ये तो ज्ञानी कहलाते हैं, व्यवहार में एक्ज़ेक्ट रहते हैं। यह ज्ञान तो लोगों का काम ही निकाल देगा, वर्ना अशांति से इंसान को पाप बँधते हैं। इंसान को जब अशांति हो जाती हैं न, तब सामनेवाले लोग यदि अच्छे हों, फिर भी खराब दिखाई देते हैं, लेकिन यदि अंदर शांति है तो कोई सामनेवाला व्यक्ति यदि खराब होगा तो भी अच्छा लगेगा।

बेटाइम की चिंता

यह तो साइन्स है, कभी-कभी ही अक्रम विज्ञान निकलता है, अक्रम यानी क्रम वगैरह नहीं। यह मुख्य मार्ग नहीं है, यह तो पगडंडीवाला रास्ता है, मुख्य मार्ग तो चल ही रहा है न! वह मार्ग अभी मूल स्टेज में नहीं है, अभी अपसेट हो गया है। सभी धर्म अपसेट हो गए हैं। जब धर्म मूल स्टेज में था तब तो जैनों के और वैष्णवों के घर बगैर चिंता के चलते थे। आजकल तो बेटी तीन साल की हो तभी से कहेगा कि, 'देखो न, मुझे इस बेटी की शादी करवानी है।' 'अरे, बेटी की शादी बीस साल की उम्र में होगी, लेकिन अभी से किसलिए चिंता करता है? सत्रह साल पहले शादी की चिंता कर रहा है, तो मरने की चिंता क्यों नहीं करता?' तब कहेगा कि, 'नहीं, मरने का तो याद ही मत करवाओ।' तब मैंने कहा कि, 'मरने की बात सुनने में क्या आपत्ति है? क्या आप नहीं मरनेवाले?' तब कहता है कि, 'लेकिन यदि मरने का याद करवाओगे न, तो आज का सुख चला जाएगा, आज

का हमारा सारा स्वाद बिगड़ जाएगा।' 'तब बेटी की शादी का किसलिए याद कर रहा है? उससे भी तेरा स्वाद चला जाएगा न? और बेटी अपनी शादी का सबकुछ लेकर ही आई है। माँ-बाप तो इसमें निमित्त ही हैं।' बेटी अपनी शादी का, सबकुछ ही साधन लेकर आई है। बैंक बैलेन्स, पैसा वगैरह सबकुछ लेकर आई है। ज़्यादा या कम, जितना भी खर्चा होगा, वह एक्ज़ेक्टली सबकुछ लेकर ही आई है। यह तो सिर्फ इतना ही है कि सब बाप को सौंपा हुआ है! इसलिए वरीज़ करने जैसा यह जगत् है ही नहीं। एक्ज़ेक्टली देखने जाएँ तो यह जगत् बिल्कुल वरीज़ करने जैसा है ही नहीं, था भी नहीं और होगा भी नहीं।

बेटी अपना हिसाब लेकर आई है। बेटी की वरीज़ आपको नहीं करनी हैं। बेटी के आप पालक हो। बेटी अपने लिए लड़का भी लेकर आई है। हमें किसी से कहने नहीं जाना पड़ता कि 'बेटा पैदा करना। हमारी बेटी है उसके लिए बेटा पैदा करना,' क्या ऐसा कहने जाना पड़ता है? यानी कि सब सामान तैयार लेकर आई है? जबकि बाप कहेगा, 'यह पच्चीस साल की हो गई, अभी तक इसका ठिकाना नहीं पड़ा। ऐसा है, वैसा है।' वह सारे दिन गाता रहता है। 'अरे, वहाँ पर बेटा सत्ताइस साल का हो गया है, लेकिन तुझे मिल नहीं रहा है, तो शिकायत क्यों कर रहा है? सो जा न चुपचाप! वह बेटी अपना टाइमिंग वगैरह सबकुछ सेट करके लाई है।'

कुछ लोग तो अभी बेटी तीन वर्ष की हो तभी से चिंता करते हैं कि, 'जाति में खर्चा बहुत है, किस तरह करूँगा?' वे शिकायत करते रहते हैं। यह तो सिर्फ इगोइज़म करते रहते हैं। क्यों बेटी की चिंता करता रहता है? शादी के समय पर बेटी की शादी हो जाएगी। संडास संडास के टाइम पर होगी, भूख भूख के टाइम पर लगेगी, नींद नींद के टाइम पर आएगी। तू क्यों किसी भी चीज़ की चिंता कर रहा है? नींद अपना टाइम लेकर

आई है, संडास अपना टाइम लेकर आई है, किसलिए वरीज़ करते हो? नींद का टाइम होते ही अपने आप आँखें मिंच जाएँगी। 'उठना' भी अपना टाइम लेकर आया है। उसी तरह बेटी भी अपने विवाह का टाइम लेकर आई है। वह पहले जाएगी या हम पहले जाएँगे, है कोई उसका ठिकाना?

परसत्ता को पकड़े, वहाँ चिंता होगी

आपको कैसा है? कभी *उपाधि* होती है? चिंता हो जाती है?

प्रश्नकर्ता : हमारी इस बड़ी बेटी की सगाई नहीं हो रही है, इसलिए परेशानी हो जाती है न!

दादाश्री : महावीर भगवान को क्या अपनी बेटी की शादी नहीं करवानी थी? वह भी बड़ी हो गई थी न? भगवान क्यों परेशान नहीं होते थे? आपके हाथ में हो तो परेशान होवो न, लेकिन क्या यह चीज़ आपके हाथ में है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : नहीं? तो परेशान क्यों होते हो? तो क्या फिर इस सेठ के हाथ में है? इस बहन के हाथ में है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो किस के हाथ में है, वह जाने बिना आप परेशान होने लगो तो वह किस जैसा है? कि मान लो, हम दस लोग एक घोड़ागाड़ी में बैठे हों, बड़ी दो घोड़ों की घोड़ागाड़ी है। अब चलानेवाला उसे चला रहा है और आप उसमें बैठे शोर मचाओ कि, 'एय! ऐसे चला, एय! ऐसे चला,' तो क्या होगा? जो चला रहा है, उसे देखते रहो न! 'चलानेवाला कौन है' इतना जान लें तो हमें चिंता नहीं होगी। उसी प्रकार 'यह जगत् कौन चला रहा है' यदि वह जान लें तो हमें चिंता नहीं होगी। आप

रात-दिन चिंता करती हो? कब तक करोगी? उसका अंत कब आएगा? वह मुझे बताओ।

यह बेटी तो अपना लेकर आई है। क्या आप अपना सबकुछ लेकर नहीं आई थीं? यह सेठ आपको मिले या नहीं मिले? जब सेठ आपको मिले, तो इस बेटी को कोई क्यों नहीं मिलेगा? आप ज़रा तो धीरज रखो। वीतराग मार्ग में हो और इस प्रकार धीरज नहीं रखोगी तो उससे आर्तध्यान होगा, रौद्रध्यान होगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं है लेकिन स्वभाविक फिक्र तो होगी न!

दादाश्री : वह स्वभाविक फिक्र, वही आर्तध्यान और रौद्रध्यान कहलाता है, भीतर आत्मा को पीड़ित किया हमने। दूसरों को पीड़ा नहीं दे रही हो तो ठीक है, लेकिन यह तो आत्मा को पीड़ित किया।

इसका चलानेवाला कौन होगा? बहन, आप तो जानती होंगी? ये सेठ जानते होंगे? कोई चलानेवाला होगा या आप चलाती हो?

प्रश्नकर्ता : कोई नहीं।

दादाश्री : किसी के बगैर यह कैसे चल सकता है? कोई तो संचालक होगा न? संचालक के बिना तो चलेगा ही नहीं न? ऐसा है, कि कभी जब बुखार आता है, तब मन में ऐसा लगता है कि 'मुझे बुखार आया,' लेकिन 'किसने भेजा' उसका पता नहीं लगाते। इसलिए मन में क्या लगता है कि अब बुखार नहीं जाएगा तो क्या करूँगी? अरे भाई आया है, भेजनेवाले ने उसे भेजा है, और वापस बुलवा लेंगे, हमें फिक्र करनी रही ही कहाँ? हमने नहीं बुलाया है, भेजनेवाले ने भेजा है, वे वापस बुला लेंगे, यह सब कुदरती रचना है। अगर सोचना है तो हमें खाने से पहले सोचना चाहिए कि यह दाल मुझे वायु करेगी या नहीं? लेकिन यदि खाने के बाद ऐसा सोचे कि 'अब मुझे क्या होगा, क्या होगा,' तो उसका क्या अर्थ है?

चिंता करने से तो अंतराय कर्म डलता है बल्कि, उससे काम लंबा हो जाता है। आपको कोई कहे कि 'फलानी जगह पर लड़का है,' तो आप प्रयत्न करना। भगवान ने चिंता करने को मना किया है। चिंता करने से तो एक और अंतराय पड़ जाता है। और वीतराग भगवान ने क्या कहा है कि, 'भाई, आप चिंता कर रहे हो, तो क्या आप ही मालिक हो? आप ही दुनिया चला रहे हो?' इसे इस तरह देखने जाएँ तो खुद को संडास जाने की भी स्वतंत्र शक्ति नहीं है, वह तो जब बंद हो जाए तब डॉक्टर को बुलाना पड़ता है। तब तक हमें यही लगता रहता है कि 'यह शक्ति अपनी है,' लेकिन वह शक्ति अपनी नहीं है। वह शक्ति किसके अधीन है? क्या वह सब जान नहीं लेना पड़ेगा?

ऐसा है, कि अपने यहाँ तो जब से लड़की सात साल की हो तभी से सोचने लगते हैं कि 'यह अब बड़ी हो गई है, यह बड़ी हो गई!' शादी तो बीसवें साल में होगी लेकिन तभी से चिंता करने लगते हैं! बेटी की शादी की चिंता कब से शुरू करनी चाहिए, ऐसा कौन से शास्त्र में लिखा है? बीसवें साल में इसका विवाह होना हो तो हमें कब से चिंता शुरू करनी चाहिए? दो-तीन साल की हो, तब से?

प्रश्नकर्ता : चौदह-पंद्रह साल की हो जाने के बाद माँ-बाप सोचते हैं न?

दादाश्री : नहीं। तब भी फिर पाँच साल बचे हैं न! उन पाँच सालों में चिंता करनेवाला मर जाएगा या जिसकी चिंता कर रहे हैं वह मर जाएगा, उसका क्या ठिकाना? पाँच साल बाकी हैं, तो पहले से ही चिंता क्यों करनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसा होता तब तो लोग कमाने ही नहीं जाएँगे और कोई चिंता ही नहीं करेगा।

दादाश्री : नहीं। कमाने जाते हैं, वह भी उनके हाथ में

है ही नहीं न! वे लट्टू हैं। वे सब नेचर के घुमाने से घूमते हैं और ये ऐसा कहकर अंहकार करते हैं कि, 'मैं कमाने गया था!' और बिना बात की चिंता करते हैं! फिर वह भी देखादेखी से कि फलाने भाई को तो देखो न, बेटी की शादी करने की कितनी चिंता है और मैं चिंता नहीं कर रहा! उसी चिंता में फिर तरबूज़े जैसा हो जाता है! और जब बेटी की शादी का समय आए तब चार आने भी हाथ में नहीं होते। चिंतावाला रुपये लाए कहाँ से? लक्ष्मी का स्वभाव कैसा है कि जो आनंदी हो उसी के वहाँ लक्ष्मी जी मुकाम करती हैं, वर्ना चिंतावाले के वहाँ मुकाम नहीं करतीं। जो आनंदी होता है, जो भगवान को याद करता है, लक्ष्मीजी उसके वहाँ जाती हैं। जबकि ये तो बेटी की अभी से चिंता कर रहे हैं।

आपको चिंता कब करनी है? कि जब आसपासवाले लोग कहने लगें कि, 'बेटी का कुछ किया?' तब हमें समझना चाहिए कि अब चिंता करने का समय आ गया है और तभी से चिंता करनी है, यानी क्या कि उसके लिए प्रयत्न करने लगो! ये तो आसपासवाले कोई कुछ कहते नहीं और उससे पहले ही, यह तो पंद्रह साल पहले ही चिंता करने लगता है! फिर उसकी पत्नी से भी कहता है कि, 'तुझे याद रहेगा कि अपनी बेटी बड़ी हो रही है, उसकी शादी करनी है?' अरे, अब पत्नी को किसलिए चिंता करवा रहा है?

अपने लोग तो कैसे हैं कि एक साल अकाल पड़ा हो तो दूसरे साल 'क्या होगा, अब क्या होगा, अब क्या होगा' ऐसा करते रहते हैं। तो भादो के महीने से ही चिंता करने लगता है। अरे, ऐसा किसलिए कर रहा है? वह तो जिस दिन तेरे पास खाने-पीने का खत्म हो जाए और कोई इंतज़ाम नहीं हो, उस दिन चिंता करना न!

प्रश्नकर्ता : इस साल बरसात कम हुई, तभी से लोगों ने

शोर मचाना शुरू कर दिया कि इस साल चावल नहीं मिलेंगे!

दादाश्री : अरे, जो शोर नहीं मचाते, उन्हें ये लोग मूरख कहेंगे कि देखो न, इसे समझ ही नहीं है न! और जो शोर मचाएँ उन्हें ये लोग जागृत कहेंगे! लोग ऐसे हैं!

जो चिंता मिटाए, वही मोक्षमार्ग

संसार में हो और चिंता में ही रहे और वह चिंता नहीं मिटे, तो फिर उसके न जाने कितने ही जन्म बाकी रहें! क्योंकि चिंता से ही अगला जन्म बंधन होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन चिंता तो होती ही है न, क्योंकि महँगाई अभी बहुत बढ़ गई है।

दादाश्री : सस्ता करना क्या तेरे हाथ में होगा?

प्रश्नकर्ता : अपने हाथ में कैसे हो सकता है?

दादाश्री : तो फिर उसकी चिंता आपको नहीं करनी है।

प्रश्नकर्ता : चिंता बंद करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह तो 'ज्ञानीपुरुष' के पास आकर कृपा ले जाना फिर चिंता बंद हो जाएगी, और संसार चलता रहेगा। आपके घर पर तो छोटे बच्चे भी चिंता करते हैं या आप अकेले ही चिंता करते हो?

प्रश्नकर्ता : सभी करते हैं।

दादाश्री : छोटे बच्चे भी चिंता करते हैं?

प्रश्नकर्ता : छोटे बच्चे को चिंता कहाँ से होगी? बच्चे को तो कोई चिंता ही नहीं होती न!

दादाश्री : यानी आप बड़ी उम्र के हो गए, इसलिए चिंता करते हो? सही है?

प्रश्नकर्ता : ज़िम्मेदारी है, इसलिए चिंता होती है न!

दादाश्री : आपके सिर पर क्या ज़िम्मेदारी है? अगर आप ज़िम्मेदार हो तो बेटा बीमार-वीमार होगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : घर में जो बड़े-बूढ़े हैं, उन्हें तो चिंता होगी न?

दादाश्री : सारी चिंता नासमझी से होती है। मज़दूर चिंता नहीं करते और सेठ लोग चिंता करते हैं। एक भी मज़दूर चिंता नहीं करता, क्योंकि मज़दूर ऊँची गति में जानेवाले हैं और सेठ नीची गति में जानेवाले हैं। चिंता से नीची गति होती है, इसलिए चिंता नहीं होनी चाहिए। चिंता से कुछ बढ़ जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं बढ़ता।

दादाश्री : नहीं बढ़ता? तो फिर वह गलत व्यापार कौन करे? यदि चिंता से बढ़ जाता हो, तब वह करना। आपको चिंता का शौक है?

प्रश्नकर्ता : नहीं। शांति चाहिए।

दादाश्री : चिंता तो अग्नि कहलाती है। ऐसा होगा और वैसा होगा! चिंता, वह तो अहंकार है! किसी काल में जब जैन बनने का मौका मिलता है और तब चिंता में रहे तो मनुष्यपन भी चला जाएगा। कितना बड़ा जोखिम है? यदि आपको शांति चाहिए तो हमेशा के लिए चिंता बंद कर दूँ।

जब से चिंता बंद हो, तभी से वीतराग भगवान का मोक्षमार्ग कहलाता है! वीतराग भगवान के जो दर्शन करे तब से ही चिंता बंद हो जानी चाहिए, लेकिन दर्शन करना भी नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : आपके सामने तो हम बालक हैं।

दादाश्री : हाँ, इसीलिए तो कह रहा हूँ कि दर्शन करना

भी नहीं आता। दर्शन करना तो, 'ज्ञानीपुरुष' सिखाते हैं कि 'इस तरह दर्शन करना' तब जाकर काम होता है। इस चिंता में तो अग्नि जलती रहती है। शक्करकंदी देखी है? जिस तरह भठ्ठी में रखने से शक्करकंद भुन जाते हैं, उसके जैसा होता है!

इतनी अच्छी सब्ज़ी-भाजी ले आता हैं, लाकर खाता है और चिंता करता है, अपने पैसों से कपड़े पहनकर चिंता करता है। बेहद चिंता है आपको तो। किसी दिन क्लेश-कलह हो जाती है न?

प्रश्नकर्ता : भले ही कितने ही आनंद में बैठे हों, लेकिन कुछ ऐसा शब्द निकल जाता है और उससे क्लेश खड़ा हो जाता है!

दादाश्री : उस घड़ी दरवाज़ा बंद करके क्लेश करते हो न?

प्रश्नकर्ता : कभी भी दरवाज़ा बंद करके क्लेश नहीं करते।

दादाश्री : तो दरवाज़ा खुले रखकर करते हो? तब तो फिर सभी लोग जान जाएँगे!

सही तो कब कहलाएगा कि महीने में एकाध दिन ज़रा क्लेश हो जाए, रोज़-रोज़ क्लेश नहीं हो। हमें पसंद नहीं हो फिर भी ऐसा होता है न? तो फिर वह कौन करता होगा? जो आपको पसंद नहीं हैं, वही शब्द निकल जाते हैं। सभी का कारण अज्ञानता है। अज्ञानता जाए तो शांति हो जाएगी। अज्ञानता निकालनी है आपको? चिंता जाए और क्लेश बंद हो जाए, ऐसा आपको करना है?

चिंता करने के बजाय, धर्म में मोड़ो

प्रश्नकर्ता : घर के जो मुख्य लोग हों, उन्हें जो चिंता रहती है, वह किस तरह दूर करनी चाहिए?

दादाश्री : कृष्ण भगवान ने क्या कहा है कि *'जीव तू शीद ने शोचना करे, कृष्ण ने करवुं होय ते करे।'* ऐसा पढ़ने में आया है?

प्रश्नकर्ता : मेरा ऐसा मानना है कि इंसान को श्रम तो करना ही चाहिए, देखभाल तो करनी ही चाहिए।

दादाश्री : श्रम तो ज़बरदस्त करो, श्रम तो आप पाँच बजे उठकर करते रहो; लेकिन चिंता-वरीज़ करने की आपको क्या ज़रूरत है?

प्रश्नकर्ता : घर में चालीस लोग हैं न, इसलिए चिंता तो रहेगी ही न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन क्या यह आप चलाते हो? कृष्ण भगवान क्या कहते हैं कि मुझे चलाने दो न! आप क्यों झंझट कर रहे हो?

प्रश्नकर्ता : ऐसा है, घर में मुझे ही सारी मेहनत करनी पड़ती है, बच्चे कुछ नहीं करते। हम बच्चों को श्रम करना सिखलाएँ तो वे ठीक से चलेंगे, लेकिन वे लोग कुछ भी श्रम नहीं करते, कुछ भी काम नहीं करते। जो भी कहें, उससे उल्टा चलते हैं।

दादाश्री : ऐसा है, आपको लगता है कि इस बार के बच्चों की चिंता आपको करनी चाहिए, लेकिन पिछले जन्म के बच्चे थे उनका क्या किया? हर एक जन्म में बच्चे छोड़-छोड़कर आए हैं, जो जन्म पाया, उस जन्म में बच्चे छोड़-छोड़कर ही आया है। वे भी छोटे-छोटे, इतने-इतने, भटक जाएँ ऐसे रखकर आया है। वहाँ से निकलना बिल्कुल भी पसंद नहीं था फिर भी वहाँ से आ गया और बाद में भूल गया और वापस इस जन्म के दूसरे बच्चे! अतः बच्चों के लिए क्यों कलह करते हो? धर्म के रास्ते पर मोड़ दो उन्हें, अच्छे बन जाएँगे।

पराए जंजाल कि चिंता कब तक?

एक मेरे जान-पहचानवाले व्यक्ति थे दूसरे शहर में। उनके यहाँ पर रुका था। उन्होंने मुझ से कहा कि, 'मेरे जीजा जी की तबियत अभी बहुत बिगड़ चुकी है। ज़रा सीरियस हैं। इसलिए मुझे तो पूरे दिन चैन ही नहीं पड़ता। परसों ही उनकी तबियत पूछकर वहाँ से वापस आया हूँ,' वह ऐसे चिंता-वरीज़ कर रहा था। उसकी यह बात सुनकर मुझे भी चिंता होने लगी, क्योंकि उसकी बहन कम उम्र की थीं और उस समय मुझे 'ज्ञान' नहीं हुआ था। रात को ग्यारह बज गए और बातें करते-करते वह भाई तो खर्राटे लेने लगा! और उसके जीजा जी की चिंता में मुझे पूरी रात नींद नहीं आई! यह दुनिया ऐसी है? उसके जीजा के लिए मैं जाग रहा हूँ, मैं परेशान हो रहा हूँ और यह खर्राटे ले रहा है! फिर मैंने खुद अपने से कहा, 'मैं कहाँ ऐसे बेवक़ूफ़ बना?' जिसका जीजा बीमार था वह सो गया और मैंने बात सुनी तो मुझ पर असर हो गया! यह तो हम ही बेवक़ूफ़ हैं! तभी से मैं दुनिया को पहचानने लगा कि दुनिया क्या है? फिर मैं समझ गया कि यह जगत् घोटाला है।

हम लोगों को इस तरह से रहना चाहिए कि हमें कर्म नहीं बंधे। इस दुनिया से दूर रहना चाहिए। ऐसे कर्म बाँधे हुए थे, इसीलिए तो ये लोग मिले हैं। ये अपने घर पर कौन इकट्ठे हुए हैं? जिनके साथ कर्म के हिसाब बंधे हुए हैं, वे ही सब लोग इकट्ठे हुए हैं और फिर वे हमें बाँधकर मारते भी हैं! हमने पक्का किया हो कि मुझे इसके साथ बोलना ही नहीं है, फिर भी सामनेवाला मुँह में उँगली डालकर बुलवाता रहता है। अरे, उँगलियाँ डालकर किसलिए बुलवा रहा है? इसे कहते हैं बैर। सब पूर्व के बैर! आपने ऐसा बैर कहीं पर देखा है क्या?

प्रश्नकर्ता : सभी जगह यही दिखता है न!

दादाश्री : इसलिए मैं कह रहा हूँ न, कि वहाँ से हट जाओ और मेरे पास आओ। मैंने जो यह प्राप्त किया है वह आपको दे दूँ। आपका काम हो जाएगा और छुटकारा हो जाएगा। वर्ना छुटकारा होगा नहीं।

हम किसी का दोष नहीं निकालते। लेकिन नोट करते हैं कि देखो यह दुनिया क्या है? सब तरह से यह दुनिया मैंने देखी हुई है, बहुत प्रकार से देखी हुई है। कुछ लोग तो व्यापार की चिंता करते ही रहते हैं, वे लोग चिंता क्यों करते हैं? मन में ऐसा लगता है कि, 'मैं ही चला रहा हूँ' इसलिए चिंता होती है। 'इसे चलानेवाला कौन है' ऐसा कोई साधारण भी, किसी भी प्रकार का अवलंबन नहीं लेता। भले ही, तू ज्ञान नहीं जानता, लेकिन किसी भी प्रकार का दूसरा कोई अवलंबन तो ले, क्योंकि तुझे ऐसा कुछ अनुभव हो चुका है कि तू नहीं चला रहा है। चिंता, वह सबसे बड़ा इगोइज़म है।

यह छोटी सी बात आपको बता देता हूँ, यह सूक्ष्म बात आपको बता देता हूँ कि 'इस वर्ल्ड में कोई भी इंसान ऐसा नहीं जन्मा है कि जिसकी खुद की संडास जाने की भी स्वतंत्र शक्ति हो!' तो फिर इन लोगों को इगोइज़म करने का क्या अर्थ है? यह कोई और ही शक्ति काम कर रही है। अब वह शक्ति अपनी नहीं है, वह परशक्ति है और स्वशक्ति को जानता नहीं, इसलिए खुद भी परशक्ति के अधीन है, और सिर्फ अधीन ही नहीं, लेकिन पराधीन भी है, पूरा जीवन ही पराधीन है।

खुद की सत्ता में नहीं है, वैसी कल्पना मत करना। पिछले जन्म की दो-तीन छोटी बेटियाँ थीं, बेटे थे, उन सब को इतने-इतने छोटे-छोटे रखकर आए थे, तो उन सबकी कुछ चिंता करते हो? क्यों? और यों मरते समय तो बहुत चिंता होती है न, कि छोटी बेटी का क्या होगा? लेकिन यहाँ पर फिर से नया जन्म लेता है, तब पहले की कोई चिंता रहती ही नहीं न! चिट्ठी-

पत्री कुछ भी नहीं! अतः यह सब परसत्ता है, उसमें हाथ ही मत डालना। इसलिए जो कुछ हो रहा है, वह 'व्यवस्थित' में हो तो भले हो और नहीं हो तब भी भले ही नहीं हो।

मनुष्य स्वभाव चिंता मोल लेता है

चिंता, वह तो काम को नुकसान पहुँचाती है। 'तेरी जो चिंता' है वह काम को सौ प्रतिशत के बदले सत्तर प्रतिशत कर देती है। चिंता काम को ओब्स्ट्रक्ट करती है। यदि चिंता नहीं होगी तो बहुत सुंदर फल आएगा।

चिंता करने जैसा यह जगत् है ही नहीं। इस जगत् में चिंता करना, वह बेस्ट फूलिशनेस है। चिंता करने के लिए यह जगत् है ही नहीं, यह इटसेल्फ क्रियेशन है। भगवान ने यह क्रियेशन नहीं किया है। इसलिए यह क्रियेशन चिंता करने के लिए नहीं है। सिर्फ ये मनुष्य ही चिंता करते हैं, और कोई जीव चिंता नहीं करते। बाकी की चौर्यासी लाख योनियाँ हैं, लेकिन कोई चिंता-वरीज़ नहीं करता। ये मनुष्य नाम के जीव बहुत अक़्लमंद है, वे ही पूरे दिन चिंता में पकते रहते हैं!

भगवान ने क्या कहा है कि, 'प्राप्त को भोगो, अप्राप्त की चिंता मत करो।' यानी क्या कि जो प्राप्त है उसे भोगो न! अब किसी के तीन रूमवाले मकान को, कुछ भी करके सरकार तीनों ही रूम ले ले, तो फिर वह क्या कहेगा, 'साहब, एक रूम दे दो तो भी बहुत हो गया।' अरे, तू कहता था न, कि 'मुझे तो चार रूम चाहिए?' अब ऐसा क्यों कह रहा है कि एक रूम से 'चलेगा?' लेकिन ऐसा ही है, मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है।

पच्चीस साल की उम्र से ही मैंने खोजबीन की थी कि मनुष्यों का स्वभाव ऐसा ही है। इसलिए सभी लोग जिस रास्ते इस तरह जा रहे हैं न, उस रास्ते पर मैं नहीं जाता था। मैं शोर्टकट पहचान लेता था। ये लोग तो आगे चार भेड़ें चलीं तो उनके

पीछे पूरा झुंड चलता ही रहता है! कितना टेढ़ा रास्ता है, ऐसा देखते-करते नहीं हैं। यह तो सरकार ने नियम बनाए, इसलिए सीधे रास्ते बनवाए। पढ़े-लिखे हुए लोगों ने सीधे रास्ते बनवाए, नहीं तो पहले तो एक मील तक जाने के लिए तीन मील का उल्टा रास्ता बनाना पड़ता था। ऐसे सब रास्ते हुआ करते थे।

अब भोगने का तरीका ऐसा नहीं है कि सामनेवाले को हटा दो। सामनेवाले को सुख हो ऐसा कुछ करो। अपने संपर्क में आनेवाले, परिचय में आनेवालों को सभी को किस तरह सुख हो, अपने ग्राहक को किस तरह सुख हो, ऐसा कुछ करो। पहले तो पड़ोसी के साथ भलाई करनी है।

यह तो जगत् है, इसलिए एक तरफ ऐसा कहते हैं कि, 'चिंता से चतुराई घटे, घटे रूप, गुण, ज्ञान।' और दूसरी तरफ कहते हैं कि, 'जो चिंता नहीं करे वह खर कहलाता है, गधा कहलाता है।' यानी जगत् दोनों तरफ से मारता है, अतः वे क्या कहना चाहते हैं कि कम टु द नॉर्मल। अब ध्यान रखने और चिंता करने में बहुत फर्क है। ध्यान रखना, वह जागृति है और चिंता यानी जी जलाते रहना।

चिंता का रूट कॉज़? इगोइज़म

जी जलता रहे वैसी चिंता तो काम की ही नहीं! जो शरीर को नुकसान पहुँचाए और अपने पास जो चीज़ आनेवाली थी, उसमें भी फिर रूकावट डाले। चिंता से ही ऐसे संयोग खड़े हो जाते हैं। ऐसे कुछ विचार करने हैं कि हित क्या है, अहित क्या है, लेकिन चिंता करने का क्या मतलब है? उसे इगोइज़म कहा है। वैसा इगोइज़म नहीं होना चाहिए। 'मैं कुछ हूँ और मैं ही चला रहा हूँ' उससे उसे चिंता होती है और 'मैं होऊँगा तभी इस केस का निकाल होगा।' इससे चिंता होती है। अतः इगोइज़मवाले भाग का ऑपरेशन कर देना चाहिए, उसके बाद जो विचार रहे, भले

या बुरे, उसमें हर्ज नहीं। वे फिर भीतर खून नहीं जलाते, वर्ना यह चिंता तो खून जलाती है, मन जलाती है। जब चिंता हो रही हो न, उस घड़ी अगर बच्चा कुछ कहने आए तो उस पर भी उग्र हो जाता है, यानी कि हर प्रकार से नुकसान करती है। यह अहंकार ऐसी चीज़ है कि पैसा हो या पैसा नहीं हो, लेकिन यदि कोई कहे कि, 'इस चंदूभाई ने मेरा सबकुछ बिगाड़ दिया,' तब भी बेहद चिंता और बेहद *उपाधि*! और जगत् तो ऐसा है कि हमने नहीं बिगाड़ा हो, फिर भी कहता ही है न?

प्रश्नकर्ता : चिंता, वह अहंकार की निशानी है, इसे थोड़ा समझाने की विनती है।

दादाश्री : चिंता, वह अहंकार की निशानी किसलिए कहलाती है कि उसे मन में ऐसा लगता है कि, 'मैं ही यह चला रहा हूँ,' इसलिए उसे चिंता होती है। इसे चलानेवाला 'मैं ही हूँ,' इसलिए उसे 'इस बेटी का क्या होगा? इस बेटे का क्या होगा? इस तरह काम पूरा नहीं होगा तो क्या होगा?' वह चिंता खुद के सिर पर लेता है। खुद अपने आपको कर्ता मानता है कि 'मैं ही मालिक हूँ और मैं ही कर रहा हूँ,' लेकिन वह खुद कर्ता है नहीं और बेकार की चिंताएँ मोल लेता है।

कर्ता कौन है? ये संयोग कर्ता हैं। ये सभी संयोग, साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स इकट्ठे हों तभी कर्म हो सके, ऐसा है। तो अपने हाथ में सत्ता नहीं है। हमें संयोगों को देखते रहना है कि संयोग कैसे हैं! संयोग इकट्ठे हो जाएँ, तब काम हो ही जाता है। कोई व्यक्ति मार्च महीने में बरसात की आशा रखे तो वह गलत कहलाएगा, और जून की पंद्रह तारीख हुई कि वे संयोग इकट्ठे हो जाएँगे, काल का संयोग इकट्ठा हो जाए, लेकिन अगर बादल का संयोग नहीं मिले तो बादल के बिना बरसात कैसे होगी? लेकिन बादल आ गए, काल पक गया, फिर बिजलियाँ चमकीं, दूसरे एविडेन्स मिल गए तो बरसात होगी ही। यानी संयोग मिलने

चाहिए। इंसान संयोगों के अधीन है, लेकिन खुद ऐसा मानता है कि 'मैं कुछ कर रहा हूँ,' लेकिन वह जो कर्ता है वह भी संयोगों के अधीन है। एक भी संयोग कम पड़ा, तो उससे वह कार्य नहीं हो सकेगा।

कोई एक व्यक्ति है, वह सामायिक करता है तो दूसरे लोगों से क्या कहता है कि, 'मैं रोज़ चार सामायिक करता हूँ, यह व्यक्ति तो एक ही सामायिक करता है।' उससे पता चल जाता है कि इस व्यक्ति को सामायिक करने का इगोइज़म है, इसलिए दूसरों के दोष निकाल रहा है, 'वह एक ही करता है और मैं चार करता हूँ।' फिर दो-चार दिनों बाद हम वापस उसके पास जाएँ कि, 'भाई, क्यों आज सामायिक नहीं कर रहे हो?' तब कहेगा कि, 'पैर जकड़ गए है।' तब हम पूछें कि, 'भाई, पैर सामायिक कर रहे थे या आप कर रहे थे? पैर यदि सामायिक कर रहे होते तो आपने जो कहा वह गलत कहा था।' यानी यह तो पैर ठिकाने पर होने चाहिए, मन ठिकाने पर होना चाहिए, बुद्धि ठिकाने पर होनी चाहिए, जब सभी संयोग ठीक होंगे तब सामायिक होगी, और अहंकार भी ठिकाने पर रहना चाहिए। अहंकार भी उस घड़ी ठिकाने पर न हो तो कार्य नहीं होगा, यानी जब यह सबकुछ साथ में होगा तब कार्य होगा।

चिंता के परिणाम क्या?

इस संसार में बाइ प्रोडक्ट का अहंकार होता ही है और वह सहज अहंकार है, जिससे संसार आसानी से चल सकता है, ऐसा है। जबकि वहाँ पर अहंकार का पूरा कारखाना ही लगाया और अहंकार का बहुत विस्तार किया, और उसका इतना विस्तार किया कि उससे चिंताओं का अंत नहीं रहा! अहंकार का ही विस्तार करते रहे। सहज अहंकार से, नॉर्मल अहंकार से संसार चल सकता है, लेकिन वहाँ पर अहंकार का विस्तार करके फिर चाचा इतनी उम्र में भी कहते हैं कि, 'मुझे चिंता हो रही है।' वह जो चिंता

होती है उसका फल क्या है? आगे जाकर जानवर गति मिलेगी, इसलिए सावधान, अभी सावधान होने जैसा है। मनुष्य योनि में हो तब तक सावधान हो जाओ, वर्ना यदि चिंता होगी तो उससे फिर जानवर गति का फल मिलेगा।

चिंता, वह प्योर इगोइज़म है। ये जानवर कोई चिंता नहीं करते और इन मनुष्यों को चिंता? ओहोहो! अनंत जानवर हैं, किसी को चिंता नहीं है और सिर्फ ये मनुष्य ही ऐसे मूर्ख है कि पूरे दिन चिंता में सिकते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : जानवर से भी गए-बीते हैं न ये?

दादाश्री : जानवर तो बहुत अच्छे हैं। जानवरों को भगवान ने आश्रित कहा है। इस जगत् में यदि कोई निराश्रित है तो सिर्फ ये मनुष्य ही हैं और उनमें भी सिर्फ हिन्दुस्तान के ही मनुष्य सौ प्रतिशत निराश्रित हैं। फिर इन्हें दुःख रहेंगे ही न? कि जिसे किसी प्रकार का आसरा ही नहीं! जब कमाए तब कहेगा कि, 'मैंने कमाया।' और नुकसान हुआ तब कहेगा कि, 'भगवान ने नुकसान करवाया,' बल्कि भगवान को भला-बुरा कहता है। भगवान के गुणगान करना तो कहाँ रहा, लेकिन भगवान को भला-बुरा कहने को तैयार! इकलौता बेटा मर जाए तब कहता है, 'भगवान ने मारा।' और बेटा जन्मा तब पेड़े बाँटते हुए कहता है कि, 'मेरे घर बेटा हुआ है, दो मन पेड़े बाँटेंगे!' यह इगोइज़म ही है न? यदि भगवान की भक्ति करनी हो तो भगवान के गुणगान ठीक तरह से गाने चाहिए या नहीं?

खुद अपने आप को पहचानो

बात को सिर्फ समझना ही है, आप भी परमात्मा हो। भगवान ही हो, फिर किसलिए वरीज़ करनी? चिंता किसलिए करते हो? यह जगत् एक क्षण भर भी चिंता करने जैसा नहीं है। अब, वह सेफसाइड़ नहीं रह सकेगी, क्योंकि जो सेफसाइड नैचरल थी उसे

आपने उलझा दिया और अब भागकर क्या करना चाहते हो? भगोड़ा वृत्ति नहीं होनी चाहिए। उलझनें आएँ तो सामना करो।

प्रश्नकर्ता : यदि हम सामना करें, उसका अवरोध करें, प्रतिकार करें तो उससे अहंकार बढ़ता है।

दादाश्री : चिंता करने के बजाय सामना करना अच्छा। चिंता के अहंकार के बजाय सामना करने का अहंकार छोटा है। भगवान ने कहा है कि, 'जहाँ सामना करना हो वहाँ पर करना, लेकिन चिंता मत करना।' जो चिंता करे उसके लिए दो दंड! रात को सभी कहते हैं कि, 'ग्यारह बज गए हैं, आप अब सो जाओ।' सर्दी के दिन हैं और आप मच्छरदानी के अंदर घुस गए, ग्यारह बजे हैं, घर के सभी लोग सो गए हैं। मच्छरदानी में जाने के बाद आपको याद आता है कि, एक आदमी का तीन हज़ार का बिल बाकी है और उसकी मुद्दत निकल गई है। तो कहते हो, 'आज हस्ताक्षर करवा लिए होते तो मुद्दत मिल जाती, लेकिन आज हस्ताक्षर नहीं करवाए।' फिर यदि पूरी रात वह चलता रहे, तो क्या रात को ही हस्ताक्षर हो सकते हैं? नहीं हो सकते न? तो आराम से सो जाएँ तो अपना क्या बिगड़ेगा?

भगवान कहते हैं कि चिंता करनेवाले के लिए दो दंड हैं और चिंता नहीं करनेवाले के लिए एक दंड है। अट्ठारह वर्ष का एकलौता जवान बेटा मर जाए तो उसके बाद जितनी चिंता करते हैं, जितना दुःख मनाते हैं, सिर फोड़ते हैं, और जो कुछ भी करते हैं, उनको दो दंड हैं और जो ये सब नहीं करते, उनके लिए एक ही दंड है। बेटा मर गया, उतना ही दंड है और सिर फोड़ा, वह अतिरिक्त दंड है। हम ऐसे दो तरह के दंड में कभी भी नहीं आते। इसलिए मैंने इन लोगों से कहा है कि, ''पाँच हज़ार रुपये की जेब कट जाए तब 'व्यवस्थित' कहकर आगे निकल जाना और चैन से घर चले जाना।''

यह एक दंड तो अपना खुद का ही हिसाब है। इसलिए

घबराने का कोई कारण नहीं है। इसलिए मैंने 'व्यवस्थित' कहा है, एक्ज़ेक्ट 'व्यवस्थित' है। इसलिए, जो हो चुका है उसे तो ठीक है, करेक्ट है, ऐसा ही कहना।

व्यथा अलग, चिंता अलग

प्रश्नकर्ता : चिंता, वह अहंकार है, तब फिर जो व्यथित है वह चिंता करे तो उसमें अहंकार शायद न भी हो और सिर्फ व्यथा हो तो?

दादाश्री : व्यथा अलग है। व्यथा, वह अलग चीज़ है और चिंता वह भी अलग है। चिंता यानी भविष्य की सभी योजना करता है और व्यथित होना, वह तो उसका कोई ओबस्ट्रक्शन (रुकावट) है, इसलिए व्यथित हो गया है। व्यथित कब होता है? उसे कोई रुकावट आ जाए तब। यानी व्यथित होने में हर्ज नहीं है, व्यथित तो बड़े-बड़े संत पुरुष भी हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो चिंता के साथ अहंकार किस तरह है?

दादाश्री : 'मैं नहीं होऊँगा तो नहीं चलेगा,' उसे ऐसा लगता है। 'यह मैं ही कर रहा हूँ, मैं नहीं करूँगा तो नहीं होगा। अब यह हो सकेगा? सुबह क्या होगा?' ऐसे करके चिंता करता है।

कहीं भी भरोसा ही नहीं?

अपने हिन्दुस्तान के लोग तो इतने अधिक चिंतावाले हैं कि ये सूर्यनारायण यदि एक दिन की छुट्टी ले लें और ऐसा कहें कि 'फिर कभी छुट्टी नहीं लूँगा' तो वे यदि छुट्टी ले लें तो दूसरे दिन लोग शंका करेंगे कि कल सूर्यनारायण आएँगे या नहीं आएँगे, सुबह होगी या नहीं होगी? यानी नेचर पर भी भरोसा नहीं है, खुद अपने आप पर भी भरोसा नहीं है, भगवान पर भी भरोसा नहीं है। किसी चीज़ पर भरोसा नहीं, खुद की वाइफ पर भी भरोसा नहीं! अहमदाबाद के एक सेठ की वाइफ को यात्रा में

जाने के लिए बीस हज़ार रुपये की ज़रूरत थी, तो सात साल तक अपनी पत्नी से कहता रहता है कि 'अभी सुविधा नहीं है, सुविधा नहीं है।' आपकी समझ में आया न? खुद अपने आप से भी कपट है, यानी कहाँ पर यह कपट नहीं करता? इसलिए कबीर साहब ने सच कह दिया कि,

''मैं जानूँ हरि दूर है, हरि हृदय मांही,

आडी त्राटी कपट की, तासे दिसत नाहीं।''

भीतर खुद ने कपट का परदा रखा हुआ है। उसके बावजूद भी भगवान पास में दिखने लगे। वह परदा है फिर भी ज़रा जाली में से दिखने लगे तो मन में शर्म आने लगी कि भगवान देख लेंगे। इसलिए परदे पर डामर लगवाया, हर साल दो-दो बार डामर लगवाया। यह परदा जान-बूझकर खुद ने ही खड़ा किया है।

इनके लिए क़ीमत किसकी?

कल एक बूढ़े चाचा आए थे, वे मेरे पैरों में गिरकर खूब रोए! मैंने पूछा, 'क्या दुःख है आपको?' तब कहा, 'मेरे ज़ेवर चोरी हो गए, मिल ही नहीं रहे, अब वापस कब आएँगे?' तब मैंने उसे कहा, 'वे ज़ेवर क्या आप साथ में ले जानेवाले थे?' तब कहा, 'नहीं, वे साथ में नहीं ले जा सकते, लेकिन मेरे ज़ेवर चोरी हो गए न, वे वापस कब मिलेंगे?' मैंने कहा, 'आपके चले जाने के बाद मिलेंगे!' ज़ेवर चोरी हो गए उसके लिए इतनी हाय, हाय, हाय! अरे, जो चला गया उसकी चिंता करनी ही नहीं होती। शायद कभी आगे की चिंता, भविष्य की चिंता करे, वह तो हम समझते हैं कि बुद्धिशाली इंसान को चिंता तो होगी ही, लेकिन गया उसकी भी चिंता? अपने देश में ऐसी चिंता होती है, घड़ीभर पहले जो हो चुका है उसकी क्या चिंता? जिसका उपाय नहीं है, उसकी क्या चिंता? कोई भी बुद्धिशाली समझ जाएगा कि अब उपाय नहीं रहा, इसलिए उसकी चिंता नहीं करनी है।

वे चाचा रो रहे थे, लेकिन मैंने उन्हें दो मिनट में ही पलट डाला। फिर तो 'दादा भगवान ना असीम जय जयकार हो' बोलने लगे! वे आज सुबह में भी वहाँ रणछोड़ जी के मंदिर में मिल गए, तब बोल उठे, 'दादा भगवान!' मैंने कहा, 'हाँ, वही।' फिर बोले, 'पूरी रात मैंने तो आपका ही नाम लिया!' इन्हें तो इस ओर मोड़ो तो इधर, इन्हें ऐसा कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : आपने उनसे क्या कहा था?

दादाश्री : मैंने कहा था, 'वे ज़ेवर वापस नहीं मिलेंगे, किसी और तरीके से ज़ेवर मिलेंगे।'

प्रश्नकर्ता : आप मिले, इसका मतलब बहुत बड़ा ज़ेवर ही मिल गया न!

दादाश्री : हाँ, यह तो आश्चर्य है! लेकिन उन्हें यह कैसे समझ में आए? उनके लिए तो उन ज़ेवरों के सामने इसकी क़ीमत ही नहीं है न! अरे, जब उन्हें चाय पीनी हो तब उनसे मैं कहूँ कि, 'मैं हूँ न, तुम्हें चाय का क्या करना है?' तब वे कहेंगे, 'मुझे चाय के बिना चैन नहीं पड़ता, आप हों या न हों!' इनके लिए क़ीमत किस चीज़ की? जिसकी इच्छा है उसकी।

[६]

भय में भी निर्भयता

वाणी कठोर, लेकिन रोग निकाले

ऐसा जीवन किस काम का है फिर? लाइफ तो, लाइफ होनी चाहिए या नहीं? पूरा ब्रह्मांड विरोध करे तब भी आपको घबराहट नहीं हो, वैसा होना चाहिए या नहीं होना चाहिए? तेरे पास सभी सामान है। जितना सामान मेरे पास है, उतना सभी सामान तेरे पास भी है, लेकिन तुझे किसी ने वह दिखाया नहीं है, इसलिए वह सारा माल भीतर वैसे ही आवरण में पड़ा हुआ है। मेरे जैसा कोई ज्ञानी मिले तब फिर से अनावृत कर देगा, 'ले, तू तेरा खा। मैं निमित्त हूँ।' यदि खुद का 'सामान' भोग रहा हो तो भी ठीक है, लेकिन यह तो परायों से आशा रखता है कि ये कुछ दें तो अच्छा। अरे, वह खुद ही लोगों से कुछ आशा रखता है, वह तुझे क्या देगा? और तूने ऐसा कोई नामवर देखा है कि जिससे आशा रखी जा सके? और बहुत माँगें, तब शर्म के मारे पाँच लाख देगा भी सही। लेकिन तब भीतर मान की भीख रहती है, कीर्ति की भीख रहती है, नाम का लालच रहता है! मेरी बात कोमल नहीं है न? ज़रा कठोर लगती है न?

प्रश्नकर्ता : जो कोमल हो, वह काम की ही नहीं।

दादाश्री : मेरी बात ज़रा कठोर है, लेकिन भीतर जुलाब करके सारा रोग निकाल देगी। निरा रोग ही भरा हुआ है! और फिर किसी संत पुरुष के पास जाओ तब वे कहेंगे, 'आओ भाई,

आओ सेठ, आओ आओ।' वे मक्खन लगाते रहते हैं। अरे, उसे क्यों मक्खन लगा रहा है? वापस उल्टी पटरी पर चढ़ा देता है! अरे, सीधा रास्ता बता दें तो आगे कोई रास्ता ढूँढेगा? लेकिन यह तो मक्खन लगाता रहता है! आपको मक्खन पसंद है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं पसंद।

दादाश्री : ऐसा! लेकिन लोग मक्खन लगाते हैं न कि, 'भान्जा आया! आओ आओ!' अरे, उससे अपने क्या दिन बदलेंगे? शुक्रवार जाता नहीं और शनिवार आता नहीं, एवरी डे फ्राइडे! जब जाओ तब फ्राइडे और शनिवार आता नहीं। आपका शुक्रवार बदलना तो चाहिए न?!

कोशिश-प्रयत्न, पंगु अवलंबन

यानी 'हम कौन है?' वह जानना तो पड़ेगा या नहीं जानना पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : जानना पड़ेगा।

दादाश्री : तूने जाना?

प्रश्नकर्ता : वह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

दादाश्री : वापस प्रयत्न? प्रयत्न से तो संडास भी नहीं उतरती। प्रयत्न तो हो जाता है। जो अपने आप हो जाए, वह प्रयत्न!

ये दो वाक्य संसार में गलत घुस गए हैं। या तो कहेगा कि 'प्रयत्न कर रहा हूँ,' नहीं तो कहेगा कि 'कोशिश कर रहा हूँ।' अरे, किस चीज़ के लिए कोशिश करते रहते हो? जो अपने आप हो जाता है, उसे किसलिए करते रहना? अभी साँप जा रहा हो और नहीं देखा, लेकिन एकदम किसी की नज़र उस पर पड़े कि तुरंत कूदेगा न? इस तरह कूदेगा कि साँप को छूए नहीं,

ऐसे कूदेगा। उस घड़ी कोशिश नहीं करता न? प्रयत्न भी भूल जाता है न? उस घड़ी अपनी शक्ति काम नहीं करती, उस घड़ी अहंकार भी काम नहीं करता। उस घड़ी कोई और ही शक्ति काम करती है! और यदि खुद कर रहा हो तो साँप के ऊपर ही गिर जाए, वह घबराकर साँप पर ही गिर पड़े!

घबराहट का भय, अब तो टालो

'फेक्ट' वस्तु नहीं जाननी चाहिए? कब तक ये लौकिक बातें जानोगे? अलौकिक को जाने बिना छुटकारा नहीं हो पाएगा, भय नहीं जाएगा! पिछले दिन भूत की बात सुनी हो या किताब में पढ़ने में आई हो और रात को फिर अकेले सोना हो और पास के रूम में प्याला ज़रा खड़के, भले ही चूहे ने खड़काया हो, लेकिन भीतर क्या होता है? 'भूत घुस गया।' तब अंदर भी भूत घुस जाता है। रात को बारह बजे से भूत घुस जाए तो, जब तक सुबह सात बजे अंदर रसोई में जाकर खुद नहीं देख ले तब तक भय और घबराहट!

फिर अगर यहाँ सुने कि बड़ौदा पर बम गिरनेवाला है, तो उससे पहले तो अंदर घबराहट, घबराहट, घबराहट हो जाएगी! अरे, कहनेवाला क्या त्रिकालज्ञानी है? और वह बम हमें छू सके, ऐसी उसकी हैसियत है? ऐसा है, कि अपने प्रताप से वह बम एक हज़ार मील दूर जाकर गिरेगा! अपने प्रताप से वह बम भी काँपेगा! लेकिन यह तो चिड़िया की तरह फड़फड़ाता है! और यदि हिसाब है तो कुदरत के आगे कुछ भी नहीं चलेगा। हिसाब तो चुकाना ही है न? जब से देह धारण की है, तभी से सारे हिसाब चुकाने तो पड़ेंगे न?

कुदरत निरंतर सहायक, वहाँ डर किसलिए?

चारों तरफ से शांति हो, भय नहीं लगे तो फिर झंझट ही नहीं रहा न? फिर कुछ रहा ही नहीं न! आप तो कुदरत के

गेस्ट हो, लेकिन आप गेस्ट बनकर क्या करते हो? कि आपके गेस्टरूम में बैठे नहीं रहते, लेकिन रसोईघर में जाकर कढ़ी हिलाने जाते हो। क्या गेस्ट को रसोई में जाना चाहिए? आप नहीं, पूरी दुनिया ऐसा ही करती है। गेस्ट बनकर गेस्ट होने का भान ही नहीं है।

यदि आप गेस्ट की तरह हो तो आपको भय नहीं, कुछ भी नहीं। लेकिन गेस्ट बनना नहीं आया। जहाँ आप बैठे हो, वहाँ पर हवा-पानी मिल जाते हैं या नहीं मिलते? और अभी तक खाने-पीने का मिला है या नहीं मिला? कपड़े-लत्ते नहीं मिले होंगे? सबकुछ मिला है। लेकिन सिर्फ भय से, क्रोध-मान-माया-लोभ से अगला जन्म बाँधा है, नहीं तो इस जगत् में भय जैसी चीज़ है ही नहीं। इस वर्ल्ड में भी भय जैसी चीज़ होती ही नहीं। क्योंकि कुदरत के गेस्ट को किसका भय? एक राजा का गेस्ट हो तो उसे भय नहीं रहता, तो आप सब तो नेचर के गेस्ट हो, तो आपको किसका भय लगता है? आपकी ज़रूरत की सभी चीज़ें नेचर आपको सप्लाई करती हैं। कितनी सुंदर दशा में रखती है, फिर भी कितना भय लगता है!

यह मन झूठ-मूठ में ही डराता रहता है। अरे, अपनी मृत्यु भी दिखाता है न, कि 'मर गया तो क्या होगा?' उसे कहना कि, 'ऐसे डरा क्यों रहा है? लोगों की तेरही नहीं की? मैं तेरी तेरही करूँगा,' तब वह चुप हो जाएगा। इन लोगों ने तो ऐसा देखा ही नहीं है और इसलिए जब देखते हैं तो डर जाते हैं!

घबराने की बजाय, स्वच्छ रहो

'लोगों को कैसा लगेगा?' ऐसा भय लगता रहता है। ऐसे भय को रूम किराये पर देने के बजाय हमें खाली रखना चाहिए। उस रूम को साफ करते रहना अच्छा। भय को तो किराये पर देना ही नहीं चाहिए। 'लोगों को कैसा लगेगा?' इस भय को कहाँ

कमरा किराये पर दें? फिर वह हमेशा साथ में बैठे-बैठे डराता रहेगा, इसके बजाय उसे किराये पर देना ही नहीं। हमें अपना रूम साफ रखना है।

जो विचार दुनिया में टीका की श्रेणी में आता है, ऐसा विचार आते ही उसे शुद्ध कर डालो, धोकर साफ कर डालो! लोग रूम नहीं धोते? उसे क्या कहते हैं? पोंछा लगाना कहते हैं न? तो हमें पोंछा लगा देना चाहिए। सुबह एक पोंछा लगा देना, दोपहर में एक पोंछा लगा देना और रात को सोने से पहले एक बार पोंछा लगा देना। और जब अधिक खराब विचार आ जाए तो पोंछा लगा देना। खराब विचार आएँगे तो सही, क्योंकि माल भरा हुआ है इसलिए आएँगे, लेकिन हमें तो पोछा लगा देना है। यानी भय को कमरा किराये पर नहीं देंगे। और अंत में उसका नाम क्या है? भय! उस बगैर दाढ़ीवाले आदमी को रूम किराये पर क्यों दें?

बिदका हुआ घोड़ा हो और उसके पैरों के पास कोई पटाखा फोड़े तो उसकी क्या दशा होगी? अरे, गाड़ी भी उलट देगा। ऐसी इन लोगों की दशा हो गई है। इसलिए 'ज्ञानीपुरुष' कहते हैं न, कि 'भाई, आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'साहब, मैं कर लूँगा'।' ऐसा कहना कि, 'साहब, आप ही कर दीजिए।' क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप से यह नहीं हो पाएगा, क्योंकि डरपोक हो। रात को पोस्टमेन आए कि 'तार है,' यह सुनते ही, 'क्या हो गया? क्या है?' अरे, उसमें क्या होना है भला? लेकिन 'तार है' ऐसा कहे तो उससे चौंककर घबरा जाता है! अब, कभी इन्कमटैक्स का पत्र भी आ सकता है कि, 'भाई, आपका रिफन्ड क्यों नहीं ले जाते।' ऐसा आ सकता है या नहीं आता? लेकिन इन्कमटैक्स का पत्र देखे कि घबरा जाता है।

...उसमें पोस्टमेन का क्या गुनाह?

यहाँ तो कितने प्रकार की चिंताएँ, *उपाधियाँ*, भय, भय और

भय! चेहरे ऐसे दिखते हैं जैसे कि अरंडी का तेल पी लिया हो। 'इन्कमटैक्स की चिठ्ठी है' इस प्रकार इन्कमटैक्सवाले व्यक्ति को देखते ही घबराता है कि 'अब यह कहाँ से आया?' वह ऐसा समझता है कि अब इन्कमटैक्सवाला आया है, तो कुछ न कुछ लफड़ा लाया होगा! लेकिन जब पत्र खोले तब अंदर रिफन्ड आया होता है! बेकार ही ऐसे कितने आर्तध्यान और रौद्रध्यान करता है! और फिर खुद ही बँधता है! 'व्यवस्थित' में जो होगा वह आएगा, लेकिन उसमें ध्यान क्यों बिगाड़ता है!

अब, जो वह पत्र लेकर आता है, वह भी वीतराग है। यह पोस्टमेन जो पत्र लेकर आता है, वह विवाह का निमंत्रण हो तो भी दे जाता है, मृत्यु का पत्र हो तो भी दे जाता है, वीतराग है बेचारा! वह तो नौकरी कर रहा है। उसे क्या लेना-देना? लेकिन यह उसे भी गालियाँ देता है। सबकुछ खुद की ही ज़िम्मेदारी पर करता है न!

लेकिन इतना अधिक डर किसलिए?

मुझे खुद को ही ऐसा लगता था कि यह बिदके हुए घोड़े जैसा क्यों लग रहा है! किसी के पास कोई जायदाद नहीं, लेकिन फिर भी बिदके हुए घोड़े जैसी स्थिति कि 'ऐसा हो जाएगा और वैसा हो जाएगा,' इन्कमटैक्सवाला आएगा और फलाना आएगा। वह क्या करेगा आकर? क्यों डरते हो ऐसे? यह दीवार गिर जाएगी तो क्या होगा? यदि गिरनेवाली है और उँगली इतनी कुचली जानेवाली होगी तो कुचली जाएगी, पूरा हाथ कुचला जाना होगा तो उतना कुचला जाएगा। हमें जानना है कि 'क्या कुचल गया और कितना कुचल गया!' और क्या करना है? इतना कुचल जाएगा तो उतना हम जानेंगे। जितना हिसाब होगा उतना ही यह दीवार कुचलेगी, नहीं तो दीवार के बस में नहीं है कि हमें छू सके! यह गिरेगी, फलाना गिरेगा, यह स्लेब गिरेगा, कुछ भी नहीं गिरा है।

मैं भी घबराता था। फिर मैंने पता लगाया कि कुछ भी गिरा ही नहीं, मैं बिना बात के घबरा रहा था। फिर मैंने अंबालालभाई से कहा, अंदर भगवान से नहीं, इस अंबालालभाई से कि, 'कभी कुछ भी नहीं गिरा है, बेकार ही क्यों घबराते रहते हो? अभी तक घबराए हो, उसमें कुछ गिरा?' तब कहा कि, 'नहीं, कुछ भी गिरा तो नहीं है।' तब मैंने कहा कि, 'तो बिना बात के क्यों घबराते रहते हो? कुछ भी नहीं गिरेगा, आप खुद ही भगवान हो, बेकार ही 'हाय, हाय, ऐसा होगा या वैसा होगा,' ऐसा किसलिए करते हो? न तो आपको बेटे हैं, न ही बेटियाँ, तो फिर क्यों इतनी हाय-हाय करते हो? यदि बेटे-बेटियाँ होते तो आपकी क्या दशा होती? नहीं हैं, फिर भी इतनी हाय-हाय है! न तो आपको पैसे चाहिए, न ही आपको घर चाहिए, न ही आपको गाड़ी-मोटर चाहिए, तो फिर किसलिए ऐसे डरते रहते हो कि इन्कमटैक्सवाला आ जाएगा और फलाना आ जाएगा? गिरेगी तो यह दीवार गिरेगी न? और क्या होनेवाला है! अब से ऐसा मत बोलना, 'यह गिरनेवाला है।' ज़रा सा भी घबराने की ज़रूरत ही क्या है?!

करेक्ट को क्या भय?

वीतराग हो जाओगे तो भय जाएगा, नहीं तो जगत् में भय लगता ही रहेगा। सभी को भय लगता है। किसीने नई साइन्टिफिक खोज की हुई हो, रात को अपने पासवाले रूम में वह सब अच्छी तरह जमाकर रख आए और वह यंत्र यदि विचित्र शब्द करे तो लगता है कि भूत आया, तो पूरी रात नींद नहीं आती। इतनी अधिक घबराहट, भय रहा करता है। अब कब तक यह सब पुसाएगा?

अब रात को अंधेरे में जा रहे हों और कोई व्यक्ति यों ही सामने से आ रहा हो तो मन में ऐसा लगता है कि यह आदमी लूट लेगा। आपको ऐसे विचार नहीं आते न?

प्रश्नकर्ता : अभी तो मंजिल बहुत दूर है।

दादाश्री : दूर है, ऐसा आप कैसे जानते हो?

प्रश्नकर्ता : जब तक भय लगता है, तब तक तो पक्का ही है न कि मंजिल बहुत दूर है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन वह भय कोई निकाल दे तो? आपका किसीने निकाल दिया है? लेकिन और किसी भी प्रकार से वह भय नहीं जाएगा। वह तो जब 'ज्ञानीपुरुष' या उनके भीतर जो आत्मा प्रकट हो चुका है, जो परमात्मा प्रकट हो चुके हैं, उनकी सीधी कृपा उतरे तभी भय जाएगा।

हमें क्यों भय नहीं है? क्योंकि हमारा बिल्कुल करेक्ट है। करेक्ट को क्या भय? जिसका बिल्कुल करेक्ट है, उसे जगत् में क्या भय है? भय तो किसे रहता है कि जिसके भीतर गोलमाल हो उसे भय रहता है, नहीं तो इस जगत् में क्या भय है?

पूरे दिन घबराहट, घबराहट, घबराहट! न जाने क्या हो जाएगा! क्या हो जाएगा? फलानी जगह पर हुल्लड़ हो रहा है! बेकार ही घबराता रहता है। अरे, तू यहाँ भोजन करने बैठा है, खा ले न चैन से! तो कहेगा, 'नहीं, लेकिन वहाँ पर हुल्लड़ हुआ है न!' यानी ये लोग जो सुख है, प्राप्त सुख है, वह भी नहीं भोगते। जो सुख प्राप्त हुआ है, क्या वह नहीं भोगना चाहिए? वे प्राप्त को नहीं भोगते और अप्राप्त की चिंता करते हैं। यह सारी थ्योरी ही रोंग है। भगवान ने पहले से ही कहा है कि 'प्राप्त को भोगो और अप्राप्त की चिंता मत करो।' अप्राप्त आपके हाथ में नहीं है। आपको जब प्राप्त हो जाए, हाथ में आए तब उस चीज़ को भोगना। जो अप्राप्त है, वह चीज़ हाथ में नहीं है।

बुद्धि का उपयोग, परिणाम स्वरूप दखलंदाज़ी ही !

दादाश्री : हम कढ़ी बनाएँ, उसमें बुद्धि का उपयोग करें तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : कढ़ी बिगड़ जाएगी।

दादाश्री : क्यों? बुद्धि भी प्रकाश है न? यानी बुद्धि अपने आप कुदरती रूप से जितनी उपयोग में आती है उतनी बुद्धि ही काम की है, बाकी जो ज़रूरत से ज़्यादा बुद्धि है वह परेशान-परेशान कर देती है, और यदि बुद्धि का उपयोग करना ही हो तो सभी जगह करो न! ये लोग पानी पीते हैं, वे क्या बुद्धिपूर्वक पीते होंगे? बुद्धिपूर्वक यानी क्या? 'इस पानी में कुछ गिर गया होगा,' ऐसा सब देखता या सोचता है? वहाँ पर ऐसी बुद्धि का उपयोग करते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा।

दादाश्री : तो फिर, जब भोजन करते हैं, वह बुद्धिपूर्वक करते होंगे न? कि दाल बनाते समय क्या गिर गया होगा! ऊपर से छिपकली ने बीट कर दी होगी, वह अंदर गिर गई होगी, ऐसा सोचते हैं? यानी यदि बुद्धि का उपयोग करें तो न तो खा सकते हैं न ही पी सकते हैं। इस होटलवाले के वहाँ जाकर भी खा आते हैं, वहाँ भी बुद्धि का उपयोग नहीं करते। यदि बुद्धि का उपयोग करें तो? तो फिर वह खाया कैसे जाएगा? इसलिए बुद्धि का उपयोग कहाँ तक करना चाहिए, हमें उसका डिसीज़न कर लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इस बुद्धि का उपयोग किस तरह करना, कहाँ करना, कहाँ पर नहीं करना, सामान्य लोगों को वह ऐसे पता नहीं चलेगा न?

दादाश्री : लेकिन इतने हिस्से में उपयोग नहीं करते तो कुछ नुकसान हुआ है क्या इन लोगों को?

प्रश्नकर्ता : नहीं हुआ।

दादाश्री : यदि बुद्धि का उपयोग किया होता तो अधिक

नुकसान होता। इसलिए जहाँ-जहाँ पर बुद्धि का उपयोग होता है न, वहाँ-वहाँ वह निरा खोट का ही व्यापार है और जहाँ ज़रूरत हो, वहाँ पर उसकी हद में उपयोग हो ही जाता है। वहाँ पर बुद्धि अपने आप कुदरती रूप से ही जोइन्ट हो चुकी है, अंतःकरण में वह तालमेल सहित जोइन्ट हो चुकी है। उसमें हम एक्सेस बुद्धि का उपयोग करते हैं, उससे यह सब झंझट खड़ा हुआ है।

प्रभुश्री ने कृपालुदेव को पत्र लिखा था कि 'मुझे ऐसा लगता है कि अब देह छूट जाएगी, अतः मुझे आपके दर्शन कब होंगे?' तब कृपालुदेव ने पत्र लिखा 'ऐसा किस वजह से लगता है कि आपकी देह छूट जाएगी' तब कहा कि, 'मेरा नाम लल्लूभाई है और यहाँ पर एक व्यक्ति जो दर्शन के लिए आते थे उनका नाम भी लल्लूभाई है। वे लल्लूभाई दो-तीन दिन बीमार हुए और मर गए और मैं तो एक महीने से बीमार हूँ। मेरी और उनकी राशि एक ही है।' अब यह उन्होंने बुद्धि का उपयोग किया। तब कृपालुदेव ने उन्हें लिखा कि, 'मरने का भय मत रखना'। ऐसा लिखा ताकि फिर वहाँ पर उनकी बुद्धि ठिकाने रहे। कोई कहे या फिर डॉक्टर कहे कि, 'कोई हर्ज नहीं।' तब बुद्धि ठिकाने रहती है। तो क्या डॉक्टर जो कहता है वह चीज़ सही ही है? वह भी अंदाज से ही बोलता है न? लेकिन जिस तरह डॉक्टर का कहा हुआ सही मानता है वैसे ही आपको खुद अपने आप को सही मानने जैसा नहीं लगता? तो फिर डॉक्टर के कहे बगैर तू ही पक्का कर न, कि 'कोई परेशानी नहीं। मुझे कुछ भी नहीं होनेवाला।' और अगर परेशानी आएगी, तो वह छोड़ेगी नहीं। इसलिए परेशान होने की ज़रूरत ही कहाँ रही? भय रखने का कारण ही कहाँ रहा? अधिकतर तो, इंसान शंका से ही मर जाता है, शंका ही इंसान को मार डालती है।

प्रश्नकर्ता : बीमार पड़ जाए, तो उसे इलाज तो करवाना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : इलाज करवाना पड़ेगा या नहीं करवाना पड़ेगा, ऐसे ना या हाँ हम नहीं कहते। मैं ऐसा कह रहा हूँ कि भीतर अंतःकरण में जो विचार आएँ, 'व्यवस्थित' जैसा करवाए उस अनुसार करना, लेकिन ये शंकाएँ मत रखना। किसी भी प्रकार की शंका मत रखना। इलाज करवाना। भीतर विचार आए कि, 'चलो, डॉक्टर के वहाँ,' तो डॉक्टर के वहाँ जाना। डॉक्टर की दवाई भी लेना। लेकिन अगर डॉक्टर कहे कि, 'आपका प्रेशर बहुत बढ़ गया है।' तो वह हमें अपने अंदर नोट नहीं करना है, उसे अंदर लिखकर नहीं रखना है। समझना कि भाई, डॉक्टर ने ऐसा कहा है और भीतर शंका हो जाए तो डॉक्टर से पूछना चाहिए कि, 'आपके घर पर कभी कोई व्यक्ति मरता नहीं है न? तो मैं आपका शब्द मानूँगा।' तब डॉक्टर ही कहेगा कि, 'नहीं, मेरे यहाँ भी मर गए हैं!' तो फिर उसमें शंका रखने से क्या मिलेगा? डॉक्टर के वहाँ भी मर जाते हैं न! अतः हमें साधारण रूप से डॉक्टर से इलाज करवाना, लेकिन शंका मत रखना। डॉक्टर तो क्या करते हैं? वे बेचारे चेतावनी देते हैं कि 'बहुत प्रेशर है तो आप इस तरह से रहना,' तो हमें उस तरह से रहना चाहिए, लेकिन शंका मत रखना कि मुझे बहुत ब्लड प्रेशर है। अब क्या होगा? लोग शंका से ही मर जाते हैं। यदि डॉक्टर ने ऐसा नहीं कहा होता कि 'प्रेशर है' तो चलता रहता। पंद्रह सालों तक कुछ भी नहीं होता। और 'प्रेशर है' ऐसा पता चला कि फिर बिगड़ा। फिर डिप्रेशन आता है और मन पर साइकोलोजिकल इफेक्ट रहा करता है। डॉक्टर जो कहता है, वह तो उसे भीतर से जो प्रेरणा होती है, वही कहता है। वह गलत नहीं कहता है। उसका मानना भी सही और दवाई भी लेना, लेकिन किसी प्रकार की शंका मत रखना, क्योंकि, यह सारी सत्ता क्या किसी के हाथ में है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसी सत्ता किसी के हाथ में नहीं है।

दादाश्री : तो शंका किसलिए? यहाँ से हम दूसरे शहर

जा रहे हों और कोई कहे कि, 'यहाँ फलानी जगह पर, आजकल तो लोग लूटने लगे हैं।' तो हम तभी से शंका करने लगें तो क्या होगा? यह ज्ञान सुना तभी से शंका होने लगे, तो क्या होगा? यदि अपने पास दस-पंद्रह हज़ार रुपयों के ज़ेवरात हों तो फिर मन में शंका होती है। अभी तक लुटेरों को देखा नहीं, अभी तक लुटा भी नहीं, लेकिन उससे पहले ही लुट जाता है, घटना होने से पहले ही लुट जाता है!

संयोग चुकाएँ काल, तो डर कैसा?

हम यात्रा पर गए थे। अड़तीस लोगों को लेकर बस में सब जगह गए थे। तो एक शहर में गए थे। अब उस शहर में पुलिसवालों ने बस रोक दी। हमने पूछा कि, 'क्यों, क्या है?' तब कहा कि, 'यहाँ से आगे नहीं जाना है।' मैंने कहा कि, 'लेकिन कारण क्या है? हम यात्रा पर निकले हैं।' तब उन्होंने कहा कि, 'नहीं, आगे नहीं जाना है क्योंकि आगे इस रास्ते पर लूट होती है। यह चालीस मील का जो रास्ता है, तो बार-बार यहाँ पर लूट होती ही रहती है। इसलिए रात को नहीं जाने देंगे।' मैंने कहा कि, 'तो दिन में क्या चोरी नहीं होती?' तब उन्होंने कहा कि, 'दिन में भी चोरियाँ तो होती हैं।' तब मैंने कहा कि, 'तो अब हम कब जाएँ? रात को जाएँ या दिन में जाएँ?' फिर मैंने पुलिसवाले से कहा कि, 'हमें जाने दीजिए, हमें कोई परेशानी नहीं है, हमारी ज़िम्मेदारी पर जाने दीजिए।' तब पुलिसवाले ने कहा कि, 'तो आप जाइए, लेकिन इन दो पुलिसवालों को साथ ले जाना पड़ेगा।' तब मैंने कहा कि, 'भाई, बिठा दो।' तो बंदूक सहित दो पुलिसवालों को बस में बिठाया। लेकिन रास्ता पार कर लिया। कुछ भी नहीं हुआ। यानी कोई बाप भी छूए ऐसा नहीं है। इस जगत् में डरने की ज़रूरत है ही नहीं। वे लुटेरे तो रात के एक बजे तक बैठे रहे होंगे, फिर कहेंगे कि, 'आज कोई शिकार नहीं मिल रहा है।' और वे चले जाते हैं। वे पाँच मिनट पहले ही

गए हों और अपनी बस वहाँ से निकल जाती है! वे देखें और कहेंगे भी सही कि, 'अरे, पाँच मिनट इंतज़ार किया होता तो शिकार ऐसे हाथ में से नहीं गया होता?'

इस प्रकार यों किसी को कुछ भी करने की सत्ता है ही नहीं। इस दुनिया में घबराने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। आप मालिक ही हो। खुद अपने आपके आप मालिक ही हो और ये जो आपको अड़चनें (परेशानी, मुश्किलें) आती हैं, वह सारा आपका ही हिसाब है। आपने जो उलझाया है, उस उलझन का फल आया है। आपने उलझाया हो तो उसका फल आएगा या नहीं आएगा? फिर उसमें और किसी का क्या गुनाह? अतः हमें वह फल शांतिपूर्वक भोग लेना चाहिए और फिर से ऐसे नहीं उलझाएँ, उतना देख लेना चाहिए। वर्ना अपने में किसी की दख़ल नहीं है, भगवान की भी दख़ल नहीं है। जेबकतरे की भी दख़ल नहीं है। जो जेब काटता है, वह तो अपना हिसाब चुका रहा है।

बस आगे चली गई और शायद अगर लुटेरे मिलें भी तो वह तो हिसाब होगा तो मिलेंगे, वर्ना किस तरह मिलेंगे? फिर भी उद्धत भी नहीं हो जाना चाहिए। अब शायद वह पुलिसवाला कहे और सभी महात्मा भी कहें तब मैं अकेला ऐसा नहीं कहूँगा कि, 'अभी ही चलो।' मैं, 'सभी एविडेन्स क्या हैं' वह देख लूँगा। यदि सभी कहें कि, 'नहीं जाना है।' तब मैं कहूँगा कि, 'हाँ ठीक है, जाना मुलतवी करो।' किसी जगह पर पकड़ नहीं पकड़नी चाहिए।

जहाँ निरंतर भय! वहाँ निर्भयक्षेत्र कौन सा?

यह जगत् भय रखने जैसा है ही नहीं, बिल्कुल निर्भय होकर घूमने जैसा है और जो लोग भय रखते हैं न, उन्हें तो संपूर्ण जागृति रहती है, उन्हें यह जगत् निरंतर प्रतिक्षण भयवाला ही दिखता है। हमें तो एक भी क्षण निर्भयतावाली नहीं दिखती, ऐसा निरंतर भयवाला जगत् है। लेकिन वह भय किसलिए? आप चंदूभाई हो

तो भय है और आप शुद्धात्मा बन गए तो भय किसका? वर्ना जगत् प्रतिक्षण भयवाला है। ये लोग तो जागृत नहीं हैं, इसलिए भय नहीं लगता। लोग तो चैन से ऐसे घूमते हैं न! वे किस आधार पर ऐसे बेफिक्र होकर घूमते हैं? लेकिन उसका भी भान नहीं है! नहीं तो जगत् प्रतिक्षण भयवाला है। एक क्षण भी ऐसा नहीं है कि निर्भयता रहे।

प्रश्नकर्ता : आप जिस भय की बात कर रहे हैं, वह कौन सा भय है?

दादाश्री : एक क्षण भी निर्भयता रहे ऐसी जगह ही नहीं है यह! अभी अगर कहीं से चक्रवात आए और सब तहस-नहस कर डाले, उसका कुछ कह नहीं सकते। यहाँ से बाहर निकले तो कब कुचले जाओगे, वह कहा नहीं जा सकता, रात को सो गए हों और कब क्या काटेगा, वह कहा नहीं जा सकता। घर गए और पानी पीया, पानी में न जाने क्या गिरा होगा, वह कह नहीं सकते। अतः जगत् प्रतिक्षण भयवाला है, निर्भय रहा जा सके, ऐसी कोई जगह है ही नहीं। यह तो अजागृति के कारण लोग घूमते हैं, विवाह करते हैं, व्यापार करते हैं। अजागृति है, इसीलिए चल रहा है, जागृति में ऐसा नहीं चलेगा!

एक फार्म सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, उन्होंने मुझसे कहा कि, 'दादा, इस 'व्यवस्थित' को किस तरह मानें? ऐसी अंधश्रद्धा क्यों रखें?' मैंने कहा कि, 'यह व्यवस्थित अंधश्रद्धा नहीं है, सच्ची श्रद्धा है।' अब उन्होंने ज्ञान नहीं लिया था, इसलिए उन्हें अंधश्रद्धा ही लगेगा न! फिर एक दिन उनके फार्म पर गया, तब मैंने पूछा कि, 'अंधश्रद्धा और सच्ची श्रद्धा के बारे में आप जानते हो?' तब उन्होंने कहा कि, 'मैं अंधश्रद्धा रखता ही नहीं।' मैंने कहा कि, 'पूरा जगत् ही अंधश्रद्धा में जी रहा है।' तब कहा कि, 'मेरी कौन सी अंधश्रद्धा है, बताइए।' मैंने कहा कि, 'बताऊँगा।' इन्हें प्रत्यक्ष उदाहरण दें, तब काम का। ऐसे बुद्धि से सोचने को कहें तो फिट नहीं होगा।

फार्म में साथ में ले गए, वहाँ पर बगीचा दिखाया, फल के बगीचे दिखाए। फिर वहाँ से सौ एक फुट के एरिया में घास उगी हुई थी, उस घास को पार करके दूसरी तरफ जाना था। अब वह घास तो इतनी-इतनी दो-दो फुट की हो गई थी। इसलिए उन्होंने क्या किया? कि कूद-कूदकर चलने लगे। तीन-तीन, चार-चार फुट की छलाँग लगाकर चलने लगे। और मैं सीधी तरह से अपने हिसाब से चला। मैं कहाँ ऐसी छलाँगें लगाऊँ? बाहर निकलने के बाद मैंने उनसे कहा कि, 'आप तो बहुत अंधश्रद्धालु इंसान हो!' तब उन्होंने कहा, 'ऐसा कैसे? कहाँ अंधश्रद्धा देखी?' तब मैंने कहा कि, 'यह आप कूद-कूदकर पैर रख रहे थे, वह किस आधार पर?' 'अरे, किसी जगह पर साँप या कुछ होता तो?' 'जहाँ आपका पैर पड़ रहा था, वहाँ साँप है ही नहीं ऐसा विश्वास आपको कैसे हुआ?' तब कहा कि, 'ऐसा विश्वास तो नहीं था।' तब मैंने कहा कि, 'इसी को अंधश्रद्धा कहते हैं। इसमें मैं अपनी तरह रौब से चला ही न! मुझे ऐसी अंधश्रद्धा है ही नहीं, मुझे श्रद्धा ही है। आप कूदते हो, आपकी वह अंधश्रद्धा आपकी समझ में आई या नहीं? पाँच फुट दूर से छलाँग लगाई, लेकिन जहाँ पैर रखते हो, वह किस आधार पर? रात को अँधेरा हो गया हो, फार्म से वापस लौटते समय, बिना लाइट के आगे चलते हैं, वह किस आधार पर? कहीं कोई साँप आ जाएगा तो क्या होगा, उसका क्या भरोसा?'

यह 'ज्ञान' मिलने से पहले लोगों को अनेक प्रकार के भय से संताप रहा करता है कि, 'ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा।' अरे भाई, ऐसा भी नहीं होगा और वैसा भी नहीं होगा। खा-पीकर चैन से सो जा न! घर पर खाने-पीने का है, फिर क्या चाहिए? कल की चिंता आज नहीं करनी है, अभी खा-पीकर सो जा और थोड़ा भगवान का नाम ले और यदि शुद्धात्मा प्राप्त किया हो तो 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' कर!

जगत् भय रखने जैसा है ही नहीं और जहाँ पर निरंतर

भयवाला जगत् है, उसमें आप क्या भय रखोगे? यदि आप अपने स्वरूप में रहो तो आपको भय रहेगा ही नहीं। यह देह आपकी सत्ता में नहीं है। पराई सत्ता में हम माथापच्ची करें तो उसका क्या अर्थ?

'ज्ञान' लेने से पहले इन्कमटैक्स का पत्र आए और भीतर लिखा हो कि, 'आपने ऐसा किया है इसलिए आपको इतना दंड दिया जाएगा,' तब आपको भय घुस जाता है कि 'यह दंड देगा, यह दंड देगा!' वह भय तो दोपहर को भोजन करते समय निकल जाएगा न? भोजन करते समय चैन से खाने के लिए क्या करते हो? कपड़े बदलकर, पंखा चलाकर चैन से टेबल पर खाना खाने बैठते हैं, तब क्या उस भय को बाहर रख देते हो? साथ में ही रखते हो न! यानी कितनी-कितनी कसौटियों के बीच में जीव जी रहा है! भोजन अच्छा हो, लेकिन उस बेचारे को टेस्ट नहीं आता। बच्चे तो चैन से चखते हैं, क्योंकि उन्होंने भय देखा ही नहीं। बच्चे में बुद्धि नहीं है। बुद्धि नहीं है, तो फिर है कोई झंझट? वह भी रोने के टाइम पर रोता है, हँसने के टाइम पर हँसता है, और कोई झंझट नहीं है न! उन्हें तो 'वर्क व्हाइल यू वर्क, प्ले व्हाइल यू प्ले, देट इज़ द वे। टु बी हैपी एन्ड गे,' इस तरह वह हँसने के टाइम पर हँसता है और रोने के टाइम पर रोता है और कूदने के टाइम पर कूदता है। और यह बुद्धिवाला तो हँसने के टाइम पर रोता है। रोने के टाइम पर तो रोता ही है, लेकिन हँसने के टाइम पर भी रोए बगैर नहीं रहता, क्योंकि मन में वापस वह भय रहा ही करता है। एक चीज़ पैर में घुस जाए, तो हमें बार-बार चुभती ही रहती है, उसी तरह वह भय चुभता रहता है। मैं भी व्यापारी हूँ न, इसलिए ऐसा पत्र आए तब मैं पढ़कर समझ लेता हूँ कि यह भय सिग्नल है और एक तरफ रख देता हूँ! भय को जानना होता है और निर्भयता को भी जानना होता है। ये सब जानने की चीज़ें हैं, अलमारी में सहेजकर रखने की एक भी चीज़ नहीं है!

जंगल में लुटेरे मिल जाएँ और लूट लें तो रोना नहीं है, आगे प्रगति के लिए 'अब क्या करना चाहिए?' उस बारे में सोचना। 'अब आगे क्या करना चाहिए?' सोचे तो भगवान उसकी सब तरह से सहायता करते हैं, लेकिन वहाँ पर 'मेरा क्या होगा?' पूरी रात ऐसे रोए तो? वहीं पर जंगल में ही रोता रहे तो उसे कौन चाय पिलाएगा? इसके बजाय तो चलने लग न, आगे चाय पिलानेवाले मिल आएँगे, खिलानेवाले मिल आएँगे, सबकुछ मिल आएगा। भगवान के घर पर कोई कमी नहीं है। लुटेरे तो बहुत मिलेंगे, ऐसे एक नहीं अनेक मिलेंगे। अतः यदि लुट जाए तो आगे बढ़ने लगना। लुटने पर रोना-धोना मचाए तो कुछ नहीं होगा। पूरा जगत् लुटा हुआ ही है, लूटनेवाले उन्हें मिल ही आते हैं। और फिर वह हिसाब है। पिछले हिसाब के बगैर कोई लूट नहीं पाएगा। पिछले हिसाब के बिना कोई भी व्यक्ति हमें नहीं लूट सकता।

क्रिया से नहीं, भाव से बीज डलते हैं

इंसान अभी झूठ बोलता हुआ दिखाई देता है, लेकिन कोई इंसान आज झूठ बोल ही नहीं सकता, या फिर ऐसी लुच्चाई कर ही नहीं सकता, चोरी कर ही नहीं सकता, उसकी शुरूआत आज नहीं हुई है, वह पहले हो चुका है। आज उसकी शुरूआत नहीं दिखाई देगी। जिस की चोरी की शुरूआत हुई होगी, वह यहाँ पर नज़र नहीं आएगी। आज वह साहूकार दिखेगा। दिखने में हमेशा साहूकार दिखेगा, लेकिन उसके अंदर चोरी के बीज डल रहे होते हैं। उसका हमें पता नहीं चलता, लेकिन जब वह वृक्ष के रूप में उगेगा तब हमें यहाँ पर दिखेगा। जब वृक्ष रूपी हो जाएगा, तब लोग कहेंगे कि 'यह आज चोरियाँ कर रहा है।' लेकिन वास्तव में तो वह न जाने कब से ही था।

प्रश्नकर्ता : कोई इस जन्म में नई क्रिया नहीं कर सकता?

दादाश्री : ऐसे दिखने में नई क्रिया नहीं कर सकता, लेकिन अंदर चल रही होती हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं अभी कुछ अच्छा करूँ, सेवा करूँ, तो वह सब पुराना ही है?

दादाश्री : पुराना ही है, नया तो कुछ होता ही नहीं। नया अंदर होता रहता है कि जो आपको पता नहीं चलता। अंदर नये बीज डलते रहते हैं, वह चार्ज होता रहता है, उसका पता नहीं चलता, लेकिन यह जो डिस्चार्ज होता है, उतना ही आपको पता चलता है।

एक व्यक्ति अच्छा काम करते थे, उन्हें पचास हज़ार रुपये धर्म में दान देने को कहा। हम लोग यहाँ पर बैठे हो और ऐसी बात की तो उन्होंने कहा, 'मैं पचास हज़ार रुपये दूँगा।' फिर वे अपने घर गए। पड़ोसी ने पूछा कि, 'आपने पचास हज़ार रुपये दान में दिए?' तब वे कहने लगे कि, 'मैं दूँ ऐसा तो हूँ नहीं, लेकिन इन भाई के दबाव के कारण मैंने दिए हैं।'

अब पूर्वजन्म में दान देने के भाव किए थे तो आज दान दिया गया, लेकिन अभी बीज डल रहा है कि, 'मैं किसी को दूँ ऐसा हूँ ही नहीं।' यानी ले लूँ ऐसा हूँ! तो लोगों का ले लेने का बीज डल रहा है। यानी कि दान देने के बावजूद भी उल्टा बीज डाला!

जगत् में निर्भयता है ही कहाँ?

भय क्यों लगना चाहिए? तुझे कुछ भय नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ज़रा सा भी भय नहीं लगता।

दादाश्री : लो, यह ऐसा कह रहा है कि भय नहीं लगता! यह तो पत्नी ज़रा नीचे गई हो, तो भी भय लगता रहता है कि क्या होगा? फिर भी मुझे कह रहा है कि, 'भय नहीं लगता!' साँप पंद्रह फुट दूर हो, और वहीं से देखे तब भी भय लगता है, तब तो काँप उठता है! और कहता है कि, 'मुझे भय नहीं लगता!'

यह पूरा जगत् तो भयवाला है! साँप का भय, बाघ का भय, अरे इन्कमटैक्सवाले का भी भय लगता है, ऐसा भय लगता है या नहीं लगता? मुझे लगता है कि तू 'भय' को पहचानता ही नहीं है? तुझे क्या ऐसा लगा कि मैं सगे 'भाई' की बात कर रहा हूँ?

यह तो भय का संग्रहस्थान है। विचारशील को तो प्रतिक्षण भय दिखता है। जो जागृत नहीं है उसे कैसे भय दिखेगा? किसी को पुलिसवाले के प्रति प्रीति नहीं होती, देखे तभी से 'यह कहाँ से आया?' कहेगा, और भगवा कपड़ा पहनकर बाबा आया तो कहेगा कि, 'आईए महाराज!' लेकिन पुलिसवाले को देखा कि घबराहट हो जाती है।

संसार का यह स्वरूप हमें कम उम्र से ही दिखता था, भयंकर विकरालता! प्रतिक्षण भयवाला, प्रतिक्षण दु:खवाला, प्रतिक्षण *उपाधि*वाला!! अत: फिर किसी जगह पर हमें मूर्छा ही नहीं होती थी और किसी जगह पर टेस्ट ही नहीं आता था न! अर्थी कब निकल जाए, उसका क्या ठिकाना? लेकिन यह तो क्या होता है? जो भय भरा हुआ है, वही भय उसे दिखता है। जो भय नहीं भरा, वह नहीं दिखता।

पाँच लोग यहाँ से अँधेरे में जंगल में जा रहे हों, तो एक को ऐसा भय हो कि 'अभी शेर दहाड़ेगा, अभी शेर दहाड़ेगा।' दूसरे को, 'साँप काट खाएगा तो?' ऐसा भय हो। तीसरे को मन में ऐसा होता है कि, 'लुटेरे मिल जाएँगे और मारेंगे तो?' यानी सभी के भय अलग-अलग होते हैं, जिसने जिस प्रकार का भय भरा होगा, उसे वहीं भय दिखेगा, दूसरे नहीं दिखेंगे। यानी बात में कोई माल नहीं है।

कुछ लोगों को तो, पूरे दिन मोटरों में घूमते हैं, लेकिन ऐसा विचार ही नहीं आता कि 'मैं टकरा जाऊँगा,' क्योंकि वह माल ही नहीं भरा है न! और यदि वह माल भरा हुआ होगा

तो ड्राइवर ड्राइविंग कर ही नहीं सकेंगे। टकरा ही जाएँगे! यानी जो माल नहीं भरा है, उसके विचार तक नहीं आते। कुछ लोगों को तो, रात को एकांत में अकेले हों, फिर भी भय नहीं लगता और किसी को तो अकेला पड़ा कि भूत याद आता रहता है। टेकनिकली शोध (विश्लेषण) करें, तब भी समझ में आ जाएगा कि भरे हुए भय के ही विचार आते हैं।

ये स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं, लेकिन वैसा माल नहीं भरा कि, 'वैधव्य आएगा तो क्या होगा?' इसलिए उन्हें ऐसा विचार भी नहीं आता कि वैधव्य आएगा तो क्या होगा? वास्तव में तो वैधव्य किसी को ही आता है। खास करके ऐसा होता नहीं लेकिन अंत में तो वैधव्य ही है न! लेकिन वैसा भय ही नहीं लगता न! और ऐसा तो क्या विवाह किया, कि फिर से विधवा होना बाकी रहा? विवाह के समय तो ठाठ-वाट होते हैं और मंडप वगैरह सब होता है। लेकिन यह मंडप रोज़-रोज़ नहीं होता। वह तो जिस दिन विवाह किया सिर्फ उसी दिन मंडप और वह भी किराये का लाकर बनाते हैं न! ये बच्चे लोग गुड्डे-गुड़िया की शादी नहीं करते? प्रसाद भी बाँटते हैं। इसके बावजूद भी यह 'इल्यूज़न' नहीं है और हटाने से हटे ऐसा है भी नहीं।

तुझे भय लगता है क्या? बाघ आ जाए तो? वह तो निमित्त के बिना पता नहीं चलेगा न? ऐसा है न, कि वर्तमान भय तो लगता ही है। उस भय के परमाणु नहीं होते तो इस रोड पर से गाय-भैंसे उठती ही नहीं और यह व्यवहार चलता ही नहीं और वह रोड भी नहीं चलती। होर्न बजाते रहते तो भी गायें उठती ही नहीं, बैठी ही रहतीं। लेकिन जानवरों में वह भय संज्ञा होती है न और इसीलिए तो छोटा सा पिल्ला हो तो वह भी गाड़ी देखकर उठकर चलता बनता है, भयसंज्ञा उसे उठाती है!

भय की ज़रूरत है या नहीं? ये गायें-भैंसें, रास्ते पर से खड़ी ही नहीं होंगी और वे कहेंगी, 'जाओ, आप से जो हो सके

वह कर लो।' ये चिड़िया भी नहीं उड़ेंगी, लेकिन नहीं, भय से गायें-भैंसे रास्ते पर से उठकर चलने लगती हैं। यानी यह जगत् भय से ही चल रहा है, इन मनुष्यों को भी भय की ज़रूरत है। जो लोग 'ज्ञानीपुरुष' से मिलें और 'ज्ञानीपुरुष' को ऐसा लगे कि इसे भय की ज़रूरत नहीं है तो वे भय निकाल देते हैं और फिर पास कर देते हैं। वर्ना ये तो अभी फेल हुए हैं। जिसे भय है, वे फेल हुए हैं। भय जाए तो काम होगा, नहीं तो चलेगा ही नहीं न!

[७]

कढ़ापा-अजंपा

'प्याला' करवाए कढ़ापा-अजंपा!

मोक्ष का मार्ग इतना सरल नहीं है। यह तो यहाँ पर सरल मार्ग खुल गया है, वहाँ अपना काम निकाल लेना है। सरल मार्ग और वह भी चिंता रहित! वर्ना *कढ़ापा-अजंपा* सभी को होते हैं। सत्तर साल का व्यक्ति भी, यदि दो प्याले फूट गए हो और आवाज़ सुने तो बोलेगा, 'अरे, यह क्या फूटा?' दो प्यालों में तो जैसे आत्मा फूट गया हो न, ऐसा होता है और पूरा ही जगत् ऐसा करता है न? अब, इसमें कौन फोड़ता है? वह जानता नहीं और 'नौकर ने ही फोड़े' ऐसा कहता है। अरे, नौकर तो फोड़ता होगा? नौकर कहीं अपना विरोधी नहीं है। अब, नौकर का गुनाह नहीं है, लेकिन फिर भी ये लोग ऐसा बोलते रहते हैं न कि 'नौकर ही फोड़ते हैं'! बहुत दिनों तक ऐसा हो तो नौकर फिर एक दिन चाकू मारकर चला जाता है। तब फिर लोग शोर मचाते हैं कि 'अब तो नौकर मार डालते हैं!' मारें नहीं तो क्या करें? आप उसे रोज़ मारते रहते हो तो फिर एक दिन वह पूरा मार देता है! इसलिए 'नौकर के साथ कैसे बर्ताव करना चाहिए' उसे वह समझना नहीं पड़ेगा?

नौकर के हाथ में से गिरकर प्याले फूट जाए तो हमें उसे ऐसे कहना चाहिए कि, 'भाई, गरमागरम चाय तेरे पैर पर गिर गई, तो तू जल तो नहीं गया न?' तब उसे कितना अच्छा लगेगा? उसके घर पर भी कोई ऐसा आश्वासन नहीं दे वैसा आश्वासन

देना, तो नौकर के मन में कितना अच्छा लगेगा? नौकर भी आत्मा ही है न? लेकिन पूरे दिन सेठानी किच-किच करती है और फिर एक दिन सेठानी को चाकू मारकर नौकर चला जाता है। आपके वहाँ पर कभी प्याले फूटे थे या नहीं? फिर *कढ़ापा-अजंपा* हो जाता था न?

कढ़ापा-अजंपा, बंद होने पर भगवान पद

यह *कढ़ापा-अजंपा* बंद हो जाए न, तो वह इंसान क्या कहलाएगा? वह इंसान भगवान कहलाएगा। क्योंकि लोग क्या कहते हैं कि मनुष्य कढ़ापे-अजंपे रहित हो ही नहीं सकता। किसी के प्याले फूट जाएँ और *कढ़ापा-अजंपा* हो, और किसी का पेन खो जाए तब *कढ़ापा-अजंपा* होता है। किसी की गाड़ी उसके ड्राइवर ने ज़रा खराब कर दी हो तो उसे *कढ़ापा-अजंपा* हो जाता है। कुछ न कुछ *कढ़ापा-अजंपा* हुए बगैर रहता ही नहीं। किसी का डाइनिंग टेबल किसी ने बिगाड़ दिया हो तो उसे *कढ़ापा-अजंपा* हो जाता है। पूरे दिन *कढ़ापा-अजंपा* ही करता रहता है। जिसका *कढ़ापा-अजंपा* गया, उसे जगत् भगवान ही कहता है!

कढ़ापा और अजंपा, भिन्नता क्या?

आप दोनों को पहचानते हो या एक को पहचानते हो?

प्रश्नकर्ता : दोनों को पहचानता हूँ।

दादाश्री : ऐसा! इन दोनों में से बड़ा भाई कौन है?

प्रश्नकर्ता : *कढ़ापा* (कुढ़न, क्लेश) ही बड़ा है।

दादाश्री : हाँ, *कढ़ापा* बड़ा और भोला है। और *अजंपा* तो छोटा और कपटी है। अतः जब कोई *कढ़ापा* करे तब लोग भी कहेंगे कि, 'भाई, दो प्याले फूट गए उसमें इतना *कढ़ापा* क्यों कर रहे हो?' घरवाले भी कहेंगे कि, 'भले ही फूट गए, आप बैठो न चैन से, ज़रा शांति रखो न!' *कढ़ापा* भोला है न, इसलिए

लोग जान जाते हैं और *अजंपा* तो अंदर होता है। कुछ सेठ तो इसलिए *कढ़ापा* नहीं करते कि इज़्ज़त नहीं जाए, लेकिन अंदर *अजंपा* कपटी और छोटा है इसलिए अगले जन्म के लिए क्रमबद्ध हिसाब बाँध देता है, यानी ये हस्ताक्षर करवा देते हैं सब। जिसे *कढ़ापा* होता है उसे भीतर *अजंपा* होता ही है। लेकिन यदि सिर्फ *अजंपा* ही हो तो वह बहुत अधिक जोखिमी होता है। लेकिन जब कढ़ापा और अजंपा दोनों साथ में हों, तब कढ़ापा अधिक खा जाता है, इसलिए अजंपा को बहुत कम हिस्सा मिलता है। लेकिन ये सेठ *कढ़ापा* नहीं करते, सिर्फ *अजंपा* ही करते रहते हैं। सेठ समझते हैं कि ये सब लोग मेरी कमज़ोरी जान जाएँगे। इसलिए सेठलोग बाहरी तौर पर *कढ़ापा* नहीं करते, अंदर ही अंदर *अजंपा* करते रहते हैं कि 'ये प्याले फोड़ डाले। अभी ये सब बैठे हैं, ये चले जाएँगे तब नौकर को दो तमाचे मार दूँगा। इसे तो अब निकाल देना है।' अंदर ऐसा ही करता रहता है। यानी जिसका *कढ़ापा-अजंपा* चला जाए, उसे तो भगवान ही कहेंगे। अब किसलिए इतना बड़ा पद कहा होगा? क्योंकि कोई भी इंसान *कढ़ापा-अजंपा* रहित नहीं होता। इसलिए *कढ़ापा-अजंपा,* बस इतना ही शब्द जिसमें से निकल गया, वह भगवान कहलाएगा। वह भगवान अपना थर्मामीटर!

कढ़ापा-अजंपा का आधार

प्रश्नकर्ता : मानो कि *कढ़ापा-अजंपा* चला जाए, फिर वापस आता है क्या?

दादाश्री : नहीं आता। आपको लाना है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : लोगों को *कढ़ापा-अजंपा* करना अच्छा लगता होगा? मन में समझते ज़रूर हैं कि, 'क्या करें अब? उस बेचारे नौकर से फूट गए। मुझे *कढ़ापा-अजंपा* हुआ, यह सब गलत हो रहा

है, ऐसा नहीं होना चाहिए।' फिर मन में ऐसे पछताता भी है, सबकुछ करता है, लेकिन वापस फिर से जब ऐसा हो जाए, तब वैसे का वैसा ही। क्योंकि उसके पास ज्ञान प्रकाश नहीं है न! घोर अँधेरा है। अँधेरे में तो जमाई टकराए तब भी कहेगा कि, 'लुटेरा टकराया।' और लुटेरा टकराए तो कहेगा, 'जमाई टकराया।' यानी कि ऐसा है!

प्रश्नकर्ता : *कढ़ापा-अजंपा* का आधार तो अज्ञान ही है न?

दादाश्री : अज्ञान ही। अँधेरे के कारण ही वह लुटेरे को जमाई मानता है, तब वह अज्ञान नहीं तो और क्या? अँधेरे में लुटेरा टकरा जाए तो कहेगा, 'मेरे जमाई आए लगते हैं,' इसी तरह यह भी अँधेरे का डिसीज़न कहलाता है। अँधेरे में कौन कह सकता है कि यह जमाई ही है या यह लुटेरा ही है? अँधेरे में जमाई को कहेंगे कि 'लुटेरा टकरा गया।' ऐसा उल्टा-सीधा हो जाता है। लोग क्या ऐसा नहीं समझते कि 'यह कुछ गलत है?' सबकुछ समझते हैं, लेकिन भीतर अँधेरा हो तो क्या करें?

क़ीमत, प्याले की या डाँटने की?

बड़े मिल मालिक भी, यदि नौकर कभी दस कप-प्लेट लेकर आ रहा हो और ट्रे हाथ में से गिर जाए, तब भी उसका आत्मा फूट जाता है। अरे, चार-चार मिलों के मालिक हो और कैसे हो? ऐसे तो कैसे हो कि इस प्याले में ही आत्मा आ गया? चार मिलों का मालिक, तो क्या तू गरीब है?

टोकना, लेकिन किस हेतु के लिए?

ज्ञानीपुरुष तो क्या कहते हैं? पहले तो उसे पूछेंगे कि, 'भाई, कहीं तू जला तो नहीं न?' फिर कहेंगे कि, 'ज़रा संभालकर चले तो अच्छा है।' यानी ज्ञानी तो सब कहते हैं, लेकिन वीतरागता से। अनुभव ज्ञानी तो भले ही कितना भी कहें, करें, फिर भी खुद वीतरागता में रहते हैं। शायद मुँह पर डाँट भी दें, लेकिन

फिर भी खुद वीतरागता में रहते हैं। डाँटना वगैरह सब समय के अधीन होता है क्योंकि यदि वैसा नहीं करें तो वह व्यक्ति किसी नये ही प्रकार के उल्टे रास्ते पर चला जाए, ऐसा हो सकता है। इसलिए दोनों ज़िम्मेदारियाँ संभालनी है। सामनेवाला व्यक्ति हमारे निमित्त से उल्टा नहीं चले और काम भी चलने देना है।

नौकर कहीं प्याले फोड़ता होगा?

यह तो पूरा दिन *कढ़ापा-अजंपा, कढ़ापा-अजंपा,* एक प्याला फूट जाए न, तब भी शोर और कलह कर देता है! हम इस बच्चे से पूछें कि, 'भाई, यह प्याला फूट गया तो तू क्यों कुछ नहीं कह रहा?' तब वह कहेगा कि, 'मुझे क्या?' तो वह तो ज्ञानी कहलाएगा, अज्ञानी ज्ञानी! किसलिए? ये लोग नौकर को डाँट रहे हैं, वह बच्चा क्या ऐसा नहीं समझता? वह देखता रहता है कि 'ये क्यों डाँट रहे हैं? यह नौकर तो अच्छा है और इस बेचारे को ये लोग डाँट रहे हैं!' वर्ना, प्याला तो यह छोटा बच्चा भी नहीं फोड़ता। इस छोटे बच्चे से कहें कि, 'जा बेटा, ये प्याले बाहर फेंक आ।' तो नहीं फेंकेगा। कई बार मैं बड़ौदा जाता हूँ न, तब मैं बच्चे से कहता हूँ कि, 'ये दादा के बूट हैं न, ये बाहर फेंक दे।' तब वह कंधे उचकाता है। वह समझता है कि ये नहीं फेंकने चाहिए। अब यदि छोटा बच्चा भी नहीं फोड़ता, तो इतना बड़ा नौकर तो क्यों फोड़ेगा? फिर भी सेठानी डाँटती रहती है तो नौकर मन में समझ जाता है कि 'यह कर्कशा है।' अपने साथवाले दूसरे नौकर से कहता भी है कि 'मेरी सेठानी तो कर्कशा है!'

...और फिर नौकर के अभिप्राय कैसे!

हमारे एक पार्टनर थे, वे बहुत सख़्त थे। तब मैंने उनसे कहा कि, 'अपने नौकर से पूछो तो सही कि 'भाई, आज मैं तुम्हें दंड नहीं दूँगा, नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा, लेकिन अपने दिल

से मुझे कहो कि, मुझे पीछे से क्या उपनाम दिया है?' तो नौकरों ने अलग-अलग नाम बता दिए। किसीने टुच्चा कहा, किसीने लुच्चा नाम दिया, सभी ने अपने-अपने नाम बता दिए। तब मैंने कहा कि, 'तेरे पीठ पीछे कैसे नाम रखे हैं!' लोग नाम रखते हैं, और फिर नौकर ने सेठानी के लिए भी नाम रखा होता है कि 'यह कर्कशा है।'

पर्याय देखकर निकली हुई वाणी

इतना छोटा बच्चा हो न, वह भी जान-बूझकर प्याला नहीं फोड़ता। हम कहें, 'फोड़ दे।' तब भी नहीं फोड़ेगा। लेकिन अगर उसके हाथ से फूट जाए तो वह चिंता-विंता कुछ नहीं करता। अगर उसके माँ-बाप टेढ़े हों तो वह रो ज़रूर उठेगा कि 'ये डाँटेंगे अब!'

प्रश्नकर्ता : आप जानते हैं यह सब?

दादाश्री : ऐसा है, इस ज्ञान में हमें सबकुछ दिखता है। सभी पर्याय हमें पता चलते हैं। हर एक पौद्‌गलिक पर्याय जो कुछ भी है न, वे सब हमें सूक्ष्म रूप से दिखते हैं, इसलिए हम आपको जवाब दे सकते हैं।

नौकर तो निमित्त, हिसाब खुद का ही

प्याले फूट जाएँ, तब भी *कढ़ापा* होता है। नौकर को गालियाँ देता है कि, 'तेरे हाथ टूटे हुए हैं, तेरे ऐसे टूटे हुए हैं।' उस घड़ी यदि ऐसा सोचे कि, 'मैं इसकी जगह पर होऊँ तो मेरी क्या दशा होगी? मुझे कितना दुःख होगा?' कोई ऐसा सोचता है? नौकर के मन में क्या होता है कि, 'यह सेठ मुझे बिना बात के डाँट रहा है, मेरा गुनाह नहीं है। मैं तो नौकर हूँ और नौकरी कर रहा हूँ, इसलिए मुझे डाँट रहा है।' बेचारे को ऐसा होता है। अतः ऐसे नासमझी से अमीर लोग गरीबों को दुःख दे देते

हैं, वर्ना नौकर कहीं प्याले फोड़ता होगा? यदि नौकर प्याले फोड़ सकता तो रोज़ ही फोड़ता। जब उससे हाथ में नहीं पकड़ा जाए, तभी टूटेगा न? इस वर्ल्ड में कोई चीज़ कोई फोड़ता ही नहीं, यह तो सब आपका ही हिसाब चुक रहा है। उसमें नौकर तो बेचारा निमित्त बन जाता है। लेकिन नौकर के हाथ से प्याले फूटते ही सेठानी शोर मचा देती है और यदि सेठ बैठे हुए हों न, तो वे भी अकुलाते (गुस्सा,चिढ़) रहते हैं। अरे, एक भागीदार अकुलाए तो बहुत हो गया, एक को ही अकुलाने दो न! सभी भागीदारों के अकुलाने का कारण क्या है? कंपनी में एक भागीदार अकुलाए कि बहुत हो गया! भले ही एक का बिगुल बजे! लेकिन सभी के बिगुल साथ में क्यों बजाएँ? सब क्यों बजाते होंगे? इच्छा नहीं हो तब भी बज जाता है, क्योंकि अज्ञान उसे जोड़ देता है न! और जब सभी बिगुल बजने लगें, तब वह नौकर तो काँप जाता है! जब सभी घेर लेते हैं तब वह बच्ची होती है न, वह भी किच-किच करती हुई आती है कि, 'अरे, इस बेवकूफ को तो मारने जैसा है।' तब फिर नौकर की क्या दशा होगी?

अब नौकर के साथ, किस तरह व्यवहार करें?

मोक्ष में नहीं जाना हो, लेकिन यहाँ पर तो ठंडक होनी चाहिए न? भीतर *अजंपा* नहीं हो, उतना तो समझना पड़ेगा न? प्याला फूट जाए और *कढ़ापा-अजंपा* करें, तो वह अपनी ही भूल है न? या प्याले की भूल है?

प्रश्नकर्ता : अपनी ही भूल है।

दादाश्री : यानी सिर्फ सेठ अकेले ही *अजंपा* नहीं करते, सेठानी भी भीतर *अजंपा* करती रहती हैं। वह अकेला *अजंपा* कर रहा है, उसमें आप क्यों भागीदारी कर रही हो? लेकिन उसमें भी पार्टनरशिप! वे दोनों पार्टनर हैं इसमें भी! तब नौकर बेचारा अकेला फँस जाता है। अब मैं क्या कहता हूँ कि 'अगर आप

इस नौकर की जगह पर हों तो आपका न्याय कैसा रहेगा?' फिर नौकर को गालियाँ दीं, तो वह घोर अन्याय नहीं है? इन्डियन फिलॉसफि क्या ऐसी होती होगी? वास्तव में तो हमें इतना अधिक नोबल रहना चाहिए कि... यदि हम वहाँ पर होंगे तो क्या करेंगे कि नौकर के हाथ में से ट्रे गिर जाए और प्याले फूट जाएँ, तो पहले तो हम नौकर से पूछेंगे कि, 'भाई, तू जला तो नहीं न? भले ही प्याले फूट गए, वे तो दूसरे आ जाएँगे लेकिन तू नहीं जला न?' पहले ऐसा पूछना पड़ेगा, क्योंकि खूब जल गया हो और हम कुछ बोलें तो वह गलत कहलाएगा। अगर नहीं जला हो तो फिर दूसरी बात करना कि, 'भाई, ज़रा धीरे से आहिस्ता-आहिस्ता आए तो ऐसी परेशानी नहीं होगी।' फिर ऐसे कहना पड़ेगा। ऐसा नहीं कहा तो वह भी गुनाह कहलाएगा, क्योंकि सावधान करने के लिए ऐसे टोकना तो पड़ेगा, लेकिन इस तरह मत टोकना कि, 'तेरे हाथ टूटे हुए हैं, तू ऐसा है, वैसा है।' ऐसे मत टोकना। उसे तो टोकना भी नहीं कहा जाएगा, हिंसा कहा जाएगा। नौकर बेचारा भी ऐसी ही आशा रखता है कि अभी मुझे ऐसा कहेंगे, 'तेरे हाथ टूटे हुए हैं,' इसीलिए भीतर काँप रहा होता है कि, 'अब क्या कहेंगे? सेठ-सेठानी अब क्या कहेंगे?' वह नौकर मन में समझता है कि ये सेठ और सेठानी दोनों ही चीते जैसे हैं। जैसे चीते दहाड़ते हैं, वैसे ही ये दहाड़ेंगे। अंदर वह इस तरह से डरता है। अब उस सेठ को मैं समझाता हूँ कि, 'सेठ, आप उसकी जगह पर होते तो क्या होता?' ऐसा सोचो तो सही। वैसे तो आप पुण्यशाली हो, अतः उसकी जगह पर आप नहीं आओगे, लेकिन तू तेरे बॉस के हाथ में इसी तरह आ जाएगा, इसलिए सावधान रहना।' जिसका तू बॉस है, उस पर ऐसे पावर का उपयोग करना कि जब तेरा बॉस वैसे ही पावर का उपयोग तुझ पर करे, उस समय तेरी कसौटी नहीं हो! बॉस तो सभी के होते ही हैं न? मेरे जैसा हो, उसके बॉस नहीं हैं, लेकिन और सभी के तो बॉस होंगे ही न! जिसे अन्डरहैन्ड का शौक है या जिसे ऐसा

रहे मेरे नीचे एक तो चाहिए, उसके बॉस तो होंगे ही। हमें अन्डरहैन्ड का शौक नहीं है, इसीलिए कोई बॉस ही नहीं है।

कैसा अन्याय कहलाएगा? 'घोर अन्याय किया' कहलाएगा! ऐसे तो भयंकर दोष किए हैं! खुद को पता भी नहीं चलता कि 'मैंने यह दोष किया है।' नौकर के साथ ऐसा बर्ताव करने के बाद, ऐसा दोष हो गया है, ऐसा भी पता नहीं चलता। 'नौकर ही गलत है, उसे निकाल देना है,' ऐसा कहता है और इसलिए खुद को ये सभी अड़चनें हैं। इसीलिए मोक्ष नहीं मिलता, वर्ना यदि मोक्ष के न्याय को समझे न, तो संपूर्ण मोक्ष मिले, ऐसा है। संसार का न्याय, वह न्याय नहीं है। भगवान का न्याय, वह न्याय है।

भगवान का न्याय क्या है कि जितने भी देहधारी जीव हैं, फिर पेड़ हो या चाहे जो हो, लेकिन जीवित हैं। जीवित हैं, ऐसा कैसे पता चलेगा, कि यदि पेड़ को काट दें तो उसका लावण्य चला जाएगा, यानी जितने भी लावण्यवाले जीव हैं, उनके भीतर भगवान बैठे हैं। इसलिए अगर उन्हें किंचित्मात्र भी दुःख हो तो, वह सब अन्याय कहा जाएगा।

साधनों की मात्रा कितनी होनी चाहिए?

अहमदाबाद के सेठों की दो मिले हैं, फिर भी उनकी बेचैनी का तो यहाँ पर वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसा है। दो-दो मिले हैं, फिर भी वह कब फेल हो जाए, वह कहा नहीं जा सकता। यों तो स्कूल में अच्छी तरह पास होते थे, लेकिन यहाँ पर कब फेल हो जाएँ, वह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि उसने 'बेस्ट फूलिशनेस' शुरू कर दी है। 'डिस्ओनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस।' इस फूलिशनेस की तो हद होगी न? कि 'बेस्ट' तक पहुँचना है? तो आज बेस्ट फूलिशनेस तक पहुँच गए! और हम, वहाँ पर बड़े-बड़े बंगले होते हैं न, उन बंगलों में हम सफाई देखते हैं न? उसी तरह के ये बड़े-बड़े मकान होते हैं। वे कितनी

ही मंजिल के, तो जैसे-जैसे ऊँचे चढ़े, वैसे-वैसे सफाई बढ़ती है। और जितनी सफाई बढ़ती है, उतनी ही जलन बढ़ती है। फिर उस जलन के उपाय में ब्रांडी और दूसरे सभी उपाय करता है। तो क्या सफाई एडमिट नहीं करनी चाहिए? नहीं, सफाई एडमिट इतनी ही करनी अच्छी कि जो यदि मैली हो जाए, फिर भी हमें चिंता नहीं हो। बच्चा उस सफाई को बिगाड़ दे, तब भी उस बच्चे पर गुस्सा नहीं होना पड़े। यह तो कहेगा कि, 'यह पुराना सोफासेट बदल डालें?' तब मैंने कहा कि, 'नहीं, उसे रहने दो न!' क्योंकि छोटा बच्चा उस पर ब्लेड से चीरा लगा देगा तो भी आपको परेशानी नहीं होगी। बल्कि उसे कहना, 'ले दूसरा चीरा लगा।' इससे आपको निर्भयता रहेगी। हमें साधन ऐसे रखने चाहिए कि जो साधन हमें भय नहीं करवाएँ, नहीं तो फिर कृपालुदेव ने गाया है, वैसा होगा कि,

'सहु साधन बंधन थयां रह्यो न कोई उपाय,
सत् साधन समज्यो नहीं त्यां बंधन शुं जाय?'

यानी ये साधन ही बंधन बन गए हैं। इसके बावजूद कुछ साधन ऐसे होते हैं कि जो आवश्यक हैं। उन साधनों को हटाना नहीं। क्योंकि वे अवश्य होने ही चाहिए, लेकिन उनकी मात्रा हमें समझ लेनी चाहिए। बंगला कितना बड़ा बनवाना चाहिए, उसकी कोई लिमिट तो होगी न या नहीं होगी? अपने पास पाँच अरब रुपये हैं लेकिन बंगला कितना बड़ा बनाना चाहिए, उसकी लिमिट होनी चाहिए या अनलिमिटेड होना चाहिए? किसी का अन्‌लिमिटेड बंगला देखा है आपने? नहीं। होगा, किसी का तो होगा न? अन्‌लिमिटेड किसी का होता नहीं है न! होटल भी अन्‌लिमिटेड नहीं होती, उसकी भी लिमिट रखी होती है, लेकिन बंगले लिमिटेड नहीं बनते। मेरा कहना है कि इसमें क्यों अन्‌लिमिटेड बनते हो? क्योंकि वही फिर खुद के लिए परेशानी बन जाएगी, बच्चे ने थोड़ा भी बिगाड़ा कि उस पर चिढ़ता रहेगा और बच्चे को मारता रहेगा!

कढ़ापे-अजंपे के प्रति नापसंदगी, वह भी जागृति!

बड़े-बड़े सेठों से मैं पूछता हूँ कि, 'सेठ, आप यह महँगे नये कप-प्लेट लाए हो और नौकर उनमें चाय लेकर आ रहा हो, ट्रे में छह कप और छह प्लेट लेकर आ रहा हो और नौकर के हाथ से वह ट्रे गिर जाए, तो आप पर कोई असर होगा?' तब कहते हैं कि, 'अरे, बहुत होगा, ऐसे *अजंपा* हो जाएगा।' तब मैंने कहा कि, 'क्या आप इस अजंपे के लिए कोई दवाई नहीं चुपड़ते?' तब कहते हैं कि, 'उसकी दवाई होती ही नहीं है न!' मैंने कहा कि, 'तो फिर आप किस आधार पर जीते हो? कोई आधार नहीं है? जीवन का भी आधार चाहिए या नहीं चाहिए?' आपके प्याले फूट जाएँ, तब क्या करोगे आप?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नहीं होगा।

दादाश्री : क्या बात करते हो? ऐसे पचासी का उधार तो हो चुका, अब और पंद्रह साल आनेवाले हैं, तो सौ पूरे होंगे फिर?

प्रश्नकर्ता : भले ही हों, 'यह' प्याला भी फूटना ही है फिर।

दादाश्री : ऐसा! देह को प्याला कह रहे हो? तब ठीक! इसे ज्ञान कहते हैं! वे सेठ तो कहेंगे, 'इसकी दवाई ही नहीं है!' तो भाई, तेरी क्या दशा होगी? फिर से यदि आपको *अजंपा* हो तो अच्छा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं लगेगा।

दादाश्री : अब लोग कहते हैं, 'आप जिज्ञासु क्यों नहीं बनते?' अरे, मुझे जिज्ञासु बनकर क्या करना है? जिसे यह *अजंपा* पसंद नहीं है, वही जिज्ञासु पद है। जिज्ञासु तो वे लोग बनते हैं कि जिन्हें *अजंपा* पसंद है! मुझे *अजंपा* पसंद नहीं है, तो अब मुझे

जिज्ञासु क्यों बनना है? जिसे यह *अजंपा* पसंद नहीं है, वही इटसेल्फ उसे मोक्ष में ले जाएगा। कोई कहेगा कि, लोगों को भी *अजंपा* तो पसंद नहीं है न? नहीं, वह तो यदि उनसे पूछें न, तो कहेंगे कि, 'वह सब तो चाहिए ही न, यह भी होता है और वह भी होता है।' उसे ऐसा नहीं लगता कि यह गलत किया है।

प्रश्नकर्ता : *अजंपा* मोक्ष में कैसे ले जाता है? यदि *अजंपा* नहीं रहे तो?

दादाश्री : यदि यह *अजंपा* नहीं रहे तो 'उसमें ऐसा सुख है' और *अजंपा* रहे तो 'उसमें ऐसा दु:ख है,' ऐसा उसे ज्ञान बरतता है, इस वजह से उसे वह जो जागृति बरतती है कि '*अजंपा* नहीं होना चाहिए। यह गलत है' वही जागृति उसे मोक्ष में ले जाएगी। मनुष्य को *अजंपा* कैसे सहन हो? यह *अजंपा* पसंद तो नहीं है, फिर भी लोग क्या कहते हैं कि, 'लेकिन संसार में तो यही रहता है न!' यदि ऐसा ही हो, तो फिर जीने का अर्थ ही क्या है? तो मीनिंगलेस है। और अजंपे के साथ तूने क्या सुख भोगा? ऊपर तलवारें हों और ऐसा भय रहे कि वे गिर जाएँगी, तो तूने खाया कैसे? वो जनक राजा ने एक मुनि को भोजन करवाया था न, इस तरह ऊपर घंट बाँधा था, वे तपस्वी भोले आदमी थे तो जब राजा ने पूछा कि, 'पकौड़ियाँ कैसी थीं? श्रीखंड कैसा था?' तब वे तो भोले आदमी, तो कह दिया कि, 'राजा, मैं तो ऊपर से घंट गिरेगा, उसी भय में रहा। मैं खा रहा था, लेकिन मेरा चित्त तो उस घंट में ही था, इसलिए मैं कुछ नहीं जानता कि टेस्ट कैसा था!' राजा ने पूछा कि, 'आपने खाया तो है न?' तब मुनि ने कहा, 'हाँ, खाया तो है।' 'तो वह टेस्ट से खाया?' तब बोले, 'नहीं, वह मैं नहीं जानता।' तब राजा ने कहा कि, 'ऐसा टेस्टी था, फिर भी आपको टेस्ट के बारे में कुछ पता नहीं चला, क्योंकि आपका चित्त घंट में था। उसी तरह हम इन रानियों के गले में ऐसे हाथ डाले रहते हैं, फिर भी हमारा चित्त भगवान में रहता है!'

'पराया' 'समझे,' तो समता बरते

पूरी बात समझे तो हल आएगा, नहीं तो इसका हल नहीं आएगा व कॉज़ेज़ और इफेक्ट, इफेक्ट और कॉज़ेज़, कॉज़ेज़ और इफेक्ट चलते रहेंगे। और रोज़ कहीं *अजंपा* नहीं होता। यह तो पास में किसी और के कमरे में से प्याले फूटने की आवाज़ आए तो कोई *उपाधि* नहीं है, लेकिन अपने कमरे में से प्याले फूटने की आवाज़ आए, तो *अजंपा* हो जाएगा न? किसलिए? क्या कारण होगा?

प्रश्नकर्ता : अपनी चीज़ के प्रति मोह है, और पड़ोसी के वहाँ का सामान अपना नहीं लगता।

दादाश्री : ऐसा है, यह मोह नहीं है, ममता है कि 'यह मेरा नुकसान हो गया, दस-पंद्रह रुपये के प्याले खत्म हो गए!' और पड़ोसी के वहाँ, 'उसका गया इसमें मुझे क्या?' जबकि खुद के घर पर फूट जाएँ तो उस पर असर होता है। अब खुद के घर पर फूटे हों, लेकिन उस पर ऐसा असर हो जैसे पड़ोसी के घर पर फूट गए हों तो वह भगवान बन जाए! लेकिन लोग तो बहुत पक्के हैं न! पड़ोसी के घर पर फूटें, उसका असर नहीं होने देते और खुद के घर पर फूट जाएँ, तभी उसका असर होता है, ऐसे पक्के न! लेकिन तब वह मूर्ख बन जाता है! इस दुनिया में जो लोग पक्के कहे गए, वे ही भगवान के वहाँ मूर्ख बने। इस दुनिया में जो भोले कहलाए, वे भगवान के वहाँ सच्चे माने गए! और यहाँ पर जो पक्के रहे, वे भगवान के वहाँ मारे ही गए समझो! ऐसी बात कहता हूँ, तो सुनना अच्छा लगता है न? या फिर आपका समय बिगड़ रहा है?

नासमझी, दो नुकसान लाए!

प्रश्नकर्ता : ना, ना। यह सब बातें तो समझने जैसी हैं।

दादाश्री : यानी यह जो ममता है, वही सब झंझट करवाती

है। और फिर हिसाब लगाता है, 'कितने लाया था, उसके बाद कितने फूटे, आज कितने फूटे!' अब इसका रिफन्ड क्या तुरंत ही मिल जाएगा उसे? क्यों चिंताएँ कीं, *अजंपा* किया तो उसका फल नहीं मिलेगा? प्याले फूट जाने के बाद आप चिंता करते हो तो, वह पुरुषार्थ किया, तो क्या उसका फल नहीं मिलेगा? उसका फल मिलेगा, जानवर गति में जाने को मिलेगा , यानी एक तो प्याले फोड़े और जानवर गति में जाने की तैयारी की। एक नुकसान में से दो नुकसान उठाता है। इस दुनिया में एक नुकसान में से दो नुकसान कौन नहीं उठाता होगा?

प्रश्नकर्ता : समझ नहीं हो तो एक नुकसान में से दो नुकसान उठाएगा ही न!

दादाश्री : हाँ, यानी प्याले भी गए और चिंता की, वह पुरुषार्थ भी बेकार गया!

प्याले फूटे, फिर भी पुण्य बाँधा!

कोई कहे कि, 'हमें ज्ञान नहीं मिला, समकित नहीं हुआ तो मैं क्या करूँ? मुझे दूसरा नुकसान नहीं उठाना है!' तो मैं उसे कह दूँगा कि, ''एक मंत्र सीख जाओ, कि जब प्याले फूट जाएँ तब बोलना कि, 'भला हुआ छूटा जंजाल। अब नये प्याले लाऊँगा।'' तो उससे पुण्य बंधेगा, क्योंकि चिंता करने की जगह पर उसने आनंद किया, इसलिए पुण्य बंधेगा। इतना ज़रा आ जाए न, तो भी बहुत हो गया! हमें बचपन से ऐसी समझ थी, कभी चिंता की ही नहीं, कुछ हो जाए तब उस घड़ी ऐसा कुछ अंदर आ ही जाता था। ऐसे सिखाने से नहीं आता था, लेकिन तुरंत ही हाज़िर जवाब सब आ ही जाता था।

बात समझने से, समाधि बरते

यानी *उपाधि* में भी समाधि रहे, तब कहा जाएगा कि 'ज्ञानीपुरुष' की बात समझ गया। जब *उपाधि* नहीं हो, तब तो

कुत्ते को भी समाधि रहती है। वह पूरियाँ खाकर सो जाता है तो पूरी रात समाधि ही रहेगी न! जिसे *उपाधि* में समाधि रहे, वह इंसान कहलाता है। *कढ़ापा-अजंपा* लोगों के लिए दुःखदायी नहीं है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे दुःख मानोगे तो दुःख रहेगा।

दादाश्री : नहीं, लेकिन जैसा माने वैसा रहता नहीं है न! दुःख मानें तो दुःख है, वह बात तो सभी जानते हैं लेकिन जगत् में यदि सभी ऐसा ही मानें तब तो कोई दुःख मानेगा ही नहीं न! कई लोग दुःख है, ऐसा मानने को तैयार ही नहीं होते, फिर भी दुःख नहीं मिटते न!

[८]

सावधान जीव, अंतिम पलों में
परभव की गठरियाँ समेट न!

एक अस्सी साल के चाचा थे, उन्हें अस्पताल में भर्ती किया था। मैं जानता था कि ये दो-चार दिन में जानेवाले हैं यहाँ से, फिर भी मुझसे कहने लगे कि, 'वे मगनभाई तो मुझसे यहाँ मिलने भी नहीं आए।' हमने बताया कि, 'मगनभाई तो आ गए।' तो कहने लगे कि, 'उस नगीनदास का क्या?' यानी कि बिस्तर में पड़े-पड़े *नोंध* (द्वेषसहित लंबे समय तक याद रखना) करते रहते थे कि कौन-कौन मिलने आया। अरे, अपने शरीर का ध्यान रख न, अब दो-चार दिनों में तो जाना है। पहले तू अपनी गठरियाँ संभाल, तेरी यहाँ से ले जाने की गठरियाँ तो जमा कर। ये नगीनदास नहीं आए तो उसका क्या करना है? लेकिन फिर वे चाचा ऐसी *नोंध* करते रहते हैं कि, 'मुझसे कौन-कौन मिलने आया?' अरे, तुझसे मिलने आए उससे तुझे क्या फायदा? वे मिलने के बाद वापस बाहर जाकर क्या कहेंगे? कि, 'अब ये चाचा तो चले, अब दो दिन के मेहमान हैं!' ये लोग कैसे आशीर्वाद देकर जाते हैं कि 'ये अब गए'! यानी कि मिलने आनेवाले ऐसा कहते हैं। ये तुझसे मिलने आए उससे क्या फायदा हुआ? इसके बजाय नहीं आएँ तो अच्छा है न, ताकि ऐसे आशीर्वाद तो नहीं दें? मिलने आनेवाले बाहर जाकर क्या कहते हैं कि, 'अब, दीये में तेल खत्म हो गया है और अब तो बाती ही जल रही है।' जबकि चाचा क्या कहते हैं कि, 'वे नगीनभाई मिलने नहीं आए!' जगत् की

वासना कितनी है! अब ये ममता छूट जाए तो निबेड़ा आ जाए, लेकिन जब तक ममता नहीं छूटेगी तब तक तो प्याला फूटते ही कान लगाकर सुनता है। अरे, आधी नींद में हो तब भी कहेगा कि, 'क्या फूटा अंदर?' यों चार दिन बाद जानेवाले हों, फिर भी आज कलह करते हैं! अरे, जाने का समय आ गया है तो तेरे गठरी-बिस्तर बाँध! तेरे साथ जाने के लिए राहखर्च नहीं चाहिए? लेकिन इतनी समझ होती तो यह सब कलह करता ही नहीं न! लेकिन समझ नहीं है इसलिए इस जंजाल में ही फँसता रहता है वापस!

लोग तो, जब कोई बीमार पड़ जाए, तब लोग उससे मिलने जाते हैं। अब, इस देह में बीमारी हुई हो, उसकी वेदना हो और फिर वापस लोग जवाब पूछने आएँ, उसकी मुश्किल हैं! कुछ लोगों को तो तभी संतोष होता है जब सभी मिलने आएँ। बल्कि कुछ तो ऐसा कहते हैं कि, 'नवनीतभाई मुझसे मिलने नहीं आए थे।' कुछ लोगों को तो तभी संतोष होता है जब सभी मिलने आएँ, वे लोग अलग हैं और कुछ को बॉदरेशन होता है, वो लोग अलग। हमें ऐसा होता है कि किसी को तकलीफ नहीं पड़े इसलिए किसी को जानने ही न दूँ, जबकि लोग तो मृत्युशैय्या पर पड़े हुए हों, फिर भी 'वे नगीनभाई मुझसे मिलने नहीं आए' ऐसी *नोंध* रखते हैं। क्योंकि अहंकार है न! आत्मा और अहंकार दोनों अलग चीज़ें हैं। अहंकार, वह रोंग बिलीफ से उत्पन्न हो चुकी चीज़ है। खुद के स्वरूप का भान नहीं होने से 'मैं यह हूँ, मैं यह हूँ,' ऐसा सिर्फ इफेक्ट ही है। अब वह अहंकार जो खड़ा हो चुका है, फिर कैसे छूट सकता है? जाने का समय हुआ तब भी कहेंगे कि, 'फलाने भाई मुझसे मिलने नहीं आए।' उसकी *नोंध* रखता है। अब इसका तो कैसे पार आए? और जो मिलने आते हैं, वे बाहर निकलकर क्या कहते हैं कि, 'अब ये एक-दो दिन के मेहमान हैं।' उनके आत्मा को ही देखने में फायदा है। बाकी का सारा पागलपन देखने जैसा नहीं है।' पागलपन में क्या कह दे,

वह कहा नहीं जा सकता। यह तो, सिर्फ ये लोग (महात्मा) प्रार्थना करते हैं। बाहरवाले कहीं प्रार्थना करते हैं? बाहरवाले तो 'अब उम्र हो गई है, इसलिए अब ठिकाना नहीं' ऐसा कहते हैं। वे तो ऐसा भी कहते हैं और वैसा भी कहते हैं। उसमें उनका क्या दोष? जगत् व्यवहार है न! वे तो कुछ भी कह सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य जब अंतिम घड़ी में हो, तब उसे क्या-क्या विचार आते हैं? क्या-क्या दिखता है?

दादाश्री : मरते समय पूरी ज़िंदगी का सार देखता है, बहियाँ नहीं पढ़ता। बहियाँ यानी बहीखाते नहीं और हर रोज़ का हिसाब भी नहीं। वे दोनों नहीं पढ़ता। उन दोनों को पढ़ने में तो बहुत टाइम लगेगा और यह तो एक घंटे में पूरा कर देना पड़ता है। सार, पूरी ज़िंदगी का सार अंतिम घंटे में देख लेता है और उस सार के अनुसार उसका अगला जन्म होता है।

यदि पूरी ज़िंदगी में भक्ति का सार अच्छा हो, सत्संग का सार अच्छा हो, तो वह सार बड़ा हो तो अंतिम घंटे में चित्त ज़्यादा से ज़्यादा उसी में रहेगा। विषयों का सार बड़ा हो तो मरते समय उसका चित्त विषय में ही जाएगा। किसी को बेटे-बेटी पर मोह हो तो अंतिम घड़ी में चित्त उसी में रहेगा।

एक सेठ की मृत्यु का समय आ गया, वे हर प्रकार से अमीर थे। बेटे भी चार-पाँच। उन्होंने कहा, 'पिता जी अब नवकार मंत्र बोलिए।' तब पिता जी ने कहा कि, 'ये बेअक़्ल हैं। अरे, क्या मैं नहीं जानता कि यह बोलना है? मैं अपने आप बोलूँगा। तू वापस मुझे बार-बार कह रहा है?' तो बेटे भी समझ गए कि पिता जी का चित्त अभी कहीं ओर भटक रहा है। फिर सभी बेटों ने सार निकाला कि किसमें भटक रहा है। हमें पैसों का दुःख नहीं है, और कोई अड़चन नहीं है, लेकिन तीन बेटियों की शादी करनी थी उनमें से एक छोटी बेटी रह गई थी। तो सेठ का चित्त छोटी बेटी में था कि मेरी इस बेटी की शादी

करनी रह गई, तो अब इसका क्या होगा? बेटे वह समझ गए, इसलिए छोटी बहन को खुद को भेजा, वह कहने लगी, 'पापा जी, मेरी कोई चिंता मत करना, आप अब नवकार मंत्र बोलिए।' तब पापा जी ने उससे तो कुछ नहीं कहा, लेकिन मन में ऐसा समझे कि, 'अभी तो यह बच्ची है न, यह क्या समझेगी?' अरे, जाने का समय हुआ तो सीधा रह न! अभी घंटे-दो घंटे में जाना है, तो बेटी जो कह रही है वह कर न! नवकार मंत्र बोलने लग न! लेकिन क्या हो? नवकार कैसे बोले? क्योंकि उसके कर्म उसे सीधा नहीं रहने देते, उसके कर्म उस घड़ी घेर लेते हैं!

अतः अभी जो कुछ कर रहे हैं, वह मृत्यु के समय एक गुंठाणे (४८ मिनट) तक आकर खड़ा रहेगा। अपने आप ही आकर खड़ा रहेगा। जो-जो पूरी ज़िंदगी किया है उसका सार उस समय आकर खड़ा रहेगा। अभी जो हाज़िर है, वही मृत्यु के समय हाज़िर। अभी संसार हाज़िर है तो मृत्यु के समय भी संसार हाज़िर, अभी शुद्धात्मा हाज़िर है तो मृत्यु के समय भी शुद्धात्मा हाज़िर। यानी मृत्यु के समय पूरी ज़िंदगी का फल आता है, कुछ भी करना नहीं पड़ता। हमें खुद याद नहीं रखना है, वह तो अपने आप ही परिणाम आएगा। जैसे अभी परीक्षा दें और फिर रिज़ल्ट आता हैं न, उसके जैसा है।

मनुष्यजीवन की क़ीमत कब पता चलती है? अंतिम घंटे में। तब, 'यह रह गया है, यह कर लूँ, वह रह गया है,' ऐसा होता रहता है, तब समझ में आता है कि मनुष्य जन्म की बहुत क़ीमत है!

अंत समय में स्वजनों की देखभाल

प्रश्नकर्ता : किसी स्वजन का अंत समय नज़दीक आया हो, तो उनके प्रति आसपास के सगे-संबंधियों का बरताव कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : जिनका अंत समय नज़दीक आया हो, उन्हें तो बहुत संभालना चाहिए। उनका प्रत्येक बोल संभालना चाहिए। उन्हें नकारना नहीं चाहिए। सभी को उन्हें खुश रखना चाहिए और वे उल्टा बोलें तब भी आपको 'एक्सेप्ट' करना चाहिए कि 'आपका सही है!' वे कहें, 'दूध लाओ।' तो तुरंत दूध ला देना। तब वे कहें, 'यह तो पानीवाला है, दूसरा ला दो।' तो तुरंत दूसरा दूध गरम करके ले आएँ। फिर कहना कि, 'यह शुद्ध और अच्छा है।' यानी उन्हें जैसा अनुकूल आए वैसा करना चाहिए। ऐसा सब बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी इसमें सही-गलत का झंझट नहीं करना चाहिए?

दादाश्री : यह, सही-गलत तो दुनिया में होता ही नहीं है। उन्हें पसंद आया कि बस, उसी तरह सब करते रहना चाहिए। उन्हें अनुकूल आए उस तरह से व्यवहार करना चाहिए। छोटे बच्चे के साथ हम किस तरह बर्ताव करते हैं? बच्चा काँच का प्याला फोड़ दे तो क्या हम उसे डाँटते हैं? दो साल का बच्चा हो उसे कुछ कहते हैं कि क्यों फोड़ दिया तूने या ऐसा कुछ? जिस तरह बच्चे के साथ बर्ताव करते हैं, उसी तरह उनके साथ बर्ताव करना चाहिए।

ये तो मर जाने के बाद उन पर फूल चढ़ाते हैं। अरे, मरने के बाद क्यों फूल चढ़ा रहे हो? अरे, जब वह जीवित है, तब फूल चढ़ाओ न! क्योंकि भीतर भगवान हैं, भीतर आत्मा बैठा हुआ है। लेकिन जीते जी तो कभी भी कोई फूल नहीं चढ़ाता न? इसी को दूषमकाल कहते हैं! हिताहित का भान या खुद का हित किसमें है और अहित किसमें है, मनुष्य में इसका भान ही खत्म हो जाए, उसे कहते हैं दूषमकाल!

गति-परिणाम कैसे?

प्रश्नकर्ता : हार्ट फेल हो जाए, वह तो ऊपर पहुँच जाता है, लेकिन ज़रा शांति से ऊपर जाए, ऐसा कोई रास्ता है?

दादाश्री : ये सब पहुँच जाते हैं, वे किसके घर जाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : कहाँ जाते होंगे, वह किसे खबर? लेकिन शांति से जाना चाहिए।

दादाश्री : ऐसा है, कि यहाँ मरते समय दु:ख रहे तो वहाँ तो जन्म लेते ही एक घंटा भी दु:ख रहित नहीं बीतेगा। वह मरते समय दु:खी था, उसके बाद मर गया यानी कि दु:ख उसका चला नहीं गया, दु:ख तो वह साथ में ले गया। दु:ख तो देह का गया कि देह छूट गई, लेकिन उससे कहीं छुटकारा नहीं हो जाता, भटकते रहना पड़ता है।

अरे! मौत ही हो रही है

लोग तो शोर मचाते हैं। अरे, कर्म बदल रहे हैं, तू क्यों शोर मचा रहा है? बदलेगा कौन? कर्म बदलेंगे। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सबकुछ बदलते ही रहते हैं, उसमें खुद शोर मचाता हैं कि, 'मेरा यह था और मेरा यह चला गया, मेरा यह रह गया,' बिना बात के शोर मचाता है! यह जगत् निरंतर बदलता रहता है। इस शरीर में, बाहर सब ओर, व्यापार में और दूसरी सभी जगहों पर निरंतर बदलाव होता ही रहेगा। यह शरीर भी प्रतिक्षण मर रहा है, लेकिन लोगों को क्या, क्या कुछ पता हैं? लेकिन लोग तो, जब लकड़ी के दो टुकड़े हो जाएँ और नीचे गिर जाएँ, तब कहते हैं कि, 'कट गया।' अरे, यह कट ही रहा था। यह आरी चल ही रही थी। आरी लगाई तभी से हम नहीं कहते कि यह लकड़ी दो टुकड़ों में कट रही है? उसी प्रकार जन्म से यह आरी चल ही रही है। जन्म से लेकर जब मृत्यु होती है, तब दो टुकड़े अलग हो जाते हैं। गर्भ में आरी नहीं चलती, लेकिन जन्म लेते ही आरी चलनी शुरू हो जाती है। फिर डॉक्टर कहेंगे, 'भाई चले गए हैं।' अत: तब हमें ऐसा कहना चाहिए कि 'दो टुकड़े अलग हो गए।' जब तक वे टुकड़े अलग

नहीं होते, तब तक तो कुछ भी नहीं। और दो टुकड़े हो गए तो कहेगा, 'कट गया।' लेकिन भाई, यह तो कट ही रहा था। उसी तरह इन लोगों में भी यह सब कट ही रहा है। फिर भी है किसी को कोई डर? लेकिन जब अलग हो जाएगा, उस दिन डर लगेगा!

स्मशान तक का साथ

यह तकिया होता है, तो उसकी खोल बदलती रहती है, लेकिन तकिया वही का वही। खोल फट जाती है और बदलती रहती है, उसी प्रकार यह खोल भी बदलती रहेगी।

प्रश्नकर्ता : तो फिर लंबे जीवन की अपेक्षा किसलिए रखते होंगे?

दादाश्री : वही भ्रांति है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर घर के लोग आप से कहते हैं कि, वे भाई बहुत 'सिरियस' हैं, ज़रा विधि कर लीजिए, वह भी भ्रांति ही है न?

दादाश्री : वह भी भ्रांति ही है, लेकिन ऐसा है न, कुछ तो व्यवहार से करना पड़ता है और वैसा नहीं कहेंगे तो वे भाई क्या कहेंगे घर के सब लोगों से कि, 'आपने कुछ किया नहीं, आपको मेरी पड़ी ही नहीं है।' और ऐसा-वैसा कहेंगे। यानी ऐसे, विधि करवानी पड़ती है।

वर्ना यह जगत् पोलम्पोल है। फिर भी व्यवहार से नहीं बोले तो उसके मन में दु:ख होगा, लेकिन स्मशान में उसके साथ जाकर कोई भी चिता में नहीं गिरा है। घर के सभी लोग वापस आते हैं। सभी समझदार हैं। उसकी माँ हो तो वह भी रोती-रोती वापस आती है।

प्रश्नकर्ता : फिर उसके नाम से छाती कूटती है कि कुछ

भी रखकर नहीं गए और दो लाख रुपये रखकर गए हों तो कुछ नहीं बोलती।

दादाश्री : हाँ, ऐसा है। ये तो नहीं रख गया इसलिए रोते हैं कि, 'मरता गया और मारता गया।' अंदर-अंदर ऐसा भी बोलते हैं! 'कुछ भी छोड़कर नहीं गया और हमें मारता गया!' अब उसने नहीं रखा, उसमें उसकी पत्नी का नसीब खराब था इसलिए नहीं रखा, लेकिन मृत व्यक्ति के लिए गालियाँ खाना लिखा था तो इतनी-इतनी सुनाते हैं! बड़ी-बड़ी गालियाँ! फिर वापस लोग भी आकर पूछते हैं कि, 'आपके पति कुछ रखकर नहीं गए?' तब वापस ऐसा कहती है कि, 'नहीं-नहीं, सबकुछ रखकर गए हैं। ऐसे तो खाने-पीने का सभी कुछ है।' अब सब के सामने बाहर ऐसा बोलती है और मन में अलग बोलती है! क्या हकीकत है इसके पीछे?

अब लोग जब स्मशान में जाते हैं तो वापस नहीं आते न? या वे सभी वापस आते हैं? यानी यह तो एक प्रकार का फज़ीता है! और नहीं रोए तो भी दुःख और रोए तो भी दुःख! बहुत रोए तब लोग कहते हैं कि, 'लोगों के वहाँ नहीं मर जाते कि आप इतना रो रहे हो? कैसे घनचक्कर हो?' और नहीं रोए तो कहेंगे कि, 'आप पत्थर जैसे हो, हृदय पत्थर जैसा है आपका!' यानी किस ओर चलें, वही मुश्किल! 'सबकुछ तरीके से होना चाहिए,' ऐसा कहेंगे।

वहाँ पर स्मशान में जलाएँगे भी सही और पास के होटल में बैठे-बैठे चाय-नाश्ता भी करेंगे। इस तरह नाश्ता करते हैं न लोग?

प्रश्नकर्ता : अरे, नाश्ता लेकर ही जाते हैं न!

दादाश्री : ऐसा! क्या बात कर रहे हो? यानी यह जगत् तो सारा ऐसा है! ऐसे जगत् में किस तरह रास आए?

...ऐसा कुछ कर

कबीर साहब ने ऐसा कहा है कि, 'जब तेरा जन्म हुआ तब तू रो रहा था और लोग हँस रहे थे।' सभी को आनंद होता है, पेड़े ले आते हैं और लोगों को पेड़े बाँटते हैं, और लोग पेड़े खाते हैं! सही कहते हैं न, कबीर साहब? क्योंकि जब तू रो रहा था तब किसीने ऐसा नहीं कहा कि, 'यह बच्चा बेचारा रो रहा है, अभी यह सब कुछ समय के लिए रहने दो,' फिर कबीर साहब क्या कहते हैं कि, 'अब दुनिया में आकर ऐसा कुछ कर कि मरते समय तू हँसे और लोग रोएँ!' ऐसा कैसे हो सकेगा?

प्रश्नकर्ता : अच्छे कर्म किए होंगे तो ऐसा होगा।

दादाश्री : हाँ, लोगों के प्रति बहुत अच्छे कर्म किए होंगे तो लोगों के मन में ऐसा होगा कि, 'अरेरे! इनके आधार पर तो हम जी रहे थे, आनंद भोग रहे थे।' इसीलिए तो फिर लोग रोते हैं। जिनका आधार चला जाए वे सब रोते हैं और जानेवाला जानता है कि मेरा जीवन संतोषपूर्वक बीता है। उन्हें बेहद संतोष रहता है, इसलिए हँसते-हँसते जाते हैं!

कल्पांत की जोखिमदारी कितनी?

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित' की बात की, तो वह 'व्यवस्थित' कौन सी शक्ति है?

दादाश्री : वह 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है। उसे हम गुजराती में 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं और वह निरंतर जगत् को 'व्यवस्थित' ही रखती है, अव्यवस्थित होने ही नहीं देती। एकलौता बेटा मर जाए, तब भी 'व्यवस्थित' के हिसाब से ही होता है, लेकिन यह तो अपने लोभ के कारण, अपने स्वार्थ के कारण रोता है। अतः उसे अव्यवस्थित मानता है। जेब कट जाए, वह भी 'व्यवस्थित' ही है, लेकिन फिर स्वार्थ के कारण, लोभ

के कारण शोर मचाता है, नहीं तो रोने से कहीं वापस आएगा क्या? बहुत रोने से क्या बेटा वापस आ जाएगा? क्यों? छह महीनों तक रोता रहे तो?

प्रश्नकर्ता : तब भी नहीं आएगा।

दादाश्री : फिर भी लोगों को कल्पांत करते हुए देखा है न? इसे कल्पांत क्यों कहते होंगे? 'कल्प' के अंत तक भटकेंगे। एक बार ऐसा कल्पांत किया तो 'कल्प' के अंत तक भटकना पड़ेगा, एक पूरे 'कल्प' के अंत तक भटकना पड़ेगा!

लौकिक, 'शॉर्ट' में पूरा करो

बूढ़े चाचा बीमार हों और आपने डॉक्टर को बुलाया, सभी इलाज करवाया, फिर भी चल बसे। फिर शोक प्रदर्शित करनेवाले होते हैं न, वे आश्वासन देने आते हैं। फिर पूछते हैं, 'क्या हो गया था चाचा को?' तब आप कहो कि असल में मलेरिया जैसा लगता था, पर फिर डॉक्टर ने बताया कि यह तो जरा फ्लू जैसा है!' वे पूछेंगे कि किस डॉक्टर को बुलाया था? आप कहो कि फलाँ को। तब कहेंगे, 'आपमें अक्कल नहीं है। उस डॉक्टर को बुलाने की ज़रूरत थी।' फिर दूसरा आकर आपको डाँटेगा, 'ऐसा करना चाहिए न! ऐसी बेवकूफी की बात करते हो?' यानी सारा दिन लोग डाँटते ही रहते हैं! इसलिए ये लोग तो उलटे चढ़ बैठते हैं, आपकी सरलता का लाभ उठाते हैं। इसलिए मैं आपको समझाता हूँ कि लोग जब दूसरे दिन पूछने आएँ तो आपको क्या कहना चाहिए कि भाई, चाचा को ज़रा बुख़ार आया और टप्प हो गए, और कुछ हुआ नहीं था।' तो लोग आगे पूछना बंद कर देंगे। आप कुछ समझदारीवाला बोलोगे तो सीधा रहेगा, नहीं तो आप ऐसे विस्तारपूर्वक कहने जाओगे तो लोग उलझा देंगे और आपको नोच खाएँगे। इसके बजाय, 'बुखार आया और टप' कहा कि पूरा निबेड़ा आ गया!

...खुदा की ऐसी इच्छा

प्रश्नकर्ता : कोई बालक जन्म लेते ही तुरंत मर जाता है, तो क्या उसका सिर्फ उतना ही लेना-देना था?

दादाश्री : जिसका माँ-बाप के साथ राग-द्वेष का जितना हिसाब होता है उतना पूरा हो जाए, तब वह माँ-बाप को रुलाकर चला जाता है, खूब रुलाता है, सिर भी फुड़वाता है, फिर डॉक्टर के पास जाकर दवाई के पैसे खर्च करवाता है। सबकुछ करवाकर बच्चा चला जाता है!

यह अपने बड़ौदा में शुक्करवारी है, यह आप जानते हो न? तो इस शुक्करवारी में से लोग भैंसा लाते हैं, वह हर प्रकार से जाँच-पड़ताल करके उधर से भैंस खरीदकर लाता है। सभी दलालों से पूछता है कि, 'कैसी लग रही है?' तब सभी दलाल कहते हैं कि, 'बहुत अच्छी हैं।' वह भैंस को घर ले जाकर बाँध देता है। तीन दिनों बाद वह मर जाती है। अरे, यह क्या था? यह तो मालिक को पैसे दिलवाकर गई, नहीं तो उसी के वहाँ नहीं मर जाती? ऐसा होता है न? ये सब हिसाब चुकाने हैं। बच्चा जन्म लेकर तुरंत ही मर जाता है, वह सब को रुलाकर जाता है। सभी को फिर ऐसा होता है कि 'इसके बजाय जन्म न लेता तो अच्छा था।'

और जो कुछ पूछना हो वह पूछो। अल्लाह के पास पहुँचने में यदि कोई अड़चन आए, तो वह हमसे पूछो। हम आपकी वह रुकावट दूर कर देंगे।

प्रश्नकर्ता : मेरे बेटे की दुर्घटना में मृत्यु हो गई, तो उस दुर्घटना का कारण क्या था?

दादाश्री : इस जगत् में जो कुछ आँखों से देखा जाता है, कान से सुना जाता है, वह सब 'रिलेटिव करेक्ट' है, बिल्कुल सच नहीं है वह बात! यह देह भी अपनी नहीं है तो बेटा अपना

कैसे हो सकेगा? यह तो व्यवहार से, लोकव्यवहार से अपना बेटा माना जाता है। वास्तव में वह अपना बेटा नहीं है। वास्तव में तो यह देह भी अपनी नहीं है। यानी कि जो अपने पास रहे, उतना ही अपना और बाकी का सब पराया है। इसलिए यदि बेटे को खुद का बेटा मानते रहोगे तो परेशानी होगी और अशांति होगी! वह बेटा अब गया, खुदा की इच्छा यही है तो उसे अब 'लेट गो' कर लो।

प्रश्नकर्ता : वह तो ठीक है, अल्लाह की अमानत अपने पास थी, वह ले ली!

दादाश्री : हाँ, बस। यह पूरा बाग़ अल्लाह का ही है।

प्रश्नकर्ता : उसकी मृत्यु इस प्रकार से हुई, तो क्या वे हमारे कुकर्म होंगे?

दादाश्री : हाँ, बेटे के भी कुकर्म और आपके भी कुकर्म। अच्छे कर्म हों तो उसका बदला अच्छा मिलता है।

प्रश्नकर्ता : क्या हम अपना दोष ढूँढ सकते हैं कि इस प्रकार का कुकर्म हुआ था?

दादाश्री : हाँ, वह सब पता चल सकता है, उसके लिए सत्संग में बैठना पड़ेगा।

यह अल्लाह का बाग़ है। आप भी अल्लाह के बाग़ में हो और बेटा भी अल्लाह के बाग़ में है। अल्लाह की मरज़ी के अनुसार सब चलता रहता है, उससे संतुष्ट रहना है। अल्लाह जिसमें राज़ी, उसमें हम लोग भी राज़ी! बस, खुश हो जाना है!

प्रश्नकर्ता : तब तो फिर कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

दादाश्री : अल्लाह ने क्या कहा है कि, 'आप चलानेवाले हो तो आप चिंता करो, लेकिन चलाना मुझे है तो आप क्यों चिंता

कर रहे हो?' इसलिए अगर चिंता करते हो तो अल्लाह के गुनहगार बन रहे हो।

प्रश्नकर्ता : यानी जो अल्लाह हैं, और उनकी अल्लाही में हमें दख़ल नहीं करनी चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : दख़ल तो नहीं, लेकिन चिंता भी नहीं करनी चाहिए। हम चिंता करें तो अल्लाह नाखुश हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : जो सवाल पैदा होते हैं, उनके जवाब तो चाहिए न?

दादाश्री : जो सवाल पैदा होता है, उसका जवाब इतना ही है कि अल्लाह कहते हैं कि, 'है मेरा, और तू किसलिए चिंता कर रहा है?' चिंता नहीं करनी है। हमें उनकी सेवा करनी चाहिए, इलाज करवाना चाहिए, अंत तक उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। हम प्रयत्न करने के अधिकारी है, हमें चिंता करने का अधिकार नहीं है।

मृतस्वजनों से साधो अंतर-तार

बेटे के मर जाने के बाद उसकी चिंता करने से उसे दुःख होता है। लोग अज्ञानता से ऐसा सब करते हैं, इसलिए आपको 'जैसा है वैसा' जानकर शांतिपूर्वक रहना चाहिए। बेकार झंझट करने का क्या मतलब है फिर? जहाँ कभी कोई कोई बेटा नहीं मरा हो, ऐसा घर कहीं भी होगा ही नहीं! ये तो संसार के ऋणानुबंध हैं, लेन-देन का हिसाब हैं। हमारे यहाँ भी बेटा-बेटी थे, लेकिन वे मर गए। मेहमान आए थे, वे मेहमान चले गए। वह अपना सामान है ही कहाँ? क्या हमें भी नहीं जाना है? हमें भी जाना है वहाँ, यह क्या तूफ़ान है फिर? यानी जो जीवित हैं उसे शांति दो। गया वह तो गया, उसे याद करना भी छोड़ दो। जो यहाँ जीवित हैं, जितने आश्रित हैं उन्हें शांति दो। उतना अपना फ़र्ज़

है। यह तो जो जा चुके हैं उन्हें याद कर रहे हो और इन्हें शांति नहीं दे सकते, यह कैसा? इस तरह फ़र्ज़ चूक जाते हो सारा। आपको ऐसा लगता है क्या? गया वह तो गया। जेब में से लाख रुपये गिर गए और फिर नहीं मिले तो क्या करना चाहिए? सिर फोड़ना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : भूल जाना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, अतः यह सब नासमझी है। किसी भी तरह से बाप-बेटे हैं ही नहीं। बेटा मरे तो चिंता करने जैसा है ही नहीं। वास्तव में यदि चिंता करनी हो जगत् में तो माँ-बाप मरें, तभी मन में चिंता होनी चाहिए। बेटा मर जाए, तो बेटे का और अपना क्या लेना-देना? माँ-बाप ने तो अपने ऊपर उपकार किया था, माँ ने तो हमें पेट में नौ महीने रखा और फिर पाल-पोसकर बड़ा किया। पिता जी ने पढ़ने के लिए फीस दी है और सबकुछ दिया है। कुछ एहसान मानने जैसा हो तो माँ-बाप का है। बेटे से क्या लेना-देना? बेटा तो ज़ायदाद लेकर गालियाँ देगा। अतः, बेटे के साथ संबंध रखना, लेकिन मर जाए तो इस तरह मन में दुःख मत मनाना। आपको कैसी लग रही है मेरी बात?

यह अपने हाथ का खेल नहीं है और उस बेचारे को वहाँ दुःख होता है। यदि हम यहाँ पर दुःखी होते हैं तो उसका असर उसे वहाँ पर पहुँचता है। तो उसे भी सुखी नहीं रहने देते और हम भी सुखी नहीं रहते। इसी वजह से शास्त्रकारों ने कहा है कि, 'जाने के बाद दुःखी मत होना।' इसलिए लोगों ने क्या कहा कि गरुड़ पुराण रखो, फलाना रखो, पूजा करो और मन में से भूल जाओ। आपने ऐसा कुछ किया था? फिर भी नहीं भूले?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे भूल नहीं पाता। बाप और बेटे के बीच व्यवहार ऐसा था कि अच्छा चल रहा था, इसलिए वह भुलाया जा सके ऐसा नहीं है।

दादाश्री : हाँ, भुलाया जा सके ऐसा नहीं है। लेकिन आप नहीं भूलोगे तो आपको उसका दु:ख रहेगा और उसे वहाँ पर दु:ख होगा। ऐसा अपने मन में उसके लिए दु:ख मनाना, वह एक बाप के तौर पर आपके लिए काम का नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उसे किस तरह दु:ख होगा?

दादाश्री : आप यहाँ पर दु:ख मनाओगे तो उसका असर वहाँ पहुँचे बगैर रहेगा ही नहीं। इस जगत् में तो सबकुछ फोन की तरह है, टेलीविज़न जैसा है यह जगत् और हम यहाँ पर *उपाधि* करें तो वह वापस आ जाएगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : किसी भी तरह से नहीं आएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : दु:खी रहें तो वह उसे पहुँचता है और उसके नाम पर हम धर्म भक्ति करें तो वह भी उसे पहुँचती है और उसे शांति होती है। उसे शांति पहुँचाने की बात आपको कैसी लगती है? और उसे शांति पहुँचाना आपका फ़र्ज़ है न? इसलिए ऐसा कुछ करो न कि उसे अच्छा लगे। एक दिन स्कूल के बच्चों को ज़रा पेड़े खिला दो, ऐसा कुछ करो।

प्रश्नकर्ता : वह सब किया!

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा बार-बार करो। जब भी थोड़ी सुविधा हो, तब पाँच-पचास का ऐसा कुछ काम करो ताकि उसे पहुँचे।

प्रश्नकर्ता : इन भाईसाहब को बेटे के मर जाने का जो दु:ख हो रहा है न, लेकिन मुझे खुद को ऐसा अनुभव हुआ है कि माँ-बाप के गुज़र जाने के बाद मुझे वे कभी भी याद ही

नहीं आए। उनके मरने के पाँच-सात दिनों बाद से कभी याद तक नहीं आई, वह किसलिए?

दादाश्री : आपका इतना अच्छा है, और माँ-बाप भी इतने पुण्यशाली हैं। यदि आपको याद आती तो उन्हें दु:ख होता।

आपको मेरी बात समझ में आ रही है न? इसलिए जब भी याद आए न, तब इतना बोलना कि, 'हे भगवान, यह बेटा आपको सौंपा है!' तब उसका निबेड़ा आएगा।

यानी कि बेटे को याद करके उसके आत्मा का कल्याण हो ऐसा मन में बोलते रहना, आँखों में पानी मत आने देना। आप तो जैन थ्योरीवाले व्यक्ति हों। आप तो जानते हो कि आत्मा के जाने के बाद ऐसी भावना करनी चाहिए कि, 'उनके आत्मा का कल्याण हो। हे कृपालुदेव, उनके आत्मा का कल्याण कीजिए!' उसके बजाय यदि आप मन में ढीले पड़ जाओ, तो वह पुसाएगा ही नहीं। अपने ही खुद के स्वजन को दु:ख में डालें, वह अपना काम नहीं है। आप तो समझदार, विचारशील, संस्कारी लोग हो, इसलिए जब-जब याद आए तब ऐसा बोलना कि, 'उनके आत्मा का कल्याण हो! हे वीतराग भगवान, उनके आत्मा का कल्याण कीजिए!' इतना बोलते रहना।

जब भी आपको बेटे की याद आए, तब उसके आत्मा का कल्याण हो, ऐसा कहना। 'कृपालुदेव' का नाम लेना। 'दादा भगवान' कहोगे तो भी काम होगा, क्योंकि 'दादा भगवान' और 'कृपालुदेव' आत्म स्वरूप से एक ही हैं। देह से अलग दिखते हैं, आँखों से अलग दिखते हैं लेकिन 'वस्तु' के रूप में एक ही हैं। यानी महावीर भगवान का नाम लोगे तब भी वही है। उसके आत्मा का कल्याण हो, निरंतर ऐसी ही भावना करना। जिनके साथ आप निरंतर रहे, साथ में खाया-पीया, तो उसका किस प्रकार से कल्याण हो आपको ऐसी भावना करनी चाहिए। हम लोग औरों के लिए

अच्छी भावना करते हैं, तो अपने खुद के घर के व्यक्ति, उनके लिए क्या कुछ नहीं करेंगे?

अपने यहाँ एक भाई आए थे, उनका एकलौता बेटा था वह मर गया। मैंने उसे पूछा, 'बेटे के घर पर बेटा है या नहीं?' तब कहने लगे, 'है न, अभी छोटा है, लेकिन यह मेरा बेटा तो मर गया न!' तब मैंने कहा, 'आप यहाँ से दूसरे भव में जाओगे तो वहाँ साथ में क्या आएगा?' तब कहने लगे, 'वहाँ तो सबकुछ भूल जाएँगे।' यानी बेटा गया उसकी चिंता नहीं है। यह तो नहीं भूलने की वजह से ही झंझट है! फिर मैंने कहा कि, 'मैं आपको भुलवा दूँ?' तब कहा, 'हाँ, भुलवा दीजिए।' तब मैंने उसे ज्ञान दिया, फिर वह भूल गया। फिर उससे कहा कि, 'अब याद करके देखो।' तो भी याद नहीं आया।

इसलिए, 'दादा भगवान आपको सौंपा' ऐसा बोलना। आपको विश्वास है या नहीं? सौ प्रतिशत विश्वास है या थोड़ा कच्चा है? दादा को सौंप देना न, पूरा हल आ जाएगा!

व्यवहार का मतलब ही लौकिक

बेटा मर जाए तो बाप रोने लगता है। लड़के के मामा से, उसके चाचा से, उन सबसे पूछें कि, 'आप क्यों नहीं रो रहे हैं?' तब कहेंगे, 'ऐसे रोने से कुछ होगा क्या? जो जन्म लेता है, वह मरता ही है न!' देखो न, ये लोग कुछ 'व्यवस्थित' को नहीं जानते? लेकिन आपको तो वह स्वार्थ है कि मेरा बेटा बड़ा होता तो मुझे लाभ होता, वह सब स्वार्थ है। दूसरे लोग रोने नहीं लगते न?

प्रश्नकर्ता : अब, यदि नहीं रोएँ तो समाज में लोग वापस ऐसा कहेंगे कि इसे तो कुछ महसूस ही नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, ऐसा भी बोलते हैं। समाज के लोग तो दोनों

तरफ का बोलते हैं। यदि सोएँ, तो कहेंगे कि, 'ढोंगरा (आलसी) की तरह सो रहा है।' और भागदौड़ करें तब कहेंगे कि, 'पूरे दिन भागदौड़ करता रहता है, कुत्ते की तरह भटकता रहता है।' तब हमें किस ओर रहना? यानी समाज की बात पर इतना अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए, व्यवहारिक रूप से ध्यान देना चाहिए। अपने लिए जितना हितकारी हो उतनी बात पर ध्यान देना चाहिए, दूसरी सभी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस तरह ध्यान देने लगें तब तो अंत ही नहीं आएगा न?

समाज के मन में ऐसा होता है कि यह पत्थर जैसे हृदय का है, तो आप बाथरूम में जाकर आँख में पानी चुपड़कर आ जाना। क्योंकि यह तो लौकिक है। लोग भी नहीं कहते कि, 'लौकिक में आना'? लौकिक अर्थात् बनावटी। लौकिक का अर्थ ही बनावटी, झूठा! रिश्तेदार छाती कूटते हैं, उसी तरह यह भी छाती कूटता है, लेकिन छाती को तोड़ नहीं डालता। ऐसे हाथ पर हाथ ठोकता है। देखो वास्तव में लौकिक करता है न? और सब अपना-अपना याद करके रोते हैं। किसी का छोटा भाई मर गया वह उसे याद करता है, स्त्री अपने पति को याद करके रोती है! अब इस नासमझी का अंत कब आएगा?

ये गाय-भैंसें कहीं रोती नहीं है। उनके भी बेटे मर जाते हैं, बेटियाँ मर जाती हैं लेकिन वे रोते नहीं न! लेकिन ये तो सुधर गए हैं, इसलिए ज़्यादा रोते हैं। गाय-भैंसों में कहीं रोना-धोना होता है कि, 'मेरी बेटी मर गई या मेरा बेटा मर गया?'

मेरा कहना है कि किसी के मरने के बाद यदि आज आप रोओगे, तो शर्त रखो कि, 'भाई, मैं तीन सालों तक रोता ही रहूँगा; उसके बाद रोना बंद करूँगा।' ऐसी कोई शर्त रखो। 'एग्रीमेन्ट' करो। जब स्त्रियाँ भी रोने आएँ तो उन्हें कहते हैं कि, 'शर्त लगाकर फिर रोओ कि तीन सालों तक रोएँगे।' लेकिन यह तो पंद्रह दिनों बाद कुछ भी नहीं! और फिर बल्कि अच्छी साड़ी पहनकर हँस-

हँसकर शादियों में भी जाती हैं! इसका क्या कारण है? अभानता है। अब ऐसे अभान के साथ हम कहाँ रोने बैठें? हमें तो वहाँ पर बस नाटक करना पड़ता है। वहाँ पर हम कहीं हँस नहीं सकते। हँसें तो मूर्ख कहलाएँगे, लेकिन दिखावा तो करना पड़ेगा न? नाटक में जैसे अभिनय करते हैं, वैसा अभिनय करना पड़ेगा। आँखों में से पानी नहीं आ रहा हो तो बाथरूम में जाकर ज़रा पानीवाली आँखें करके आना; लेकिन आप तो भाई नाज़ुक हैं, इसलिए बहुत हुआ। थोड़ा कहते ही आँख में से पानी निकलने लगा।

इस जगत् का सारा खोखलापन मैं देख चुका हूँ, क्योंकि मैं सच्चा पुरुष था। मुझे ऐसा लौकिक रास नहीं आता था। ऐसा लौकिक तो रास आता होगा? रोना मतलब रोना ही आना चाहिए, लेकिन फिर मैंने देखा कि यह जगत् घोटालेवाला है। क्या यह व्यापार सही है? आपको कैसा लगता है? लेकिन फिर यह झूठा भी नहीं है। यह तो लौकिक है। हमें भी वैसा लौकिक ही करना है। लौकिक यानी जैसा व्यवहार लोग अपने साथ करें, वैसा ही हमें भी करना चाहिए। आपको ऐसा लौकिक अच्छा लगता है?

हम जब छाती कूटते हैं तो हल्के हाथ से करते हैं, नहीं तो चोट लगेगी न?

लेकिन लोग कहेंगे कि हमने छाती पीटी। यानी ऐसा है यह व्यवहार। ये लोग रोना-धोना करते हैं, छाती कूटते हैं, उस घड़ी यदि हम उन्हें देखने जाएँ, तो ऐसे कूटते हैं। हमें ऐसा लगता है कि यह अभी छाती तोड़ देगा, लेकिन नहीं तोड़ता, बहुत पक्के लोग हैं! इसी को लौकिक कहते हैं न? उनमें यदि कोई कच्चा हो तो मारा ही जाएगा। लेकिन लौकिक में तो दूसरे दिन उसे सिखानेवाले कोई गुरु मिल जाएँगे कि 'ऐसा तो कहीं करना चाहिए? देख, इस तरह करना चाहिए!' ताकि वह फिर से वैसी भूल नहीं करे। यानी छाती पर ऐसे मारते ज़रूर है, हमें ऐसा दिखता है, लेकिन चोट नहीं लगती उसे। लौकिक यानी व्यवहार। सब रोते

हैं तो हमें भी रोना चाहिए। लेकिन रोए बगैर रोना है, रोना नहीं है। इस लौकिक में बाकी सब समझ में आता है, लेकिन इसमें समझ में नहीं आता। इसमें सचमुच में रोते हैं!

इसमें भी व्यवहार, व्यवहार में है और केवल, केवल में है। सबने अपना-अपना बाँट लिया। फिर झगड़ा ही नहीं न! यह तो, बाँटा नहीं है उसके झगड़े हैं न! जहाँ अपना नहीं है, वहाँ लोग पकड़कर बैठे हैं, लेकिन बेचारे को समझ में नहीं आता और पकड़ लेता है, उसके कारण मार खाता है। और फिर से भार उठाता है और मार खाता है, वह अलग। अरे, तेरे सिर पर बोझ नहीं है, यह भार तो सारा घोड़े पर ही जा रहा है! लेकिन फिर भी सिर पर लेकर घूमता रहता है, ऐसा है यह जगत्।

ऐसा है न, कि व्यवहार सारा दिखावटी है और निश्चय वास्तविक है। अब दिखावटी रकम को क्या हम खत्म कर सकते हैं? ऐसे दिखावटी रकम खत्म नहीं कर देते न? लेकिन इसमें तो दिखावटी को खत्म कर दिया, जहाँ उस दिखावटी को ही सही मान लिया है! यानी बात को समझने की ज़रूरत है।

जब हमारे बड़े भाई गुज़र गए, उस समय हमारी भाभी उम्र में छोटी थीं। तब जो कोई आता, वह उन्हें रुलाता, जो कोई आता वह उन्हें रुलाता! तब मुझे हुआ कि ये भाभी अधिक 'सेन्सिटिव' हैं, तो ये लोग इन बेचारी को मार डालेंगे! इसलिए फिर मैंने बा से कहा कि, 'लोगों से आप ऐसा कहना कि आपको मेरी बहू के साथ मेरे बेटे से संबंधित कोई बातचीत नहीं करनी है।' अरे, यह क्या तूफ़ान? अरे, इंसान होकर बंदर के घाव जैसा करते हो? आप से तो बंदर अच्छे! बंदर तो घाव को बड़ा कर-करके मार डालते हैं! आप कह-कहकर वैसा ही कर रहे हो। तो आप में और बंदर में फर्क क्या रहा? लोगों को रुलाने के लिए आते हो या हँसाने के लिए आते हो? ये तो आश्वासन देने जाना है, उसके बजाय बेचारे को मार ही डालते

हैं! लेकिन जगत् का नियम ऐसा है कि आश्वासन देनेवाला व्यक्ति यदि खुद ही दुःखी हो, तो क्या आश्वासन देगा? वह तो वही देगा जो उसके पास है। इसलिए आजकल लोग दुःखी हैं न! अतः हमें सामनेवाले से ऐसा कहना चाहिए कि कोई व्यक्ति सुखी हो, अंतर के सुखवाला हो तो यहाँ पधारना, नहीं तो यहाँ पर मत पधारना और घर बैठे आश्वासन पत्र लिख देना। बेकार ही इन भूतों का यहाँ पर क्या करना है? भूत तो आकर बल्कि बेचारे को रुलाते हैं।

अपने वहाँ पर 'काण काढ़ो (किसी मृत्यु पर रोना-धोना करना), लौकिक करो' कहते हैं। 'काण करो, मोंकाण करो।' वह किसलिए? कि ऐसा करके सबकुछ ठंडा कर दो। ये रो रहे हैं, तो उनकी सारी भावनाएँ निकल जाने दो, कहेंगे। आँसू नहीं निकलेंगे तो इंसान पागल हो जाएगा, इसलिए रोने देना पड़ता है। रोने में भी ओब्स्ट्रक्ट नहीं करना चाहिए और हँसने में भी ओब्स्ट्रक्ट नहीं करना चाहिए, नहीं तो इंसान पागल हो जाएगा। अपने यहाँ पर जो होता है वह ठीक ही होता है, फिर भी अब अपने यहाँ चिल्लाकर रोना-धोना वगैरह सब बंद हो गया है। लोग समझ गए कि इन बातों में कोई सार नहीं है। और मेमसाहब भी समझ गईं कि, 'छोड़ो न, जो गए वे थोड़े ही वापस आएँगे? लेकिन बैंक में तीस हज़ार रखकर गए हैं न!' यानी कि ये सब स्वार्थ के संबंध हैं। इनमें कुछ ही जगहों पर अंदर अच्छी भावनाएँ होंगी, लेकिन बहुत कम जगह पर। मूल संस्कार बहुत कम जगह पर बचे होंगे; बाकी तो सबकुछ स्वार्थ में, मतलब और मतलब में ही घुस गया है।

मृत्यु निश्चित है फिर भी...

प्रश्नकर्ता : घर में कोई मर जाए तो उसके बाद सिर मुँडवाते हैं। उसका कोई कारण होगा न?

दादाश्री : गाँववालों को कैसे पता चलेगा कि इनके पिता

जी मर गए हैं? इसलिए वह सिर मुँडवा देता है, मूँछ निकलवा देता है, ताकि लोग जान जाएँ कि इनके घर में किसी की मृत्यु हुई है, इसलिए फिर 'चल मेरे साथ शादी में' ऐसी-वैसी बातें नहीं करें। ये तो हिन्दुस्तान के रिवाज़ हैं। किसी न किसी आशय के बिना तो होंगे ही नहीं न! उसने सिर मुँडवाया हो, फिर क्या कोई पूछेगा कि, 'तेरे पिता जी की तबियत कैसी है?' नहीं, क्योंकि सिर मुँडवा लिया तो फिर समझ जाते हैं। कुछ पहचानने का साधन तो चाहिए या नहीं चाहिए?

प्रश्नकर्ता : इस हिसाब से तो जैन धर्म में ऐसा कोई झंझट नहीं है।

दादाश्री : धर्म का और उसका क्या लेना-देना? ये मूछे फ्रेंचकट रखनी या पूरी निकलवा देनी, उसका और धर्म का कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थी निकालने के बाद राम का नाम या जय जिनेन्द्र क्यों बोलते हैं?

दादाश्री : तब फिर क्या बोलें? नाम तो चला गया। उसका कुछ अच्छा हो इसलिए जय जिनेन्द्र बोलते हैं या राम का नाम बोलते हैं कि 'राम बोलो भाई राम!' लोगों का रिवाज़ तो ऐसा है कि मर जाने के बाद पूजा करते हैं, ऐसे हैं लोग! वह जब जीवित था, तब अगर खिचड़ी में घी माँगे तो कहेंगे, 'घी माँग रहे हो? अभी इस बुढ़ापे में?' और मर जाने के बाद 'फर्स्टक्लास' बारहवाँ करते हैं! वह जीते जी, यदि राम का नाम ले, तब घर के लोग परेशान करेंगे, कहेंगे कि, 'जाओ, उठकर चुपचाप चीनी लेकर आओ। यहाँ क्या राम-राम कर रहे हो?' यानी राम की भक्ति नहीं करने देते, और जब मरने का समय आए तो अंतिम घंटे में, अंतिम गुँठाणा हो और पूरे कषायों ने घेर लिया हो, तब लोग कान में चिल्लाते हैं कि, 'बोलो, राम बोलो,' अरे अब कहाँ से बोलेगा वह? अरे, बिना बात उसे किसलिए परेशान कर रहे

हो? उस बेचारे को उस घड़ी बहुत खराब लगता है। अंदर बेहद दुःख होता है। अंदर ऐसा 'लाउड स्पीकर' जैसा लगता है और जीव डर जाता है! अरे, मत बोलना, मरने तो दो उसे अच्छी तरह, लेकिन ये लोग उसे ठीक से मरने भी नहीं देते। गाड़ी में से उतरते समय हम उसे कहें कि, 'कैसे हो? मज़े में हो? तबियत अच्छी है?' तो बल्कि पोटली मारेगा। अरे, उतरने दे न!

हमारे फादर की तबियत अच्छी नहीं थी, इसलिए हमारे बड़े भाई मणिभाई ने मुझसे कहा कि, 'तू काम पर रह, मैं फादर की तबियत पूछकर आता हूँ।' फिर वे भादरण चले गए। थोड़ी देर बाद फिर मुझे यों ही विचार आया कि, 'मैंने तो सब को काम सौंप दिया है। लाओ न मैं भी तबियत पूछकर आऊँ।' उसके बाद मैं तो चल पड़ा और गाड़ी में बैठ गया। रास्ते में मणिभाई मिल गए, वे बोरसद से आ रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि, 'अरे, तू आ गया?' मैंने कहा, 'हाँ, मुझे भीतर से विचार आया कि जाऊँ। तो मैं सभी को काम सौंपकर आ गया हूँ।' तब उन्होंने मुझसे कहा, 'तो अब तू घर जा और मैं अब वापस काम पर जाता हूँ।' मैं पिता जी के पास आया तो उन्होंने उसी रात जाने की तैयारी कर दी। तब तक वे रुके हुए थे। यानी जिसके कँधे पर चढ़ना हो उसी के कँधे पर चढ़कर जाते हैं।

फिर भी कुदरत छुड़वा ही देती है

इतना अच्छा है कि हिन्दुस्तान देश में मरनेवाले को यह भय नहीं है कि कौन उठाएगा। इतना अच्छा है, नहीं तो उन्हें उठाए कौन? ये ऐसे-ऐसे कार्य करनेवाले, तो उन्हें उठाए कौन? लेकिन नहीं, उन्हें भी उठानेवाले मिल आते हैं। मरनेवाले को भय नहीं रहता कि कौन उठाएगा, क्योंकि मरनेवाला जानता है कि आप नहीं उठाओगे तो आपकी ही हवा बिगड़ेगी और आपको ही नुकसान होगा। इसलिए आप अपने आप ही साफ करो, हम तो 'यह' ज़ायदाद छोड़कर चले जाएँगे। ये तो, ज़ायदाद छोड़ें ऐसे नहीं हैं,

कुदरत छुड़वा देती है।

प्रश्नकर्ता : जीव को शरीर के प्रति माया है न?

दादाश्री : शरीर के प्रति माया नहीं, उसे यह दूसरी माया है। इन आँखों से सबकुछ दिखता है। यह मेरा बेटा, यह मेरे बेटे का बेटा। उसकी बहुत माया है। और उसे बेटे का बेटा दिखे, 'बेटा, यहाँ आ, यहाँ आ,' करता है। जब तक उसे आँखों से दिखता है, तब तक यह सब बहुत अच्छा लगता है। हम कहें कि, 'चाचा, अभी भी माया नहीं जा रही?' तब कहेंगे कि, 'नहीं भाई, अभी तो जब तक आँखों से दिख रहा है, तब तक अच्छा है।' हम कहें, 'चाचा, ये पैर टूट गए हैं, हाथ टूट गए हैं, खाया नहीं जाता, फिर भी?' तब चाचा कहते हैं, 'नहीं, अभी जब तक आँखों से दिख रहा है, तब तक अच्छा है!' जाने की इच्छा किसी को नहीं होती।

लेकिन कुदरत का नियम ऐसा है कि किसी भी इंसान को यहाँ से ले जाया नहीं जा सकता, मरनेवाले के हस्ताक्षर के बिना उसे यहाँ से नहीं ले जाया जा सकता। लोग हस्ताक्षर करते होंगे क्या? ऐसा कहते हैं न कि, 'भगवान, यहाँ से चला जाऊँ तो अच्छा।' अब वह ऐसा क्यों बोलता है? वह आप जानते हो? भीतर कोई ऐसा दुःख होने लगे, तो फिर दुःख के मारे बोलता है कि, 'अब यह देह छूटे तो अच्छा।' उस घड़ी हस्ताक्षर कर देता है और वापस सुबह जब ठीक हो जाता है तब हम कहें कि, 'चाचा, रात को तो आप कह रहे थे न कि यहाँ से चला जाऊँ तो अच्छा।' तब वे कहते हैं कि, 'नहीं, लेकिन अब अच्छा है।' देखो! रात को हस्ताक्षर कर दिए और सुबह फिर पलट गए न चाचा? जब हस्ताक्षर कर दिए तभी से मैं समझ गया कि इनका अब दस या पंद्रह दिनों का ही मुकाम है। हस्ताक्षर के बिना तो किसी को भी नहीं ले जा सकते। ये जितने जीव मरे हैं न वे सभी हस्ताक्षर सहित मरते हैं। वर्ना ये लोग तो दावा करेंगे

कि, 'मेरे हस्ताक्षर के बिना आप क्यों ले गए?' ये लोग बाद में अर्ज़ी नहीं देते? और यह सरकार भी कहती है, 'हस्ताक्षर के बिना किसी को कुछ बेचना-करना नहीं, यदि बेचोगे तो आपकी ज़िम्मेदारी।' हस्ताक्षर कर दे तो कोई कुछ नहीं कह सकता। वर्ना हस्ताक्षर के बिना तो ये लोग टेढ़ा बोलेंगे क्योंकि मूलतः स्वभाव तो टेढ़ा ही है न!

पूरा जगत् स्वतंत्र है, कोई भी व्यक्ति परतंत्र नहीं है। यह जो परतंत्रता है, वह खुद की भूलों का परिणाम है। ब्लंडर्स एन्ड मिस्टेक्स। उन दोनों से ही बंधे हुए हो, वर्ना और कोई बाँध सके, ऐसा नहीं है, क्योंकि कोई किसी का *ऊपरी* है ही नहीं, ऐसा स्वतंत्र है यह जगत्! मेरा भी कोई *ऊपरी* नहीं है न! और मुझे तो अनुभव में बर्तता है कि मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है। और आपका भी कोई *ऊपरी* नहीं है। आपका *ऊपरी* कौन? आपके ब्लंडर्स और आपकी भूलें।

आत्महत्या छुटकारा नहीं दिलवाती

प्रश्नकर्ता : मुझे आत्महत्या करने के खूब विचार आते हैं, तो क्या करूँ?

दादाश्री : आप क्यों आत्महत्या करो?

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा नहीं बैठती।

दादाश्री : किस पर?

प्रश्नकर्ता : कोई सज्जन या आपके जैसे कोई रास्ता बताएँ तो श्रद्धा नहीं बैठती।

दादाश्री : अच्छा! रोज़ क्या खाता है?

प्रश्नकर्ता : रोटी और सब्ज़ी।

दादाश्री : वह पसंद है या जलेबी-लड्डू चाहिए? तू शादीशुदा है? तो क्या पत्नी तुझे डाँटती नहीं है? तो फिर तुझे क्या दु:ख आ पड़ा है कि आत्महत्या करनी है?

प्रश्नकर्ता : सामाजिक और आर्थिक, दो ही दु:ख हैं। तबियत अच्छी नहीं रहती।

दादाश्री : बच्चे हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बच्चे हैं।

दादाश्री : वे बच्चे जब बड़े होंगे तब तेरी सेवा करेंगे, ज़िंदा रह न चुपचाप! वहाँ पर कुछ नहीं मिलेगा, वहाँ तो वे प्रेत भी बेचारे बहुत दु:खी हो गए हैं! मुझे मिलते हैं कुछ प्रेत, जिन्होंने आत्महत्या की थी! बेचारों का शरीर नहीं होता, भूख लगे तब उन्हें किसी के शरीर में घुस जाना पड़ता है। यहाँ तो चैन से खाना, पीना और पत्नी के साथ घूमना न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन खाने-पीने के लिए आर्थिक परिस्थिति भी चाहिए न?

दादाश्री : अरे, ज़रा मेहनत कर। आज तुझे पूरा रास्ता बता देंगे। फिर धीरे-धीरे तेरा सभी कुछ सुधर जाएगा। एकदम से नहीं सुधरेगा, लेकिन सुधरेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा सुना है कि आत्महत्या के बाद सात जन्मों तक वैसा ही होता है। यह बात सच है?

दादाश्री : जो संस्कार पड़ते हैं, वे सात-आठ जन्मों के बाद जाते हैं, यानी ऐसा कोई गलत संस्कार मत पड़ने देना। गलत संस्कारों से दूर भागना। हाँ, यहाँ चाहे जितना दु:ख हो, उसे सहन कर लेना, लेकिन गोली मत मारना। आत्महत्या मत करना। बड़ौदा शहर में आज से कुछ साल पहले सभी से कह दिया था कि आत्महत्या करने का मन हो, तब मुझे याद करना और मेरे पास

आना। ऐसे लोग होते हैं न, जोखिमवाले लोग, उनसे कह रखा था। वे फिर मेरे पास आते थे और उन्हें समझा देता था। दूसरे दिन से आत्महत्या के विचार बंद हो जाते थे। १९५१ के बाद सभी को खबर दे दी कि जिस किसी को आत्महत्या करनी हो तो मुझसे मिलकर जाए और फिर करे। कोई आए कि मुझे आत्महत्या करनी है, तो उसे मैं समझा देता हूँ, आसपास के 'कॉज़ेज़,' 'सर्कल' आत्महत्या करने जैसा है या नहीं, सबकुछ उसे समझा देता हूँ और उसे वापस मोड़ लेता हूँ।

यह तो बिना बात के। किसलिए आत्महत्या करनी है? आत्महत्या क्यों करनी है? तू खुद ही भगवान है। बिना बात तुझे आत्महत्या करने की ज़रूरत ही क्या है? लेकिन देखो न किसीने ऐसा कहा ही नहीं न! यह, जैसा मैं कह रहा हूँ, वैसा किसीने उसे कहा ही नहीं, लेकिन वास्तव में हकीकत ऐसी ही है न!

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति आत्महत्या करे तो उसकी क्या गति होती है? भूतप्रेत बनता है?

दादाश्री : आत्महत्या करने से तो प्रेत बनते हैं और प्रेत बनकर तो भटकना पड़ेगा। आत्महत्या करके बल्कि परेशानियाँ मोल लेता है। एक बार आत्महत्या करे तो उसके बाद कितने ही जन्मों तक उसके प्रतिस्पंदन आते रहते हैं! और ये जो आत्महत्या करते हैं न वे कोई नये लोग नहीं हैं, पिछले जन्म में आत्महत्या की हुई होती है उसके प्रतिस्पंदन के कारण करते हैं। आज आत्महत्या करते हैं, वह तो पहले की हुई आत्महत्या के कर्म का फल आता है। इसलिए खुद अपने आप ही आत्महत्या करता है। ऐसे प्रतिस्पंदन डले हुए होते हैं कि वह वैसा ही करता हुआ आता है। इसलिए खुद अपने आप ही आत्महत्या करता है और आत्महत्या के बाद अवगतिवाला जीव भी बन सकता है। अवगतिवाला जीव अर्थात् बिना देह के भटकता है। भूत बनना आसान नहीं है। भूत तो देवगति का अवतार है, वह आसान चीज़ नहीं है। भूत तो,

अगर यहाँ पर कठोर तप किए हों, अज्ञान तप किए हों तब भूत बनता है, जबकि प्रेत अलग चीज़ है।

हर एक के लिए सबसे प्रिय चीज़ क्या है? खुद की जान प्रिय है। मान से भी अधिक जान प्रिय है। मान की भी नहीं पड़ी, क्रोध की भी नहीं पड़ी, लोभ की भी नहीं पड़ी। खुद का जीव प्रिय है, फिर भी देखो न, लोग आत्महत्या करते हैं न! जीव प्रिय है फिर भी लोग आत्महत्या नहीं करते? आत्महत्या क्यों करते होंगे? उन्हें क्या जान प्यारी नहीं होगी? घर के सभी लोग कहते हैं कि, 'आत्महत्या में मत पड़ना, बहन शांति रखो, जाओ सो जाओ चैन से,' फिर भी उठकर पिछली खिड़की से वह बहन भाग गई, उसे समझाते रहे फिर भी! और जाकर सूरसागर (बड़ौदा का एक तालाब) में कूद गई, उसके बाद शोर मचाने लगी कि, 'मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।' क्या तुझे पहले से मना नहीं किया था, तो फिर क्यों कूदी? और फिर अब, 'बचाओ' करके चिल्ला रही है। अंदर कूदने का जनून चढ़ा था, कूदने से वह उतर गया। ये बोलते रहते हैं न कि, 'मुझे मर जाना है, मर जाना है,' उससे 'सायकोलोजिकल इफेक्ट' हो जाता है, बाद में वह 'इफेक्ट' नहीं उतरता। वह तो सूरसागर में कूदने के बाद भान होता है, तब कहेगी, 'बचाओ, बचाओ।'

विकल्पों की भी ज़रूरत है

प्रश्नकर्ता : आत्महत्या के विचार क्यों आते होंगे?

दादाश्री : वह तो अंदर विकल्प खत्म हो जाते हैं, इसलिए। यह तो, विकल्प के आधार पर जी पाते हैं। विकल्प खत्म हो जाएँ, बाद में अब क्या करना, उसका कुछ 'दर्शन' नहीं दिखता। इसलिए फिर आत्महत्या करने के बारे में सोचता है। यानी ये विकल्प भी काम के ही हैं।

सहज रूप से विचार बंद हो जाएँ, तब ये सब ऊँचे विचार आते

हैं। जब विकल्प बंद हो जाएँ, तब सहज रूप से जो विचार आ रहे थे, वे भी बंद हो जाते हैं। घोर अँधेरा हो जाता है, फिर कुछ भी दिखाई नहीं देता! संकल्प अर्थात् 'मेरा' और विकल्प अर्थात् 'मैं,' जब वे दोनों बंद हो जाएँ, तब मर जाने के विचार आते हैं।

अपने यहाँ पर एक बनिये आते थे, उन्हें बहुत चिंता होती रहती थी। इसलिए किसीने सिखाया कि आप नक्की करो कि, 'यह मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है,' तो सबकुछ छूट जाएगा! वह बनिया बेचारा 'मेरा नहीं है, मेरा नहीं है' करते-करते पागल जैसा हो गया! अरे, तेरा क्या है वह जाने बिना तू खड़ा कहाँ रहेगा? यानी तेरा क्या है, वह जान ले एक बार। बाकी, यों तो कहीं ममता छूटती होगी? अब ये रोज़ कहती हैं कि, 'यह डॉक्टर मेरे पति नहीं हैं, यह बेटा मेरा नहीं है, यह बंगला मेरा नहीं है।' अब इसे ज्ञान तो नहीं मिला था। यदि उससे पहले, 'मेरे नहीं है, मेरे नहीं है' कहे तो दिमाग़ पागल हो जाएगा। तो 'मेरा' क्या है और 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा सब जिसे पता चल गया है, उसके बाद 'यह मेरा नहीं है' बोले तो चलेगा। यह तो, पहले खुद का तो ठिकाना नहीं और बोलते रहें, इसलिए ये लोग मर जाते हैं न! जब 'मैं' और 'मेरा', दोनों नहीं दिखते, तब फिर आत्महत्या करके मर जाता है! 'हम' उसके सिर पर हाथ रखकर, आशीर्वाद देकर मशीन शुरू कर देते हैं, बोल कि, 'मैं चोर हूँ, मैं चोर हूँ और चोरी करना मेरा धंधा है, चोरी करना वह मेरा धंधा है।' फिर उसका शुरू हो जाता है, उसके बाद वह जीवित रहता है। कुछ भी करके जीवित रह न, यहाँ! जब पुलिस पकड़ेगी, तब तुझे दूसरे विचार आएँगे कि, 'अब फिर कभी चोरी नहीं करनी है,' लेकिन यदि सामने फुटबॉल फेंकोगे तभी सामनेवाला वापस फेंकेगा न! लेकिन हम यदि फुटबॉल फेंके ही नहीं, तब फिर सामने से कौन फेंकेगा?

[९]

निष्क्लुशितता, ही समाधि है

समझ शमन करे क्लेश परिणाम

लोगों के घर पर क्लेश नहीं हों, जीवन क्लेशित नहीं रहे, ऐसा ही धर्म बताना है। अभी तो यह धर्म अपसेट हो गया है, इसलिए ये लोग क्लेशित जीवन जी रहे हैं। नहीं तो क्या ये जैन और वैष्णव गुनहगार हैं? ऐसा नहीं है। फिर भी क्यों इतनी सारी चिंताएँ हैं? क्योंकि पूरा जीवन ही क्लेशित है। पूरा धर्म ही ऐसा था, वह अभी इस तरह उलट गया है। इसलिए जो ऐसे उलट चुका है, उसे फिर से वापस यों उलट दूँगा। बहुत ही आसानी से जीवन क्लेशरहित हो जाए, ऐसा है! और इन लोगों को बगैर मेहनत का धर्म दूँगा। इनके मुँह पर तो अरंडी का तेल चुपड़ा हुआ है, इनसे क्या मेहनत करवाएँ? बाहर लोगों के मुँह पर अरंडी का तेल नहीं दिखता? मुँह पर अरंडी का तेल चुपड़कर घूमते हैं? उसका क्या कारण है? इन लोगों से मेहनत करवाने जैसा नहीं है, तप-त्याग करवाने जैसा नहीं है, दुःखी ही हैं बेचारे। फिर कहेंगे, 'फलाना खाना छोड़ दो।' अरे, सिर्फ वही एक चीज़ तो भाती है बेचारे को, उसे क्यों छुड़वा रहा है? उसे त्याग करवाने जैसा तो है ही नहीं। उसे सुख ही नहीं है किसी प्रकार का! करुणा आए ऐसा हो गया है! हमें जब ऐसा सब दिखता है तब हमें करुणा आती है, कि इनमें से, इन दुःखों में से इन लोगों को मुक्ति मिले।

क्लेश हुआ, लेकिन निकालें किस तरह?

इस संसार में लोग, हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ और पुरुष दिन

कैसे बिता रहे हैं, वह भी आश्चर्य है न! कितनी सारी मुश्किलों में से गुज़र जाते हैं, फिर भी शाम को सभी को शांत करके, इतने झगड़े का निपटारा करके फिर माँ सो जाती है, लेकिन जब तक घर में से क्लेश नहीं जाता तब तक भगवान का वास नहीं रहता। जब तक घर में क्लेश हो, तब तक घर में भगवान नहीं आते। अब क्लेश तो किसी को भी नहीं करना होता, लेकिन हो जाता है। उसका क्या करें? क्लेश तो किसी को भी नहीं करना होता न? लेकिन अपने आप क्लेश हो जाता है, तो क्या करें? क्लेश का मतलब आप समझे? आप अकेले स्वतंत्र रहते हो या फैमिली के साथ हो?

प्रश्नकर्ता : भाई-बहन, मदर-फादर सभी के साथ रहता हूँ।

दादाश्री : घर में, इस वातावरण में कभी किसी दिन क्लेश हो जाता होगा न?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभार हो जाता है।

दादाश्री : फिर कौन निकाल देता है उस वातावरण में से? वह क्लेश का वातारवण घर में पूरी रात वैसे का वैसा रहता है या निकाल देते हो?

प्रश्नकर्ता : निकाल देते हैं।

दादाश्री : किस तरह निकालते हो? लकड़ी मारकर? इन लोगों को क्लेश का वातावरण निकालने की इच्छा है, लेकिन किससे निकालें?

प्रश्नकर्ता : क्लेश भूल जाएँ और आनंद का वातावरण बनाएँ।

दादाश्री : ऐसा है, पूरी लाइफ फ्रैक्चर हो चुकी है, माइन्ड फ्रैक्चर हो गए हैं, बुद्धि फ्रैक्चर हो गई है, ऐसे ज़माने में लोग क्या ढूँढते हैं? इसलिए अब फिर से माइन्ड की मज़बूती होनी चाहिए। माइन्ड की मज़बूती कब होगी? जब 'ज्ञानीपुरुष' के दर्शन

करे। सिर्फ दर्शन से ही माइन्ड की मज़बूती हो जाती है।

ये क्या एक ही प्रकार के तुँबे हैं? कितने प्रकार के तुँबे हैं। जितने तुँबे उतनी मति। तुंडे-तुंडे मतिर्भिन्ना! उसे तुंड तो कब तक कहा जाता था कि जब तक उतनी तो सतर्कता थी कि घर में क्लेश को घुसने नहीं देता था, तब तक वे तुंड कहलाते थे! अभी तो क्लेश को घुसने देते हैं इतने भोले हैं, इसलिए तुँबे कहलाए। अभी तो क्लेश घुस जाता है या नहीं? कई बाड़ लगाने पर भी घुस जाता है न? आख़िर में नाली के रास्ते से भी क्लेश घुस जाता है। दरवाज़े बंद करके रखता है, फिर कुंडी लगा देता है कि घंटी बजेगी तभी दरवाज़ा खुलेगा, लेकिन फिर भी नाली के रास्ते से भी क्लेश घुस जाता है। किसलिए तुँबा कहा है? कि घर का खाते हैं, घर के कपड़े पहनते हैं, सभी कहीं चोरियाँ नहीं करते और फिर क्लेश करते हैं। घर में उत्पादन होता है और घर में ही उपयोग करते हैं। लोग ऐसे हो गए हैं!

अब क्लेश से घायल लोग, वे मन से घायल हो चुके हैं। मन से घायल हो चुके हैं, चित्त से घायल हो चुके हैं, अहंकार से घायल हो चुके हैं! इनके अहंकार ही घायल हो चुके हैं, उन्हें क्या डाँटना? इन्हें डाँटो तो आपके बोल बेकार जाएँगे। कुछ चित्त से घायल हो चुके हैं वे बेचित्त की तरह ही घूमते रहते हैं। कुछ का मन घायल हो गया हो तो वे पूरे दिन अकुलाया हुआ ही घूमता रहता है। जैसे पूरी दुनिया की अग्नि उसे खा जाने के लिए नहीं आ गई हो?

समझदारी सजाए, संसार व्यवहार

वास्तव में तो इस दुनिया में क्लेश जैसी चीज़ है ही कहाँ? क्लेश यानी नासमझी। जहाँ-जहाँ पर समझदारी नहीं है वहाँ क्लेश है और जहाँ-जहाँ पर समझदारी नहीं है वहाँ दु:ख है। दु:ख जैसी भी कोई चीज़ है ही नहीं। दु:ख, वह तो समझदारी के अभाव का दु:ख है।

प्रश्नकर्ता : क्लेश की वजह से इंसान की वृत्ति थोड़ी वैराग्य की ओर जाती है।

दादाश्री : क्लेश के कारण जो वैराग्य उत्पन्न हुआ है न, वह वैराग्य तो इंसान को संसार में और अधिक गहराई में ले जाता है। उसके बजाय तो वह वैराग्य नहीं आए तो अच्छा। वैराग्य तो समझदारी सहित होना चाहिए। समझदारी सहित वैराग्य काम का है। वर्ना ये दूसरे सब वैराग्य तो काम के हैं ही नहीं। लोग साइनाइड किसलिए पीते होंगे? वैराग्य आता है उसी से न? खुद अपने आप पर से विश्वास खत्म हो जाए, तब फिर पोइज़न ढूँढता है न? किसी जानवर का खुद अपने आप पर से विश्वास खत्म नहीं होता। इन मनुष्यों के सिवा अन्य जातियों को खुद पर विश्वास खत्म नहीं होता। सिर्फ मनुष्य ही बिल्कुल पामर जीव है, बुद्धि का उपयोग करते हैं इसलिए पामर हैं। इन्हें भगवान ने निराश्रित कहा है, दूसरे सभी आश्रित हैं। आश्रित को भय नहीं होता। कौए वगैरह सभी पक्षियों को है कोई दु:ख? जो जंगल में घूमते हैं, सियार, वगैरह उन सभी को भी कोई दु:ख नहीं है। सिर्फ जिन्होंने इन इंसानों की संगत की, ये कुत्ते, गाय, वगैरह वे सभी दु:खी होते हैं। वर्ना, ये इंसान तो मूल रूप से दु:खी हैं और जो उनकी संगत में आते हैं, वे सब भी दु:खी हो जाते हैं।

मनुष्य नासमझी की वजह से दु:खी हैं, समझ लेने गया इसलिए दु:खी है। यदि समझ लेने नहीं गया होता तो यह नासमझी खड़ी नहीं होती। ये सभी दु:ख नासमझी का परिणाम है। खुद मन में ऐसा मानता है कि, 'मैंने यह समझ लिया, यह समझ लिया।' अरे, क्या समझ लिया? समझा फिर भी पत्नी के साथ झगड़ा तो मिटता नहीं। कभी पत्नी के साथ झगड़ा हो जाए तो उसका भी तुझे निकाल करना नहीं आता। पंद्रह दिनों तक तो मुँह चढ़े रहते हैं। कहेगा, 'किस तरह *निकाल* (निपटारा) करूँ?' जब तक उसे पत्नी के साथ हुए झगड़े का निकाल करना भी

नहीं आता, तब तक वह धर्म में क्या समझेगा? पड़ोसी के साथ झगड़ा होने पर निकाल करना नहीं आए, तो वह किस काम का? झगड़े का निकाल करना तो आना चाहिए न?

इतने बड़े-बड़े जज होते हैं, वे सात साल की सज़ा कर देते हैं। बाद में वे जज मुझे मिले थे। घर पर उनका पत्नी के साथ कुछ झगड़ा हो जाए तो वह केस अभी तक पेन्डिंग ही होता है। मैंने कहा कि, 'इस केस का पहले हल लाओ न! उस सरकारी केस का तो हर्ज नहीं है।' लेकिन इसमें किस तरह हल लाए? उसे समझ ही नहीं है न! पत्नी के साथ झगड़ा हो तो किस तरह हल लाना, उसकी समझ नहीं है न! मनुष्य समझता नहीं है कि इसका निकाल किस तरह करना है? तब टाइम उसका निकाल कर देता है। वर्ना खुद अपने आप, अभी के अभी, तुरंत ही एडजस्ट कर लेना चाहिए, वैसी समझ तो इन लोगों में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : बात को संभालना भी नहीं आता।

दादाश्री : नहीं, लेकिन जहाँ पता ही नहीं चलता, वहाँ पर संभालेगा किस तरह? फिर टाइम उसका *निकाल* कर देता है। आखिर में टाइम तो हर एक चीज़ को खत्म कर देता है।

समझदारी तो ऐसी होनी चाहिए न, कि यह गड़बड़ हो गई है तो उसका हल क्या लाएँ? ऐसा क्यों होना चाहिए? ये सभी जानवर संसार चला रहे हैं। क्या उनके पत्नी-बच्चे नहीं हैं? उनकी भी पत्नी है, बच्चे हैं, सभी हैं। अंडों को इतनी अच्छी तरह सेते हैं। अंडे देने से पहले घोंसला तैयार कर लेते हैं। क्या उनमें यह समझ नहीं है? और ये समझ के बोरे! अक़्ल के बोरे!! जब इन्हें अंडे देने होते हैं तब अस्पताल ढूँढते रहते हैं। अरे, घोंसला बना न! लेकिन ये अक़्ल के बोरे अस्पताल ढूँढते हैं और जानवर बेचारे अंडे रखने से पहले जान जाते हैं कि हमें अंडे देने हैं, इसलिए हमें घोंसला बनाना चाहिए। अंडे में से बच्चे होते हैं, फिर घोंसला तोड़ दें तो उन्हें हर्ज नहीं है, लेकिन उसे अंडे का तुरंत

पता चल जाता है, जबकि इस दूषमकाल में अक़्ल के बोरे बन गए हैं! अक़्ल का बोरा तो किसे कहते हैं? कि अंदर भरी हुई है कम अक़्ल और ऊपर लिखा है अक़्ल। माल निकालने पर सारी कमअक़्ली निकल आती है। नहीं तो दुनिया में मनुष्यों को कहीं दु:ख होते होंगे? तू मनुष्य बना है और यदि मनुष्य में भी दु:ख मिल रहा है, तो तू मनुष्य कहलाएगा ही कैसे? यदि जानवरों को दु:ख नहीं है, तो मनुष्य को दु:ख क्यों रहना चाहिए? तू तेरी बाउन्ड्री नहीं समझता, तेरी काबिलियत क्या है वह नहीं समझता और लोगों के कहे अनुसार देख-देखकर चलता रहता है और आमने-सामने नकलें करता है। नकल तो बंदर करते हैं। मनुष्य नकल नहीं करते हैं, असल करते हैं। खुद की समझ से असल करते हैं कि मेरी हैसियत कितनी? मुझे चार सौ रुपये तनख्वाह मिलती है, जबकि पड़ोसी की हैसियत कितनी है? तो कहे, 'महीने में दस हज़ार कमाता है।' इसलिए हम उसकी बात को यहाँ पर घुसने ही नहीं दें। हम नहीं समझ जाएँ कि यहाँ यदि हमारी दृष्टि बदल जाएगी तो रोग घुस जाएगा? इसलिए घर में स्त्री से, बच्चों से कह देना चाहिए कि, 'भाई, अपनी आमदनी इतनी है। इसलिए इन लोगों की दृष्टि से अपना लेवल मत बनाना।' यानी कि सबकुछ समझना पड़ेगा न?

यह तो खुद के अहित में चल रहा है कि पड़ोसी सोफा ले आए, तब घर में पत्नी क्या कहती है कि, 'हम भी सोफा लाएँ।' अरे, पत्नी तो कहेगी कि सोफा लाओ, लेकिन पत्नी को पूछोगे नहीं कि, 'तुझे मेरी अर्थी निकालनी है या क्या?' लेकिन पत्नी को समझाना नहीं आता बेचारे को, कि पत्नी को किस तरह समझाऊँ और फिर पत्नी की आदत बिगाड़ता है। क्योंकि पति होना ही नहीं आया। ऐसे फिर पत्नी को बिगाड़ता है और अपने खुद के मन को भी इन लोगों ने बिगाड़ा है। खुद ही मन को बिगाड़ता है और फिर कहेगा कि, 'मेरा मन मेरी सुनता नहीं है।' यह तो तूने बिगाड़ा है। खुद अपने आप बिगाड़ा है। ऐसा तो कैसा कि

तेरा मन तेरे काबू में ही नहीं? उसका क्या, कोई कारण होगा न? उसे बिगाड़ा किसने? बच्चे को तो मानो न कि पड़ोसी ने बिगाड़ा! पड़ोसी बच्चे को बुलाकर कहेंगे कि, 'तेरे पिता जी वास्तव में ऐसे हैं।' उसके पिता का उल्टा बोलते हैं इसलिए फिर बच्चे को पड़ोसी अच्छे लगते हैं। वह समझता है कि ये चाचा बहुत अच्छे हैं। लेकिन चाचा बच्चों को बिगाड़ रहा होता है। यानी बच्चों को तो कोई दूसरा आदमी बिगाड़ सकता है, लेकिन अपने मन को कौन बिगाड़ता है? यह तो, ऐसा भान ही नहीं है कि ऐसा करूँगा तो मन बिगड़ जाएगा या सीधा चलेगा? यह तो क्या कहेगा कि मुफ्त में मिल रहा है न, हेवमोर आइस्क्रीम मुफ्त में मिल रही है न? चलो!! अरे, मुफ्त में मिल रहा है, लेकिन उसमें तेरा मन बिगड़ जाता है न। जब वह मुफ्त का चला जाएगा, फिर तेरी क्या दशा होगी? कुछ लोगों को तो अगर मुफ्त में मिले न, तो ब्रांडी का चस्का लग जाता है। पहले मुफ्त में शुरू करता है और फिर लत लग जाती है। इसलिए पहले तो लोगों को समझना चाहिए कि इस संसार में कुछ भी मुफ्त में लेने जैसा है ही नहीं। सबसे महँगी चीज़ इस दुनिया में कोई हो तो वह 'मुफ्त' है। इसलिए मुफ्त को कभी भी छूना मत। महँगी से महँगी, बहुत ही जोखिमवाली ऐसी महँगी चीज़ को अपने यहाँ नहीं घुसने देना चाहिए। मुफ्त तो बहुत बड़ी जोखिमदारी है और ये लोग तो मुफ्त को सौदा मान बैठे हैं और फिर खुद अपने आप को अक़्लवाला कहते हैं। सब को कहता फिरेगा कि, 'हमने कोई पैसे-वैसे खर्च नहीं किए, ये तो मेरे दोस्तों ने ही खर्चे हैं!' अरे, तू मर रहा है। लेकिन उसका उसे भान ही नहीं न! आज मनुष्यों को किसी भी प्रकार का भान ही नहीं रहा। मोक्ष का भान नहीं रहा, उसमें तो हर्ज नहीं है। मोक्ष का भान तो नहीं होता, पहले से ही नहीं था, लेकिन संसार में हिताहित का भान चाहिए या नहीं चाहिए? संसार में मेरा किस तरह से हित होगा किस तरह अहित होगा, इतना भान तो होना चाहिए या नहीं?

पहले पत्नी को रोज़, 'चल सिनेमा देखने, चल सिनेमा देखने।' फिर सिनेमा में जाता है। फिर पत्नी थोड़ी परीक्षा करती है और कहती है कि, 'इस बच्चे को मैं नहीं उठा सकती।' तब वह कहेगा, 'ला, मैं उठा दूँ।' फिर एक-दो दोस्त मज़ाक उड़ानेवाले मिल जाएँगे, वे कहेंगे कि, 'अरे, तेरे साथ यह पत्नी है, वह तो यों ही घूम रही है और बच्चे को तू उठाकर घूम रहा है?' तब फिर मन में शरम आती है। तब फिर पत्नी से कहेगा, 'अरे, तू उठा ले अब।' अरे, तुझे उसे सिनेमा दिखाने की क्या ज़रूरत थी? अगर पत्नी बहुत कहे, तो वह तो कहेगी, लेकिन आपको समझना चाहिए कि आप फँस गए हो, तो अब उसका हल लाओ। पत्नी बहुत कहे न, तो उसका हल लाना, लेकिन उससे ऐसा मत कहना कि, 'चल सिनेमा देखने।' 'चल, चल' नहीं करना चाहिए। यह तो विवाह के समय भी सौदेबाज़ी करता है न!

इसके बजाय वह दुकान लगाए ही नहीं तो क्या बुरा है? बिना दुकान के पड़े रहना अच्छा। ऐसी दुकान शुरू करके फिर फँस जाते हैं! इसे मनुष्यत्व कैसे कहा जाएगा? मनुष्यत्व तो उसे कहते हैं कि जैसे बारह महीनों में दीवाली एक ही बार आती है। लेकिन लाभपाँचम तक उसके प्रतिस्पंदन रहते हैं, उसी तरह बहुत हुआ तो पूरे साल में पाँच दिन ऐसी आफत आए और बाकी के दिन सामान्य रूप से अच्छी तरह बीतें। लेकिन यह तो रोज़ आफत, बगैर आफत के तो कोई दिन ही नहीं है!

क्या भूल रह जाती है?

संभालकर रखने के मल्टिप्लिकेशन से तो पूरा जगत् भटक रहा है। संभालकर रखने की तो ज़रूरत ही नहीं है न! संभालकर नहीं रखनी है। संभालकर नहीं रखने का भागाकार करने की भी ज़रूरत नहीं है। संभालकर रखने का मल्टिप्लिकेशन करने की ज़रूरत नहीं है और संभालकर नहीं रखने का भागाकार करने

की भी ज़रूरत नहीं है। यह तो पूरे दिन संभालने में और संभालने में, संभालने में और संभालने में! फिर भी कुछ नहीं मिलता और न ही कोई बरकत आती है! इतना सारा खाना-पीना, इतनी कमाई होने के बावजूद भी कोई सुखी नहीं है? यह किस प्रकार का?! व्यवहार में ऐसा निष्क्लेश तो होना चाहिए न? व्यवहार थोड़े ही कहीं क्लेशवाला है? व्यवहार तो निष्क्लेश ही है, सिर्फ उसे जीवन जीना नहीं आता। इसलिए उसे क्लेश उत्पन्न हो जाता है।

क्लेशवाले जीवन को मनुष्यजीवन कह ही नहीं सकते! क्योंकि कोई जानवर तक क्लेश नहीं करता। इन जानवरों को भीतर दुःख आए और वेदना हो तब आँखों में से पानी टपक जाता है, रोते ज़रूर हैं, लेकिन मनुष्य के अलावा कोई क्लेश करता ही नहीं। मनुष्यों में कहीं क्लेश होता होगा? फिर भी कोई ऐसी भूल रह जाती है कि जिससे क्लेश उत्पन्न हो जाता है। कुछ भूल रह जाती है न! भगवान ने कहा था कि क्लेश निकाल देने के लिए कहीं ज्ञान की ज़रूरत नहीं है, बुद्धि की ज़रूरत है। बुद्धि तो अच्छी तरह से प्रकाशमान हो सके ऐसी है, उससे सारा क्लेश निर्मूल हो सकता है। लेकिन देखो न, क्लेश के तो पूरे कारखाने खोले हैं! अब एक्स्पोर्ट भी कहाँ करे? फॉरिनवालों को पूछवाएँ तो कहेंगे, 'हमारे यहाँ बहुत कुछ है, लेकिन फिर भी सोने के लिए गोलियाँ खानी पड़ती है। बीस-बीस गोलियाँ खाते हैं तब कहीं जाकर नींद आती है।' पूरे वर्ल्ड का सोना, वर्ल्ड की लक्ष्मी उनके पास है, फिर भी गोली खानी पड़ती है! फिर भी उसे नींद नहीं कह सकते। नींद तो किसे कहते हैं? कि जो सहज स्वभावी हो। यह तो इन्हें जड़ बना दिया है। जैसे दवाई लगाकर सुन्न कर देते हैं न? ऐसे सुन्न कर देते हैं। अरे, सुन्न करने के बजाय ऐसे ही खुली आँखों से पड़ा रह न! बहुत हुआ तो बस जागरण होगा न? तो सुन्न होने के बजाय यह क्या बुरा है? कहीं सुन्न तो हुआ जाता होगा?

अरे, उसे पूछो तो सही!

जो हाथ में आया उसे पेट में डाल दिया। ऐसा तो होता होगा? एक व्यक्ति तो सेर भर आईस्क्रीम खा गया था। अरे भीतर पूछ तो सही। भीतर पूछना नहीं चाहिए कि, 'भाई, आप कैसे पचाओगे? पचाना हो तो भीतर डालूँ।' ये तो पूछते-करते नहीं हैं न! अब क्योंकि वह आज नहीं मरा, इसलिए लोग क्या समझते हैं कि, 'कोई हर्ज नहीं है। देखो न, पच गया न!' अरे, अंदर रोग घुस गया! वह रोग अंदर जमे बगैर रहेगा नहीं। आज मरा नहीं है, लेकिन सौ प्रतिशत रोग हो गया होता तो वह मर जाता। कुछ प्रतिशत कम रह गए इसलिए भीतर रह गया। फिर ये केन्सर की गाँठें निकलती हैं न? ये केन्सर की सारी बीमारी है न? वह इसी वजह से है। पूछे-करे बिना अंदर रोज़ डालता रहता है, डालता रहता है! जैसे कि यह कोई कारखाना न हो!

मैं अगास से बोरसद जा रहा था, तो मैं एक घोड़ागाड़ी में बैठा। तीन लोग बैठे थे और चौथा मैं बैठ गया। मैंने घोड़ागाड़ीवाले से कहा, 'अब चार पैसेन्जर हो गए, अब तू गाड़ी चला!' उसने कहा, 'हा चाचा, चलाता हूँ।' बीच रास्ते में दो पैसेन्जरों ने ऐसे-ऐसे हाथ दिखाए, तो उसने तो गाड़ी खड़ी रख दी। दूसरे दो जनों को बिठाया। तब भी मैं कुछ नहीं बोला। थोड़ी दूर गए तो दूसरे दो लोग ऐसे-ऐसे हाथ दिखाने लगे। तब उसने गाड़ी खड़ी रख दी और पैसेन्जर को 'बैठना हो तो बैठो,' ऐसा कहा। अरे, घोड़े से पूछ तो सही कि तू खींच सकेगा? उसे पूछता-करता नहीं और पैसेन्जर को बिठाता ही रहता है। तू तो कैसा आदमी है? तब वह कहता है कि 'चाचा, घोड़े को अच्छी तरह खिलाऊँगा!' लेकिन बेचारे घोड़े से पूछता नहीं है और खींच-खींचकर घोड़े का दम निकल जाता है। उसी तरह ये लोग भी पूछे-करे बगैर भीतर खाना डाल देते हैं। ये तो कुछ पूछते नहीं और अंधाधुंध डालते रहते हैं। घोड़े को पूछना नहीं चाहिए कि, 'दो लोग ज़्यादा

है, अंदर बिठाऊँ या नहीं?' ये तो अधिक लोगों को बिठा लेता है और घोड़े को यों बेकार ही हाँकता रहता है और फिर ऊपर से चाबुक मारता है! तब घोड़ा भी पिछले पैर तांगे में मारता है धड़ाक से। घोड़ा क्यों मारता है? क्योंकि भीतर से वह परेशान हो जाता है कि, 'यह कैसा नालायक सेठ है?! कैसा है?' वह घोड़ा क्या कहता है कि, 'तेरे यहाँ फँस गया हूँ, तेरे जैसा मालिक मिला तो मैं फँस गया हूँ!' उसे अच्छा घोड़ागाड़ीवाला मिलना चाहिए न! बेचारे घोड़े को भी महादुःख है न! इसीलिए यह संसार परवश है न!

दुःख धकेलने ऐसा केसा शौक?

एक व्यक्ति से मैंने पूछा कि, 'ये सेठ लोग ड्राइवर को पीछे क्यों बिठाते हैं? ड्राइवर को तनख्वाह देते हैं। और सेठ की जगह पर ड्राइवर को बिठाते हैं?' तब कहता है कि, 'सेठ लोगों को शौक है!' मैंने कहा कि, 'ड्राइवर बनने का शौक है? सेठ लोगों को कहीं शौक होता होगा? इसका कहीं शौक होता होगा?' यदि कोई मज़दूर जैसा उससे कुचल जाए तो उसकी जोखिमदारी गाड़ी चलानेवाले की। ऐसा शौक तो कहीं होता होगा? फिर मैंने ढूँढ निकाला कि सेठ को क्या होता है? पूरे दिन मशीनरी बंद नहीं होती और मोटर चलाने बैठे तो चलाते समय आगे-आगे देखना पड़ता है न? इसलिए एकाग्रता रखनी पड़ती है। तब दूसरा सबकुछ बंद हो जाता है। गाड़ी चलाने बैठे उतने समय तक मशीनरी बंद रहती है, नहीं तो यह मशीनरी घड़ीभर भी बंद नहीं रहती। भीतर ठंडक नहीं रहती, इसलिए ये लोग ड्राइविंग करते हैं। क्या हो अब! लेकिन फिर (लपटुं पड़ गया है) आदत पड़ गई है, वह मशीन फिर से चलने लगती है।

लपटुं यानी कि यदि हमने बोतल के अंदर तेल डालकर ऊपर कॉर्क लगाया लेकिन बोतल ज़रा आड़ी हो, उससे पहले तो कॉर्क बाहर निकल जाता है। अपने आप ही बाहर निकल जाता

है, उसी तरह इनका *लपट्टुं* पड़ जाता है। ये पत्नी-पति के संबंध में भी कुछ लोगों का *लपट्टुं* पड़ जाता है ने? फिर जब वह पत्नी से दब जाए, तो फिर हमें क्या कहना पड़ता है कि, 'कॉर्क को ज़रा वेल्डिंग करवाकर मोटा कर न?' ताकि फिर वह अपने आप निकल न जाए!

...ऐसे शक्तियाँ व्यर्थ गईं

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोगों को तो जब तक पत्नी के साथ अबोला (रूठकर बातचीत करना बंद कर देना) नहीं हो, तब तक ज़िंदगी में मज़ा नहीं आता।

दादाश्री : हाँ! वो अबोला होता है फिर उसे मज़ा आता है! क्योंकि जैसे यह कुत्ता है, जब वह हड्डी चूसता है, अब देखने जाएँ तो हड्डी को हम धोएँ तो ज़रा सा भी खून नहीं निकलेगा, लेकिन वह कुत्ता उसे जैसे-जैसे दबाता जाता है, वैसे-वैसे उसमें से खून निकलता रहता है। अब खून खुद के जबड़े में से निकलता है, लेकिन वह समझता है कि हड्डी में से निकला। इस तरह संसार चलता रहता है!

अंधा बुने और बछड़ा चबाए, ऐसा संसार है। अंधा ऐसे डोरी बुनता रहता है, आगे-आगे बुनता रहता है और पीछे डोरी पड़ी होती है उसे बछड़ा चबाता जाता है। उसी तरह अज्ञानी की सभी क्रियाएँ बेकार जाती हैं और फिर मरने के बाद अगला भव बिगाड़े तो मनुष्य जन्म भी नहीं मिलता! अंधा समझता है कि ओहोहो! पचास फुट की डोरी बन गई है लेकिन लेने जाए तब कहेगा, 'ये क्या हो गया?' अरे, वह बछड़ा सब चबा गया!

इस तरह बचपन से लोग पैसा कमाते रहते हैं, लेकिन बैंक में देखने जाएँ तो कहेंगे, 'दो हज़ार ही पड़े है।' और पूरा दिन हाय-हाय, हाय-हाय, पूरा दिन कलह, क्लेश और झगड़े! अब अनंत शक्तियाँ हैं। जैसा आप भीतर सोचते हो वैसा ही बाहर हो जाए

इतनी सारी शक्तियाँ हैं। लेकिन इनसे तो, विचार तो क्या, लेकिन मेहनत करके करने जाएँ तब भी बाहर नहीं हो पाता। तब बोलो, मनुष्यों ने कितना दिवाला निकाल दिया है!

अरे! क्लेश करना, वही सुख मान्यता?

इन बंगलों में भी सुख नहीं मिला! इतने बड़े-बड़े बंगले!! देखो, बंगलों में उजाला कितना, लाल-हरे उजाले हैं। स्टेनलेस स्टील की थालियाँ कितनी हैं, लेकिन सुख नहीं मिला। पूरे दिन धमाचौकड़ी, धमाचौकड़ी...! ये कौएँ, चिड़ियाँ सभी घोंसलों में जाकर, मिलकर बैठते हैं, और ये मनुष्य ही हैं जो कभी भी मिल-जुलकर नहीं बैठते! अभी भी टेबल पर लड़ रहे होंगे, क्योंकि यह जाति पहले से ही सीधी नहीं है। सत्युग में भी सीधी नहीं थी, तो कलियुग में, अभी दूषमकाल में कहाँ से सीधी होगी? यह जाति ही अहंकारी है न! ये गाय-भैंस सभी 'रेग्युलर' हैं, उन्हें कुछ भी परेशानी नहीं होती। क्योंकि वे सभी आश्रित हैं। सिर्फ मनुष्य ही निराश्रित है। इसलिए ये सभी मनुष्य चिंता करते हैं। बाकी वर्ल्ड में दूसरे सभी जानवर या कोई देवलोकवासी चिंता नहीं करते, सिर्फ ये मनुष्य ही चिंता करते हैं। इतने अच्छे बंगले में रहते हैं फिर भी बेहद चिंता। अब खाते समय भी दुकान याद आती रहती है कि, 'दुकान की खिड़की खुली रह गई, उससे पैसा वसूलना रह गया!' यहाँ पर खाते-खाते चिंता करता रहता है कि जैसे अभी ही नहीं पहुँच जानेवाला हो!' अरे, रख न एक ओर! खा तो ले चुपचाप!! लेकिन सीधी तरह से खाना भी नहीं खाता। खिड़की खुली रह गई इसलिए अंदर चिढ़ा हुआ रहता है। इसलिए फिर बहाना निकालकर पत्नी के साथ झगड़ा शुरू कर देता है। अरे, तू चिढ़ा हुआ है किसी और पर, और पत्नी पर क्यों गुस्सा निकाल रहा है? इसलिए अपने यहाँ कवि गाते हैं कि 'कमज़ोर पति पत्नी के सामने बहादुर।' और कहाँ बहादुर बनेगा? बाहर बहादुर बनने जाए तो कोई मारेगा! इसलिए घर पर बहादुर!

हमें क्या यह सब शोभा देता है? अपने हिन्दुस्तान के मनुष्य, एक-एक मनुष्य में ज़बरदस्त शक्ति हैं! लेकिन कितना उल्टा उपयोग हो रहा है! इसमें उनका भी दोष नहीं है। उन्हें उल्टा ज्ञान मिला है इसलिए उल्टे चल रहे हैं। यदि सीधा ज्ञान दिया जाए तो सीधे चलें, ऐसे हैं। आपको यह सीधा ज्ञान मिलने के बाद आपकी कितनी शक्ति बढ़ गई! दर्शन और सूझ बहुत बढ़ जाते हैं!!

...वह मानवधर्म कहलाता है

प्रश्नकर्ता : इसमें मानवधर्म क्या है?

दादाश्री : किसी मनुष्य को हमारे निमित्त से दुःख न हो, अन्य जीवों की बात तो जाने दो, लेकिन सिर्फ मनुष्यों को संभाल लें कि 'मेरे निमित्त से इन्हें दुःख होना ही नहीं चाहिए,' तो वह मानव धर्म है।

वास्तव में मानव धर्म किसे कहा जाता है? यदि आप सेठ हैं और नौकर को बहुत धमका रहे हैं, उस समय आपको ऐसा विचार आना चाहिए कि, 'अगर मैं नौकर होता तो क्या होता?' इतना विचार आए तो फिर आप उसे मर्यादा में रहकर धमकाएँगे, ज़्यादा नहीं कहेंगे। यदि आप किसी का नुकसान कर रहे हों तो उस समय आपको यह विचार आना चाहिए कि 'मैं सामनेवाले का नुकसान कर रहा हूँ, लेकिन अगर कोई मेरा नुकसान करे तो क्या होगा?'

फिर किसी के पंद्रह हज़ार रुपये, सौ-सौ रुपयों के नोटों का एक बंडल हमें रास्ते में मिले, तब हमारे मन में यह विचार आना चाहिए कि 'यदि मेरे इतने रुपये खो जाएँ तो मुझे कितना दुःख होगा, तो फिर जिसके ये रुपये हैं उसे कितना दुःख हो रहा होगा?' इसलिए हमें अख़बार में विज्ञापन देना चाहिए, कि इस विज्ञापन का खर्च देकर, सबूत देकर आपका बंडल ले जाइए। बस, इस तरह मानवता समझनी है। क्योंकि जैसे हमें दुःख होता है वैसे

ही सामनेवाले को भी दुःख होता होगा, ऐसा तो हम समझ सकते हैं न? प्रत्येक बात में इसी प्रकार आपको ऐसे विचार आने चाहिए। लेकिन आजकल तो यह मानवता विस्मृत हो गई है, गुम हो गई है न! इसी के ये दुःख हैं सारे! लोग तो सिर्फ अपने स्वार्थ में ही पड़े हैं। वह मानवता नहीं कहलाती।

फिर मानवता से भी आगे, ऐसा 'सुपर ह्यूमन' किसे कहेंगे? आप दस बार किसी व्यक्ति का नुकसान करो, फिर भी, जब आपको ज़रूरत हो तो उस समय वह व्यक्ति आपकी हेल्प करे! आप फिर से उसका नुकसान करो, फिर भी, जब आपको काम हो तो उस घड़ी वह आपकी हेल्प करे। उसका स्वभाव ही हेल्प करने का है। तब समझ जाना है कि यह व्यक्ति 'सुपर ह्यूमन' है। ऐसे लोग तो कभी-कभार ही होते हैं। अभी तो ऐसे लोग मिलते ही नहीं न! क्योंकि लाख लोगों में एकाध ऐसा होता है, ऐसा अनुपात हो गया है।

प्रश्नकर्ता : हम जानते हैं कि किसी का दिल नहीं दुखे इस प्रकार से जीना है, मानवता के वे सभी धर्म जानते हैं।

दादाश्री : ये सब तो मानवता के धर्म हैं, लेकिन यदि स्वाभाविक धर्म जान लें तो फिर हमेशा सुख बर्तेगा। मानव धर्म में कैसा है? हम सामनेवाले को सुख दें तो हमें सुख मिलता रहे। यदि हम सुख देने का व्यवहार रखें तो व्यवहार में हमें सुख प्राप्त होगा और दुःख देने का व्यवहार रखें तो व्यवहार में दुःख प्राप्त होगा। इसलिए यदि सुख चाहिए तो व्यवहार में सभी को सुख दो और दुःख चाहिए तो दुःख दो।

प्रश्नकर्ता : सभी को सुख पहुँचाने की शक्ति प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं न!

[१०]

फ्रैक्चर हो, तभी से आदि जुड़ने की!

हिसाब चुकाते हुए, स्वपरिणति न चुके

सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' को ही किसी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) की ज़रूरत नहीं है। उसका क्या कारण है? उनमें स्वच्छंद है ही नहीं। निरंतर स्वपरिणति में रहते हैं। इसलिए उन्हें किसी *ऊपरी* की ज़रूरत नहीं है। इंसान को *ऊपरी* की ज़रूरत कब तक है? जब तक उससे भूल हो, तब तक *ऊपरी* की ज़रूरत है। जब भूल नहीं रहे उसके बाद *ऊपरी* नहीं रहता। इस 'अंबालाल' की भूल हुई होगी, लेकिन ज्ञानी के रूप में हमारी भूल नहीं होती।

यह जो पैर टूट गया है, वह अंबालाल की भूल का परिणाम है, हमारे इस ज्ञान के परिणामस्वरूप नहीं। जबकि लोग ऐसा कहते हैं कि, 'आपको ऐसा कैसे हो सकता है?' मैंने कहा कि, 'सबकुछ हो सकता है। लेकिन यह अंबालाल का परिणाम है, भगवान का परिणाम नहीं है यह, और भगवान को ऐसा होता भी नहीं।'

कृष्ण भगवान भी ऐसे सो रहे थे, तब उन्हें पैर पर बाण लगा था। कृष्ण भगवान वासुदेव भगवान थे, यह परिणाम अलग है और तीर लगा वह परिणाम अलग है। दोनों परिणाम अलग हैं। लोग उस पर से परिणाम समझने की भूल कर बैठते हैं। कृष्ण भगवान, वे तो भगवान ही हैं। भले ही तीर लगा या भले ही कुछ भी हुआ हो, लेकिन वे भगवान ही हैं। क्योंकि वे स्वपरिणति में थे और नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे!

अतः यह जगत्, यह कुदरत एक मिनट के लिए भी न्याय से बाहर नहीं गई है। इसलिए कुछ भी हुआ कि हम तो तुरंत ही समझ जाते हैं कि यह हुआ वह न्यायस्वरूप है, इसलिए किसी पर आरोप लगाने जैसा है ही नहीं। धक्का लगानेवाले को देखा हो, फिर भी आरोप लगाने जैसा नहीं है। मारनेवाला तो बेचारा निमित्त है, उसमें कुदरत न्याय ही कर रही है।

जब मेरा पैर टूटा तब मैंने देखा कि न तो चक्कर आया, न ही मुझे कुछ हुआ, तब फिर यह गिराया किसने? तो ऐसे देखा तब तो दिखा कि ओहोहो! समझ गया, यह तो हिसाब चुकाया है। कोई हिसाब किसी को छोड़ता नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : किसी से धक्का लग गया और उसे पूर्व का हिसाब होगा ऐसा कहे, तो वह एक प्रकार का दिलासा नहीं है?

दादाश्री : नहीं, वह हकीकत में है। फिर भी लोग इसका लाभ दिलासे के रूप में लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो यह चीज़ हकीकत है?

दादाश्री : हाँ, हकीकत में है! आपको मैं सादी भाषा में समझाता हूँ। जैसे आप किसी को धौल मारो, वैसे ही मैंने भी मारा है। सिर्फ इतना ही कि आप ठोकते ही रहते हो, जबकि मैंने मेरी तरह से हल्के से लगाया था। पूर्वभव में जो धौल मारी थीं वे हल्की मारी थीं, इसलिए हमें उस धौल का फल मिलता ज़रूर है, लेकिन वह हल्का होता है इसलिए वह सरलता से ठीक हो जाता है। उसे ठीक होने के लिए उच्च निमित्त मिल जाते हैं, और उलझन में डालनेवाले निमित्त नहीं मिलते। अतः जो जवाब पर से रकम ढूँढ निकाले, उसकी तो बात ही अलग न!

देहोपाधि, फिर भी अंतःकरण की समता

हमारा मन अनंत जन्मों से गढ़ा हुआ ही है। बाहर चाहे

जो हो, लेकिन हमारा मन गढ़ा हुआ है। अब, अभी यह पैर टूटा और उसके उपचार में यदि मन को कोई दुःख हो जाए तो वह मन के डेवेलपमेन्ट को तोड़ेगा। इसलिए फिर हमने दूसरे उपचारों के लिए मना कर दिया और यह भी कहा था कि यह शीशी (बेहोशी की दवाई) हमें मत सूँघाना। क्योंकि हमारा जो मन है उसने तो इन पिछले बीस वर्षों में एक सेकन्ड भी कभी डिप्रेशन देखा ही नहीं, और बिल्कुल एलिवेट भी नहीं हुआ और ये गिर पड़ा, फिर भी कभी भी, एक क्षण के लिए भी आनंद नहीं गया है।

प्रश्नकर्ता : यह तो शरीर है और वह तो मन है।

दादाश्री : नहीं। यह शरीर है फिर भी यह पैर टूटे तो भीतर वेदना होनी चाहिए, उस वेदना से जो तकलीफ होती है, बैठने की प्रक्रिया, उसमें जो कुछ दुःख होना चाहिए था, लेकिन वह दुःख नहीं हुआ। अभी संडास जाना पड़ता है, ऐसी सब क्रियाएँ होती हैं, फिर भी शरीर पर कोई असर नहीं होता। बैठकर उठता हूँ फिर भी असर नहीं होता, एक मिनट के लिए भी असर नहीं होता। आपका भी यह शरीर जुदा है, लेकिन अभी तक जुदापन का वैसा एक्ज़ेक्ट अनुभव नहीं हुआ है न! जुदा है, प्रत्यक्ष जुदा दिखता है। ये सब बातें भी सही हैं, लेकिन जब तक शरीर चिपका हुआ है तब तक वेदना उत्पन्न किए बगैर रहेगा नहीं। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार इतने सुंदर डेवेलप हो चुके हैं कि वे बीस साल से हिले तक नहीं, डिप्रेस नहीं हुआ, ना ही एलिवेट हुआ। आपको समझ में आया न? यानी कि हमारा मन कितना अधिक डेवेलप हो चुका है, चित्त कितना सुंदर डेवेलप हो चुका है, अहंकार कितना अधिक ऐसे डेवेलप हो चुका है! अब ऐसा सुंदर डेवेलप हो चुका हो वहाँ पर इस पैर को जोड़ने के लिए वह शीशी सूँघाने का समय आए, तो ऐसी स्थूल चीज़ के लिए मुझे, मेरे अंदर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार जो इतने डेवेलप हो चुके हैं, वे बिगड़

जाएँगे न! और यह पैर छोटा हो जाए तो भी मुझे हर्ज नहीं, मुझे चलने की बहुत ज़रूरत नहीं पड़ती। ऐसा है न, हमें कहीं इसे ज़िंदा रखने की इच्छा भी नहीं है। हमें तो, यह देह रहे या न रहे, उसकी भी कुछ नहीं पड़ी है। मरना है ऐसा भी नहीं है, जीना है ऐसा भी नहीं है। अपने आप ही देह जब छूटेगा तो छूट जाएगा यहाँ से! लोग तो किसलिए यह सब करते हैं? कि ज़्यादा जीने के लिए सभी मतलबी-प्रपंच करते हैं कि, 'डॉक्टर साहब मुझे ऐसा करो, मुझे अच्छा करो, मुझे बचाओ।' हमें तो, जो सहज रूप से हो जाए न, वह अच्छा। ये सभी डॉक्टर यहाँ पर आकर यह सब कर जाते हैं। डॉक्टर की ऐसी इच्छा ज़रूर है कि इन्हें यहाँ से 'जाने' नहीं देना है, अभी भी पाँच-दस साल और रहें तो अच्छा। जगत् के काम आएँगे। इसलिए ये सभी डॉक्टर सहारा देना चाहते हैं। बाकी, अब चौहत्तर वर्ष तो हो गए!

पैर टूटा या जुड़ रहा है?

जब मेरा यह पैर टूटा, तब जगत् के लोग इसे 'पैर टूट गया' ऐसा कहते हैं। तब मैं क्या कहता हूँ कि, 'नहीं, यह पैर तो जुड़ रहा है।' पैर टूटा था, वह तो बहुत पहले टूटा था! यह कुछ नया नहीं है। लोग मुझे कहते हैं, 'आपके पैर में फ्रैक्चर हो गया?' अरे, नहीं, जो टूटा था, वह तो उस दिन टूटा था, अब तो यह जुड़ रहा है। अभी यह रूपक में आया है, वह तो जुड़ने की शुरूआत हुई है और यह जो फ्रैक्चर हुआ वह तो संधिस्थान है। किसका संधिस्थान? जुड़ने का संधिस्थान। फ्रैक्चर हुआ उसी मिनट से अंदर जुड़ना शुरू हो गया। रूपक में टूटे, तभी से जुड़ने की शुरूआत हो जाती है और वास्तव में फ्रैक्चर कौन-से मिनट से होना शुरू हुआ था, वह भी हम जानते हैं। इस बात में जगत् गहरा नहीं उतर सकता न! 'जुड़ने की शुरूआत' को ही लोग कहते हैं कि, 'यह फ्रैक्चर हुआ।' जबकि हम कहते हैं कि, 'अरे, यह तो जुड़ना शुरू हुआ है, उसे किसलिए फ्रैक्चर

हुआ कह रहा है?' अब तो जुड़ने की बिगिनिंग हुई। अब यह तो कन्स्ट्रक्टिव है।

बुखार आया? नहीं, जा रहा है

बुखार जब से प्रकट होता है, तभी से जाने की शुरूआत हो जाती है। जबकि लोग कहते हैं कि 'बुखार आया है।' लेकिन बुखार कौन से दिन आता है? उसका लोगों को पता ही नहीं चलता। यह तो बुखार आने की क्रिया तो हो चुकी है। जब से आपने गलत खाना शुरू किया न, तभी से वह क्रिया शुरू हो गई थी। अब बुखार निकलने की व्यवस्था हुई है और वह बुखार जब जाता है तब पता चलता है। यह बुखार वास्तव में तो जा रहा है। जब से जाने की शुरूआत होती है तब से निर्जरा (डिस्चार्ज) होती है। जब डिस्चार्ज होने की शुरूआत होती है तब लोग उसे 'बुखार आया' कहते हैं। फिर कहेंगे कि, 'साहब, मेरा बुखार बंद कर दीजिए।' अरे, यह तो बुखार निकलने की शुरूआत हो गई है, लेकिन लोगों को यह बात समझ में नहीं आती न! क्योंकि सभी लोग कर्ताभाव में पड़े हुए हैं।

यानी कि जो बिगड़ा है, वह तो न जाने कब से बिगड़ रहा था, लेकिन यह तो अब सुधरने लगा है। सुधरने लगा तब से डॉक्टर मिल जाता है, हथियार मिल जाते हैं, दवाईयाँ मिल जाती हैं, तो वह सुधरने की शुरूआत हो गई।

फ्रैक्चर के बाद, टूटता है या जुड़ता है?

पहले जो कार्य किये थे, जो भावनाएँ की थीं, उसका फल है यह तो। वह डिस्चार्ज हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : 'यह पैर पहले से टूटा हुआ था, अभी नया नहीं टूटा है' वह समझाइए।

दादाश्री : किस तरह फ्रैक्चर हुआ वह, इस तरह जुड़ा,

ठीक हुआ, निमित्त कौन है? वह सब वही का वही है। यानी नया नहीं है कुछ भी। फ्रैक्चर हुआ, उसे लोग क्या कहते हैं? गिर गया और लग गई। डॉक्टर भी क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : फ्रैक्चर हो गया।

दादाश्री : हाँ, और भगवान की भाषा में वह क्या है? जुड़ने की शुरूआत हुई है। अब इसे लोग 'फ्रैक्चर हुआ' ऐसा कहते हैं। अब फ्रैक्चर के ठीक होने की शुरूआत को लोग 'फ्रैक्चर हुआ' ऐसा कहते हैं। फ्रैक्चर तो हो चुका था पहले। यह तो जब फ्रैक्चर होता है, उसी मिनट से कुछ अंतराल पर नहीं, लेकिन उसी सेकन्ड से जुड़ने की शुरूआत हो जाती है। आपको समझ में आया? जुड़ने की शुरूआत हो जाती होगी न?

प्रश्नकर्ता : समझ में नहीं आया।

दादाश्री : फ्रैक्चर होने के बाद फिर से फ्रैक्चर नहीं होता न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, फ्रैक्चर तो एक ही बार होता है न!

दादाश्री : फिर जुड़ता होगा या फिर से फ्रैक्चर हो रहा होगा?

प्रश्नकर्ता : फिर से फ्रैक्चर नहीं होता, वह फिर जुड़ता ही है।

दादाश्री : तभी से, उसी मिनट से जुड़ने लगता है। आपको वह समझ में आया?

फर्क, परिणाम में या भोगवटे में?

प्रश्नकर्ता : यह बात तो ठीक से समझ में आई, लेकिन ये टूटने के जो कारण हैं, कॉज़ेज़ हैं, वे किसी भी प्रकार से निर्मूल हो सकते हैं क्या?

दादाश्री : वे कारण खत्म नहीं हो सकते, लेकिन हम पर उन कारणों का कम असर हो, वैसा किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : कारण अच्छे हैं या बुरे, जो कुछ भी भूतकाल में हमने डाले हों या बुने हों, वे रूपक में आने से पहले निर्मूल हो सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, वे तो उसी भाव से रहेंगे। हाँ, सिर्फ हम इतना कर सकते हैं कि, होली के पास जाएँ तो हमें गर्मी बहुत लगती है। फिर भी होली तो उसी भाव से रहेगी, लेकिन अगर हम कुछ चुपड़कर गए हों तो बहुत गर्मी नहीं लगेगी। वर्ना होली उसी भाव से रहेगी। यानी होली अपना भाव छोड़ेगी नहीं।

प्रश्नकर्ता : होली अपना भाव छोड़ दे, तो वह होली कहलाएगी ही नहीं।

दादाश्री : वह फिर होली कहलाएगी ही नहीं और जगत् पर फिर असर ही नहीं डालेगी। तब तो लोग समझेंगे कि रास्ता मिल गया, भगवान की ज़रूरत ही क्या है? लेकिन उस उपाय का पता चले, ऐसा नहीं है। तो हम भीतर कुछ ऐसा करके होली के पास जाएँ तो असर नहीं हो, ऐसा होता है या नहीं होता? ये मूसलाधार बरसात हो रही हो, लेकिन अगर हम एक छाता ले जाएँ, तो भीतर हमें पानी का एक छींटा भी नहीं छुएगा। यानी कि बरसात बंद नहीं होगी। लोग एविडेन्स बंद करने जाते हैं, वह बंद नहीं होगा। यदि ऐसा होता, तब तो फिर लोग पूरा जगत् ही खत्म कर देते न! इस प्रकार दो ईंटें निकल सकें, तब तो फिर लोग सबकुछ ही तोड़ डालेंगे। लेकिन इसमें से एक भी ईंट हिल नहीं सकती। नहीं तो ये सारे बनिये क्या ऐसे-वैसे हैं? सभी ईंटें निकालकर बेच खाएँगे, लेकिन एक भी एविडेन्स आगे-पीछे नहीं हो सकता। यानी अपने ये सारे संयोग भी ऐसे हैं। इसलिए हम तो इस तरह कुछ पहनकर जाते हैं, इधर-उधर से

होकर निकल जाते हैं, टाइम गुज़ार देते हैं, ताकि बहुत घुटन न रहे।

टूटे-जुड़े, उसमें 'खुद' कौन?

लोग तो, जब अंदर गर्मी लगती है तब क्या कहते हैं? कि, 'मुझे बुखार आ गया।' घरवालों से कहेगा कि, 'थर्मामीटर लाओ।' फिर नापकर कहता है, 'यह तो १०१ डिग्री बुखार चढ़ा है।' डॉक्टर आता है, वह भी कहता है कि, 'बुखार चढ़ा है' और भगवान की भाषा में बुखार उतर रहा है। बुखार की शुरूआत नहीं हुई, बुखार का विनाश हो रहा है। अब यह बात लोगों की समझ में नहीं आती न! विकृत आहार शुरू किया न, तभी से हम नहीं समझ जाएँ कि ये बुखार के कारणों का ही सेवन कर रहा है! तभी से बुखार चढ़ने की शुरूआत कही जाएगी। फिर जब बुखार चढ़ता है, उस समय तो वह बुखार उतरने का कारण है, वह तो अंदर बुखार उतार रहा है।

प्रश्नकर्ता : अब बुखार जब अपने आप जा रहा हो, तब उसे निकालने की मेहनत करते हैं। उसका क्या परिणाम आता है?

दादाश्री : नहीं, वह मेहनत भी एक निमित्त है।

प्रश्नकर्ता : जो स्वाभाविक हो रहा है, उसमें दख़ल करते हैं न?

दादाश्री : नहीं, वे दख़ल तो नहीं करते, वह भी स्वभाविक ही हो रहा है। भीतर उसकी ज़रूरत होगी तो हेल्प होगी, लेकिन लोग ज़रूरत से ज़्यादा कर देते हैं।

मैं जो बोल रहा हूँ न, वैसा मैं पहले से ही मानता था। अभी यदि बुखार चढ़ गया है, तो वह तो आ ही चुका था। वह बुखार पहले से ही आ चुका था। उसमें नया क्या कहा? और यह तो अब उतर रहा है!

यह दुःख ऐसी चीज़ है कि तू जहाँ जाएगा वहाँ साथ में आएगा, इसलिए यहीं से दुःख से निवृत्त हो जा। हमें यहाँ पर सौंप दे और निबेड़ा ला दे। वर्ना यदि दुःख से भागा, तो तू जहाँ जाएगा वहाँ पर दुःख साथ में आएगा। हाँ, अतः यहीं पर हिसाब चुका देना पड़ेगा और जो कुछ हो वह आप खुद ही हो। इसलिए ढूँढ निकालो न! आप जो हो, वह बन जाने के बाद कुछ रहा ही नहीं न! भले ही फिर पैर टूट जाए, लेकिन तब भी उस समय आप हो ही! पैर टूटा, वह तो यहाँ पर डिस्चार्ज कर्म के हिसाब चुकाने हैं।

[११]

पाप-पुण्य की परिभाषा

सही धन तो सुख देता है

यह तो *पूरण-गलन* है, उसमें जब *पूरण* (चार्ज होना, भरना) हो, तब हँसने जैसा नहीं है और *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) हो, तब रोने जैसा नहीं। यदि *पूरण* होगा और हँसने की आदत पड़ गई होगी तो कोई भी मूर्ख बना देगा। जब दुःख का *पूरण* होता है, तब रोता क्यों है? *पूरण* में यदि तुझे हँसना हो तो हँस। *पूरण* अर्थात् सुख का *पूरण* होता है तब भी हँस और दुःख का *पूरण* होता है तब भी हँस। लेकिन इनकी तो भाषा ही अलग है न! पसंद और नापसंद, दोनों रखते हैं न? सुबह जो नापसंद हो, उसी को शाम को पसंद कर देता है। सुबह कहेगा, 'तू यहाँ से चली जा।' और शाम को उसे कहेगा कि, 'तेरे बिना मुझे अच्छा नहीं लगेगा।' यानी भाषा ही अनाड़ी लगती है न!

जगत् का नियम ही ऐसा है कि जो *पूरण* होता है, उसका *गलन* हुए बगैर रहता नहीं। यदि सभी लोग पैसे सिर्फ इकट्ठे कर रहे होते तो मुंबई में कोई भी व्यक्ति कह सकता था कि, 'मैं सबसे अधिक धनवान हूँ।' लेकिन ऐसी संतुष्टि की बात कोई कहता ही नहीं। क्योंकि नियम ही नहीं है ऐसा!

कुदरत क्या कहती है? 'उसने कितने रुपये खर्च किए, वह हमारे यहाँ नहीं देखा जाता। वह तो वेदनीय क्या भोगा, शाता या अशाता, उतना ही हमारे यहाँ देखा जाता है। रुपये नहीं होंगे तो

भी शाता भोगेगा और रुपये होंगे फिर भी अशाता भोगेगा।' यानी जो कुछ भी शाता या अशाता वेदनीय भोगता है, वह रुपयों पर आधारित नहीं है। अभी यदि अपनी थोड़ी आमदनी हो, बिल्कुल शांति हो, कोई झंझट नहीं हो, तब हम कहेंगे कि, 'चलो, भगवान के दर्शन कर आएँ!' और ये जो पैसे कमाने में रह गए, वे तो ग्यारह लाख रुपये कमाए उसका हर्ज नहीं है, लेकिन अभी पचास हज़ार का नुकसान हो जाए तो अशाता वेदनीय खड़ी हो जाती है! 'अरे, ग्यारह लाख में से पचास हज़ार माइनस कर ले न!' तब वह कहेगा कि, 'नहीं, उससे तो रकम कम हो जाएगी न!' अरे, तू रकम किसे कहता है? कहाँ से आई यह रकम? वह तो ज़िम्मेदारीवाली रकम थी, इसलिए जब कम हो जाए तब शोर मत मचाना। यह तो, जब रकम बढ़े तब तू खुश हो जाता है और कम हो जाए तब? अरे, पूँजी तो 'भीतर' है, क्यों हार्ट फेल करके उस पूँजी को पूरा खो देना चाहता है? हार्ट फेल करे तो पूँजी पूरी खत्म हो जाएगी या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो जाएगी।

दादाश्री : तो यह सब किसलिए? तब वह कहता है कि, 'लेकिन मेरे लिए तो वह पैसों की पूँजी क़ीमती है!' अरे, आपको भीतरवाली पूँजी की ज़रूरत नहीं है?

दस लाख रुपये पिता ने बेटे को देकर पिता कहें कि, 'अब मैं आध्यात्मिक जीवन जीऊँगा!' तो अब वह बेटा हमेशा शराब में, मांसाहार में, शेयरबाज़ार में, सभी में वह पैसा खो देता है। क्योंकि जो पैसे गलत रास्ते इकट्ठे हुए हैं, वे खुद के पास नहीं रहते। आज तो सही धन भी, सही मेहनत का धन भी नहीं रह पाता, तो गलत धन कैसे रहेगा? अर्थात् पुण्यवाले धन की आवश्यकता होगी। जिसमें अप्रमाणिकता नहीं हो, दानत साफ हो, वैसा धन होगा तो वह सुख देगा। नहीं तो, अभी तो दूषमकाल का धन, वह भी पुण्य का ही कहलाता है, लेकिन पापानुबंधी

पुण्य का है। वह निरे पाप ही बँधवाएगा! इसके बजाय उस लक्ष्मी से कहना कि, 'तू आना ही मत, उतनी दूरी पर ही रहना। उससे हमारी शोभा रहेगी और तेरी भी शोभा बढ़ेगी।' ये जो बंगले बनते हैं, उन सब में साफ तौर पर पापानुबंधी पुण्य दिखता है। इसमें यहाँ शायद ही कोई होगा, हज़ारों में एकाध व्यक्ति, कि जिसका पुण्यानुबंधी पुण्य होगा। बाकी ये सभी पापानुबंधी पुण्य हैं। इतनी लक्ष्मी तो होती होगी कभी भी? निरे पाप ही बाँध रहे हैं, कुछ भोगते-करते नहीं हैं और पाप ही बाँध रहे हैं। ये तो तिर्यंच की रिटर्न टिकट लेकर आए हुए हैं!

एक मिनट भी नहीं रहा जा सके, ऐसा है यह संसार! ज़बरदस्त पुण्य होते हुए भी भीतर दाह कम नहीं होता। अंतरदाह निरंतर जलता ही रहता है! चारों ओर से सभी फर्स्ट क्लास संयोग हों फिर भी अंतरदाह चलता ही रहता है, अब वह मिटे कैसे? पुण्य भी अंत में खत्म हो जाते हैं। दुनिया का नियम है कि पुण्य खत्म हो जाते हैं। तब क्या होता है? पाप का उदय होता है। यह तो अंतरदाह है। पाप के उदय के समय जब बाहरी दाह उत्पन्न होगा, उस घड़ी तेरी क्या दशा होगी? इसलिए भगवान ऐसा कहते हैं कि 'सावधान हो जा।'

पाप-पुण्य की यथार्थ समझ

प्रश्नकर्ता : पाप और पुण्य, वे भला क्या हैं?

दादाश्री : ऐसा है, इस दुनिया को चलानेवाला कोई नहीं है। यदि कोई चलानेवाला होता तो पाप-पुण्य की कोई ज़रूरत नहीं थी। पाप और पुण्य का अर्थ क्या है? क्या करेंगे तो पुण्य मिलेगा? इस जगत् के लोग, हर एक जीव, वे भगवान स्वरूप ही हैं। ये पेड़ हैं, उनमें भी जीव है। अब लोग ऐसा भी कहते ज़रूर हैं लेकिन वास्तव में वैसा उनकी श्रद्धा में नहीं है। इसलिए पेड़ को काटते हैं, तोड़ते हैं, सभी कुछ करते हैं। उन्हें यों ही

ऐसे तोड़ते रहते हैं, यानी कि बहुत नुकसान करते हैं। जीवमात्र को किसी भी प्रकार का नुकसान पहुँचाने से पाप बँधते हैं और किसी भी जीव को किसी भी प्रकार से सुख देने पर पुण्य बँधते हैं। आप बग़ीचे में पानी छिड़कते हो तो जीवों को सुख होता है या दु:ख? वह जो सुख देते हो उससे पुण्य बँधता है। किसी भी जीव को थोड़ा भी त्रास दो, उससे पाप बँधता है। बस, इतना ही समझना है।

पूरा जगत् भगवान स्वरूप ही है। अब, ये जो सब दुश्मन और मित्र दिखते हैं, वह सब भ्रांति है। वह भ्रांतिज्ञान दूर हो जाए तो सभी तरफ शुद्धात्मा ही है। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट वह गधा है और बाइ रियल व्यू पोइन्ट वह शुद्धात्मा है। अत: यदि किसी भी जीव को किंचित्मात्र सुख या दु:ख पहुँचाया तो उससे हम पर पुण्य या पाप का असर होता है और फिर वह असर हमें भोगना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैंने पाप किया या पुण्य किया वैसा ज्ञान नहीं हो, फिर भी पाप-पुण्य बंधेंगे? उसे ज्ञान ही नहीं है कि यह मैंने पाप किया और यह पुण्य किया, तो उस पर इसका बिल्कुल भी असर होगा ही नहीं न?

दादाश्री : कुदरत का नियम ऐसा है कि आपको ज्ञान हो या नहीं हो, फिर भी उसका असर हुए बगैर तो रहता ही नहीं है। यदि इस पेड़ को काटा और आप इसमें कोई पाप या पुण्य नहीं समझते हो, लेकिन फिर भी पेड़ को दु:ख तो हुआ ही न? इसलिए आपको पाप लगा। आप चीनी की थैली लेकर जा रहे हों और थैली में छेद हो और उसमें से चीनी बिखर रही हो, तो वह चीनी किसी के काम आएगी या नहीं आएगी? नीचे चींटियाँ होती हैं, वे चीनी ले जाती हैं। अब इसे ऐसा कहा जाएगा कि आपने दान किया। भले ही बिना समझे, लेकिन दान हो रहा है न? आपकी जानकारी में नहीं है, फिर भी दान होता रहता है

न? और चींटियों को सुख होता है न? उससे आपको पुण्य बँधता है।

अतः यह पुण्य और पाप, इन दोनों का असर होता रहता है। पुण्य हों तो पुण्य का असर क्या कहलाता है? उससे आपकी इच्छा के अनुसार सब होता रहता है। पुण्य का असर क्या है? कि अपनी इच्छा के अनुसार सब होता रहता है और पाप का असर क्या है? कि जो इच्छा की हो उससे उल्टा ही होता रहता है। ऐसे कुछ उल्टे पासे पड़े थे? अब क्या उसमें डालनेवाले की भूल है? डालनेवाले की भूल नहीं है। पासा डालनेवाला वही था, लेकिन जब पुण्य का असर था तब पासे सही गिर रहे थे और जब पाप का असर आया, तब सभी पासे उल्टे गिरे। जब पुण्य का असर रहेगा, तब लोग 'आईए, आईए, आईए चंदूभाई, आईए चंदूभाई सेठ' कहेंगे और पाप का असर रहेगा तब 'जाने दो न उनकी बात!' ऐसा कहेंगे। अब वही के वही चंदूभाई हैं, लेकिन उनके पाप-पुण्य का असर लोगों पर पड़ता है!

पाप-पुण्य से मुक्ति किस प्रकार?

प्रश्नकर्ता : पाप धोना आता हो तो?

दादाश्री : इस तरह धोना नहीं आ सकता। जब तक 'ज्ञानीपुरुष' रास्ता नहीं दिखाते, तब तक पाप धोना आ ही नहीं सकता। पाप धोना यानी क्या? कि प्रतिक्रमण करना। अतिक्रमण, वह पाप कहलाता है। व्यवहार से बाहर कोई भी क्रिया की, तो वह पाप कहलाता है, अतिक्रमण कहलाता है। अतः उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। इससे फिर वे सारे पाप धुल जाएँगे, नहीं तो पाप नहीं धुलेंगे।

पाप के उदय के समय उपाय क्या?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से शायद नये पाप नहीं बँधेंगे, लेकिन पुराने पाप तो भुगतने ही पड़ेंगे न?

दादाश्री : आपका यह कहना ठीक है कि प्रतिक्रमण से नये पाप नहीं बंधेंगे लेकिन पुराने पाप तो भुगतने ही पड़ेंगे। अब वह *भोगवटा* (सुख या दुःख का असर) कम ज़रूर होगा, उसके लिए मैंने फिर रास्ता बताया है कि तीन मंत्र एक साथ बोलना। उससे भी *भोगवटा* का फल हल्का हो जाएगा। किसी आदमी के सिर पर डेढ़ मन का वज़न हो और बेचारा ऐसे तंग आ गया हो, लेकिन उसे एकदम से ऐसे कोई चीज़ दिख जाए और दृष्टि वहाँ पड़े तो वह अपना दुःख भूल जाएगा। वज़न हैं फिर भी उसे दुःख कम लगेगा। वैसे ही, ये जो त्रिमंत्र हैं न, उन्हें बोलने से वह वज़न लगेगा ही नहीं। यानी ये मंत्र हेल्पिंग चीज़ हैं। आप किसी दिन त्रिमंत्र बोले थे? एक ही दिन त्रिमंत्र बोले थे? तो ज़रा ज़्यादा बोलो न, ताकि सब हल्का हो जाए और आपको जो भय लग रहा होगा, वह भी बंद हो जाएगा।

पुण्य का उदय क्या काम करता है? सबकुछ खुद की इच्छा अनुसार होने देता है। पाप का उदय क्या ऐसा होने देता है? सबकुछ अपनी इच्छा से उल्टा कर देता है।

नहीं हो सकता माइनस पाप का कभी

प्रश्नकर्ता : यदि मनुष्य पुण्य के रास्ते पर जाए तो फिर पाप क्यों आता है?

दादाश्री : वह तो हमेशा से नियम ऐसा ही है न कि अगर आप कोई भी कार्य करते हो, तो अगर वह पुण्य का कार्य हो तो आपके सौ रुपये जमा होते हैं और पाप का कार्य हो तो भले ही थोड़ा सा, एक ही रुपये का हो, फिर भी वह आपके खाते में उधार हो जाता है लेकिन उस सौ में से एक भी कम नहीं होता। ऐसे यदि कम हो जाता तो कोई पाप लगता ही नहीं। अतः दोनों अलग-अलग रहते हैं और दोनों के फल भी अलग-अलग आते हैं। जब पाप का फल आए तब कड़वा लगता है।

उसमें किसी को दोष कैसे दिया जा सकता है?

कोई चीज़ ऐसी नहीं कि जो इन पुण्यशालियों को नहीं मिले, लेकिन ऐसा पूरा पुण्य नहीं लाए हैं इसलिए। नहीं तो हर एक चीज़, जैसी चाहिए वैसी मिले, ऐसा है, लेकिन जब तक लोग लौकिक ज्ञान में पड़े हुए हैं, तब तक कभी भी कोई चीज़ प्राप्त नहीं हो पाएगी। एक तो दिमाग़ से ज़रा गरम होता है, उसमें फिर उसे यदि ऐसा ज्ञान मिले कि *'बूधे नार पांसरी।'* (पत्नी को धमकाकर, मारपीटकर ही वश में रखा जा सकता है) तब फिर उसे जो चाहिए था, वही मिल गया! ऐसा ज्ञान मिले तो वह ज्ञान उसे फल देगा या नहीं देगा? फिर क्या होगा? जिस स्त्री के कोख से तीर्थंकर जन्मे, उस स्त्री की दशा तो देखो तुमने कैसी की? कितना अन्याय है? क्योंकि जिस स्त्री जाति की कोख से चौबीस तीर्थंकर जन्मे, बारह चक्रवर्तियों जन्मे, वासुदेव जन्मे, वहाँ पर भी ऐसा किया? भले ही आपको कड़वा अनुभव हुआ लेकिन उसके लिए स्त्री जाति को क्यों भला-बुरा कहना? आप बारह रुपये डज़न के आम लाओ लेकिन वे खट्टे निकलते हैं और तीन रुपये डज़नवाले आम बहुत मीठे निकलते हैं। यानी कई बार चीज़ उसकी क़ीमत पर आधारित नहीं होती, आपके पुण्य पर आधारित होती हैं। आपका पुण्य यदि ज़ोर लगाए न, तो आम बहुत मीठा निकलेगा! और यह जो खट्टा निकला, उसमें आपके पुण्य ने ज़ोर नहीं लगाया, उसमें किसी को दोष कैसे दिया जा सकता है?

यानी यह तो पुण्य की कमी है, और क्या है यह? बड़ा भाई जायदाद नहीं दे रहा हो तो क्या वह बड़े भाई का दोष है? अपने पुण्य में कमी है, उसमें दोष किसी का भी नहीं है। यह तो, वह पुण्य को तो सुधारता नहीं और बड़े भाई के साथ निरे पाप बाँधता है! फिर पाप के दोने इकट्ठे होते हैं।

और इस तरह पुण्य बँधते हैं

प्रश्नकर्ता : पुण्य किस तरह सुधरते हैं?

दादाश्री : जो आए उसे 'आ भाई, बैठ।' उसका सत्कार करे। अपने यहाँ चाय हो तो चाय, वर्ना जो हो वह, एक पराठे का टुकड़ा हो तो वह दे दें। पूछें कि, 'भाई, थोड़ा पराठा लोगे?' ऐसे प्रेम से व्यवहार करेंगे तो पुण्य बहुत हो जाएँगे। औरों के लिए करना, वही पुण्य! घर के बच्चों के लिए तो हर कोई करता है।

पुण्य ही, मोक्ष तक साथ में

प्रश्नकर्ता : क्या पुण्य के भाव आत्मा के लिए हितकारी हैं?

दादाश्री : वे आत्मा के लिए इसलिए हितकारी ज़रूर हैं कि वे पुण्य होंगे, तभी यहाँ सत्संग में 'ज्ञानीपुरुष' के पास आया जा सकेगा न? वर्ना, इन मज़दूरों के पाप हैं, इसलिए उन बेचारों से यहाँ आया किस तरह जाए? पूरे दिन मेहनत करते हैं, तब जाकर शाम को खाने के पैसे मिलते हैं। इस पुण्य के आधार पर तो आपको घर बैठे खाना मिलता है और थोड़ा-बहुत अवकाश मिलता है। अतः पुण्य तो आत्मा के लिए हितकारी है। पुण्य होंगे तो फुरसत मिलेगी। हमें ऐसे संयोग मिलेंगे। थोड़ी मेहनत से पैसा मिल जाएगा और पुण्य होंगे तो दूसरे पुण्यशाली लोग मिल जाएँगे, नहीं तो टुच्चे मिलेंगे।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के लिए वह अधिक हितकारी है क्या?

दादाश्री : अधिक हितकारी नहीं है, लेकिन उसकी ज़रूरत तो है न? कभी 'एक्सेप्शनल केस' में पाप भी बहुत हितकारी हो जाते हैं। लेकिन पुण्यानुबंधी पाप होना चाहिए। पुण्यानुबंधी पाप होगा न, तो और अधिक हितकारी बन पड़ेगा। वर्ना अभी तो सभी पापानुबंधी पुण्य हैं। यह बंगला है, मोटर है, सबकुछ है, फिर भी पूरा दिन 'किसी का ले लूँ, किसी का उड़ा लूँ, किसी का लूट लूँ' ऐसा होता रहता है। यह पुण्य तो तिर्यंच के स्टेशन पर जाने के लिए हैं।

प्रश्नकर्ता : पुण्य बंधन से तो संसार बढ़ता है, यही भावार्थ हुआ न?

दादाश्री : पुण्य यों तो हितकारी नहीं है, पुण्य वह एक प्रकार से हेल्प करता है। पाप होंगे तो 'ज्ञानीपुरुष' मिलेंगे ही नहीं। 'ज्ञानीपुरुष' से मिलना हो लेकिन पूरे दिन मिल में नौकरी कर रहा हो तो किस तरह मिल पाएगा? यानी इस प्रकार से पुण्य हेल्प करता है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार पाप से संसार बढ़ता है, उसी प्रकार पुण्य से भी संसार बढ़ता है न?

दादाश्री : पुण्य से भी संसार तो बढ़ता है, लेकिन जैसे-जैसे पुण्य बढ़ता है वैसे-वैसे संसार बढ़ता है और वैसे-वैसे मनुष्य को सच्चा वैराग्य उत्पन्न होता है, वर्ना सच्चा वैराग्य ही उत्पन्न नहीं होता। यह तो जब तक नहीं मिले तब तक ऐसा होता है, लेकिन यदि मिल जाए न, तो वापस जैसा था वैसे का वैसा ही बन जाता है। इसलिए उसे सभी एक्सपिरियन्स होने चाहिए। यहाँ से जो मोक्ष में गए थे न, वे सब ज़बरदस्त पुण्यशाली थे। देखने जाओ तो उनके आसपास दौ सौ-पाँच सौ तो रानियाँ होती थीं और बहुत बड़ा राज्य होता था। खुद को पता भी नहीं होता था कि कब सूर्यनारायण उदय हुए और कब अस्त हो गए। पुण्यशाली का जन्म तो ऐसे ठाठ-बाठ में होता है। बहुत सारी रानियाँ होती हैं, ठाठ-बाठ होते हैं फिर भी वे उकता जाते हैं कि इस संसार में क्या सुख है भला? पाँच सौ रानियों में से पचास रानियाँ उन पर खुश रहती थीं, बाकी की मुँह चढ़ाकर घूमती रहती थीं। कुछ तो राजा को मरवाना चाहती थीं। अर्थात् यह जगत् तो अत्यंत कठिनाईयोंवाला है। इसमें से पार निकलना बहुत मुश्किल है। 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तो सिर्फ वे ही छुटकारा दिलवा सकते हैं, वर्ना कोई भी छुटकारा नहीं दिलवा सकता। 'ज्ञानीपुरुष' छूट चुके हैं, इसलिए हमें छुटकारा दिलवा सकते हैं।

वे तरणतारणहार बन चुके हैं, इसलिए वे छुटकारा दिलवा सकते हैं।

पाप-पुण्य, क़ीमती या भ्रांति?

प्रश्नकर्ता : जो पुण्यशाली हों, उन्हें सभी 'आईए, बैठिए' करेंगे तो, उससे उनका अहम् नहीं बढ़ेगा?

दादाश्री : ऐसा है न कि, यह बात जिसे 'ज्ञान' है उसके लिए नहीं है। यह तो संसारी बात है। जिसके पास 'ज्ञान' है, उसके लिए तो पुण्य भी नहीं रहा और पाप भी नहीं रहा! उसके लिए तो दोनों का निकाल ही करना शेष रहा। क्योंकि पुण्य और पाप दोनों भ्रांति हैं। लेकिन जगत् ने इसे बहुत क़ीमती माना है। यानी कि यह तो जगत् की बात कर रहे हैं।

लेकिन इस जगत् में लोग बेकार ही हाथ-पैर मारते हैं। एक व्यक्ति तो पचास-बावन वर्ष का हो गया फिर मुझसे कहने लगा, 'अब कुछ मेरे ग्रह बदलेंगे ऐसा लगता है।' अरे, अभी तक तेरा ठिकाना नहीं पड़ा, तो अब लक्ष्मी तेरे पास किस तरह आएगी? बेकार ही शोर मचा रहा है न! किस की आशा रख रहा है? जो है वह समेटकर सो जा न चुपचाप। जो आशा, निराशा में बदल जाए, वह आशा किस काम की? आशा तो कैसी होनी चाहिए? आशा ऐसी होनी चाहिए जो परिपूर्ण हो जाए।

पुण्य तो बहुत बड़ी चीज़ है लेकिन इस काल में इतने पुण्य नहीं होते। यह पापानुबंधी पुण्य है! चार-चार गाड़ियाँ होती हैं, लेकिन जब वे सेठ आएँ तो लोग कहेंगे, 'जाने दो न बात।'

जहाँ अज्ञानता, वहीं पाप-पुण्य के बंधन

फिर भी पूरा जगत् तो ऐसे के ऐसे ही चलता रहेगा!

जब तक ऐसी मान्यता हैं कि 'मैं चंदूलाल हूँ,' तब तक कर्म बँधते ही रहेंगे। दो प्रकार के कर्म बंधते हैं। पुण्य करे तो

सद्भाव के कर्म बाँधते हैं और पाप करे तो दुर्भाव के कर्म बाँधते हैं। जब तक हक़ का और *अणहक्क* (बिना हक़ का) का विभाजन नहीं हो जाता, तब तक जैसा लोगों का देखे, वैसा ही वह भी सीख जाता है। मन में रहता है अलग, वाणी में कुछ तृतियम ही बोलता है और आचरण में तो ओर ही प्रकार का होता है। अब ये मन, वाणी और वर्तन जब तक एकाकार नहीं होंगे तब तक कभी भी पुण्य नहीं बँधेगा, अर्थात् निरे पाप ही बँधेंगे। इसलिए अभी तो लोगों की पाप की ही कमाई है।

पुण्य तो, पुण्यानुबंधी ही हों

एक पुण्य ऐसा होता है जो भटकाता नहीं है, वैसा पुण्य इस काल में बहुत ही कम होता है और वह भी थोड़े समय बाद खत्म हो जाएगा, वह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है। अभी यह सब जो पुण्य दिख रहा है, वह पापानुबंधी पुण्य कहलाता है, और वह ऐसा पुण्य है जो भटका देता है।

प्रश्नकर्ता : पुण्यानुबंधी पुण्य का उदाहरण दीजिए।

दादाश्री : आज किसी व्यक्ति के पास मोटर-बंगला वगैरह सभी साधन हैं, पत्नी अच्छी है, बच्चे अच्छे हैं, नौकर अच्छे हैं, यह सबकुछ जो अच्छा मिला है, उसे क्या कहते हैं? लोग तो कहेंगे कि, 'पुण्यशाली है।' अब, वह पुण्यशाली क्या कर रहा है, वह हम देखें तो पूरे दिन साधु-संतों की सेवा करता है, दूसरों की सेवा करता है और मोक्ष की तैयारी करता है। ऐसा सब करते-करते उसे मोक्ष के साधन भी मिल आते हैं। ऐसा कर रहा हो तो हम समझ जाएँगे कि यह पुण्यानुबंधी पुण्य है। अभी पुण्य है और नया पुण्य बाँध रहा है। वर्ना इस पुण्य में तो निरे पाप के ही विचार आते हैं कि, 'किसका ले लूँ और किसका खा जाऊँ और किसका इकट्ठा करूँ।' वह *अणहक्क* (बिना हक़ का) का भोग लेता है। वह पापानुबंधी पुण्य कहलाता है।

...तब तो परभव का भी बिगड़े

प्रश्नकर्ता : आज का टाइम ऐसा है कि इंसान खुद का भरण-पोषण भी पूरा नहीं कर सकता। वह पूरा करने के लिए उसे सही-गलत करना पड़े तो क्या ऐसा किया जा सकता है?

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, कि जैसे उधार लेकर दारू पीने जैसा है, उसके जैसा है यह व्यापार। कुछ अच्छा करो तो पुण्य मिलेगा जबकि इस गलत किए हुए से तो अभी टूट रहे हैं। अभी टूट रहे हैं, उसका क्या कारण है? पाप हैं, इसलिए आज कमी पड़ रही है, सब्ज़ी नहीं है, दूसरा कुछ नहीं है। फिर भी यदि अभी अच्छे विचार आ रहे हों, धर्म में-जिनालय में जाने के, उपाश्रय में जाने के, कुछ सेवा करने के, ऐसे विचार आ रहे हों तो वह पुण्यानुबंधी पाप है। आज पाप है, फिर भी वह पुण्य बाँध रहा है। लेकिन पाप हों और वह फिर से पाप ही बाँधे, ऐसा नहीं होना चाहिए। पाप हों, कमी हो, और इस तरह उल्टा करें तो फिर अपने पास बचा क्या?

प्रश्नकर्ता : यह तो पूरा सर्कल है न, ब्लोक, बच्चों की पढ़ाई, जीने के लिए ये सब ज़रूरतें, तो कुछ गलत नहीं करें तो पूरा नहीं हो पाएगा। तो गलत करना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : पूरा पड़े या नहीं पड़े फिर भी आपको गलत तो करना ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो घर में पत्नी कहेगी कि, 'इनमें कमाने की काबिलियत नहीं है।'

दादाश्री : तो आप कहना कि मुझ में काबिलियत नहीं है, तभी तो यह सब फज़ीता है। मुझ में काबिलियत नहीं है, आपको और कहीं शादी करनी हो तो कर लो।

प्रश्नकर्ता : ऐसे बोलने से सामनेवाले को दुःख हो जाए तो?

दादाश्री : तो माफी माँग लेना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पाप तो बँधेंगे न?

दादाश्री : निरे पाप ही बंध रहे हैं न! यह सुबह उठने से लेकर शाम तक निरे पाप ही बाँध रहा है! मोक्ष का मार्ग तो कहाँ गया, लेकिन निरे पाप ही बाँध रहा है।

वास्तविक ज्ञान ही उलझन में से छुड़वाए

लोगों ने जिसे जाना है, वह तो लौकिक ज्ञान है। सच्चा ज्ञान तो वास्तविक होता है और जब वास्तविक ज्ञान हो तब किसी प्रकार का *अजंपा* नहीं होने देता। वह भीतर किसी प्रकार की पज़ल खड़ी नहीं होने देता। इस भ्रांतिज्ञान से तो निरी पज़ल ही खड़ी होती रहती हैं। और वे पज़ल फिर सोल्व नहीं हो पातीं! बात सही है, लेकिन वह समझ में आनी चाहिए न? अच्छी तरह समझे बिना कभी भी हल नहीं आएगा। समझ में दृढ़ करना पड़ेगा। इसके लिए पाप धोने पड़ेंगे। जब तक पाप नहीं धुलेंगे, तब तक ठिकाने पर नहीं आएगा। ये सब पाप ही उलझा देते हैं। पापरूपी और पुण्यरूपी रुकावटें हैं बीच में, वे ही मनुष्य को उलझाती हैं न!

अनंत जन्मों से भटकते-भटकते इस भौतिक के ही पीछे पड़े हैं। इस भौतिक से अंतर शांति नहीं मिलती। रुपयों का बिस्तर बिछा लेने से क्या नींद आएगी? यह तो खुद की सभी अनंत शक्तियाँ व्यर्थ हो गईं!

[१२]

कर्तापन से ही थकान

मैं जा रहा हूँ या गाड़ी जा रही है?

यह तो बगैर उपयोग और जागृति के टाइम बीत जाता है। उपयोगपूर्वक अर्थात् अलर्टनेस होनी चाहिए। ऐसे गप्प लगाए और झोंके खाता रहे, वह सब बगैर उपयोग का कहलाता है, उससे हमें क्या मिला? गाड़ी चल रही हो और गाड़ी में गप्प लगाए, उसके बजाय गाड़ी में अलर्ट रहा जा सकता है या नहीं रहा जा सकता? हमें सेन्ट्रल स्टेशन पर जाकर गाड़ी में बैठ जाना है। ऐसा नहीं कहना है कि, 'मुझे आणंद जाना है।' हमें गाड़ी में बैठ जाना है, गाड़ी आणंद जाएगी। और आणंद स्टेशन पर लोग 'आणंद आ गया, आणंद आ गया' ऐसा बोलेंगे, तब हम आणंद में उतर जाएँगे।

गाड़ी आणंद जाती है, तब अपने लोग क्या कहते हैं? गाड़ी में बैठे-बैठे बोलते हैं कि, 'मैं आणंद जा रहा हूँ। फिर मिलेंगे।' 'अरे, तू कहाँ जा रहा है? यह तो गाड़ी जा रही है।' तब भी कहेगा कि, 'नहीं, मैं जा रहा हूँ।' लोगों का व्यवहार ऐसा है। उसे नकार भी नहीं सकते न! गलत भी नहीं कह सकते। लेकिन हमें समझ जाना चाहिए कि 'गाड़ी जा रही है।' हमें ऐसा नहीं बोलना चाहिए कि, 'मैं आणंद जा रहा हूँ।' वर्ना गाड़ी में बैठे-बैठे थकान महसूस लगेगी। हमें तो बात को समझ लेना है और गाड़ी में बैठे रहना है।

प्रश्नकर्ता : मोटर में जाएँ, तब भी 'मैं जा रहा हूँ' ऐसा नहीं बोलना चाहिए?

दादाश्री : चाहे कहीं भी जाओ, फिर भी ऐसा नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि मोटर जा रही है। 'मैं जा रहा हूँ' बोला कि थकान महसूस होगी। अब अगर गाड़ी में सो जाएगा तब भी आणंद आएगा या नहीं आएगा? और बैठा रहेगा तब भी आणंद आएगा न? और कोई ज़रा गाड़ी में जल्दबाज़ी कर रहा हो, ऐसे देखता रहे कि, 'यह भरुच आया या बड़ौदा आया?' उसके लिए भी आणंद आएगा या नहीं आएगा? यानी हमें सिर्फ जानना है कि गाड़ी आई है, हम नहीं आए हैं। हम तो वहीं के वहीं थे! नहीं तो बिना बात के थकान होगी! गाड़ी में बैठकर भी थकान हो तो यह कैसी बात?

हमें किसी भी जगह पर थकान महसूस ही नहीं होती। क्यों नहीं होती? क्योंकि 'मैं कहाँ जा रहा हूँ या आ रहा हूँ?' गाड़ियाँ जा रही हैं और आ रही हैं। फिर मुझे क्यों थकान होगी? लोग जान-बूझकर ऐसा कहते होंगे या यह सब उल्टा ही है? यह व्यवहार उल्टा है, लेकिन उसमें हम क्यों उल्टा व्यवहार करें? हम अब सीधा व्यवहार जान गए हैं, तब फिर क्या कोई उल्टा व्यवहार करेगा? यह व्यवहार स्वभाव से ही उल्टा है। इसी का नाम रिलेटिव है। रिलेटिव है यह, मतलब क्या कि किसी के आधार पर ऐसा कहते हैं कि, 'मैं जा रहा हूँ।' कौन सा आधार? तब कहे कि, 'लोग भी ऐसा ही कहते हैं कि मैं जा रहा हूँ।' वह आधार है, इसलिए हम भी कहते हैं कि 'मैं जा रहा हूँ।' लेकिन अब हमें उस आधार की ज़रूरत नहीं है, हमें दूसरा आधार चाहिए कि 'वास्तव में मैं नहीं जा रहा हूँ, वास्तव में तो गाड़ी जा रही है। यदि गाड़ी में भागदौड़ करेगा तो क्या वह जल्दी पहुँच जाएगा?'

प्रश्नकर्ता : नहीं पहुँचेगा।

दादाश्री : क्यों? 'आज बहुत जल्दी में हूँ, गाड़ी में से उतरते ही सीधा कोर्ट चला जाऊँगा?' ऐसे जल्दबाज़ी करके परेशान होने लगे तो? और अगर कोई गाड़ी में चैन से सो जाए तो?

दोनों मुंबई पहुँचेंगे या नहीं पहुँचेंगे? परेशान होनेवाला तो मुंबई आने तक आधा हो चुका होगा।

प्रश्नकर्ता : जीवन व्यवहार के संयोगों का सामना करते हुए जो थकान लगती है, उसका कारण क्या यही है?

दादाश्री : आपकी खोज सही है! अपने यहाँ लोग गाड़ी में मुंबई से आते हैं और बड़ौदा में उतरते हैं। फिर कहेंगे क्या कि 'मैं बहुत थक गया।' अरे, आप बहुत दौड़े न! पूरी रात दौड़ता रहा इसलिए थक गया न? गाड़ी का किराया दिया, गाड़ीवाला भी कहेगा कि, 'सोते-सोते जाओ।' यदि आपको बैठकर जाना हो तो बैठे-बैठे जाओ, लेकिन आपको जैसे ठीक लगे उस तरह से जाओ। लेकिन फिर भी वह क्या कहेगा कि, 'मैं बड़ौदा जा रहा हूँ।' वह बोलता है, 'मैं जा रहा हूँ' उसी से यह थकान महसूस होती है। सिर्फ साइकोलोजिकल इफेक्ट के कारण ही थकान महसूस होती है। हम तो चैन से बड़ौदा उतर जाते हैं। कोई पूछे कि आपको गाड़ी में थकान हुई? तब मैं कहता हूँ कि, 'मुझे कैसी थकान! मैं तो गाड़ी में बैठा था, फिर वहाँ पर आराम किया। सो गया और गाड़ी में सोते-सोते यहाँ तक आया हूँ।' सभी ने कहा कि, 'बड़ौदा आया, बड़ौदा आया' तब मैं उतर गया। उसमें मुझे क्यों थकान महसूस होगी? यह तो सब गलत मानते हैं कि 'मैं जा रहा हूँ' उसका फिर देह पर असर हो जाता है।

अनुभव के बाद रहे सावधानी से

कोई व्यक्ति बड़ौदा से मुंबई जा रहा हो, सो जाने का इंतज़ार कर रहा हो और पालघर आए तब गाड़ी में कुछ जगह खाली हो जाए, तो अब यदि वह बिस्तर बिछाए, तब हम नहीं समझ जाएँगे कि यह मूर्ख आदमी है? अभी एक घंटे में तो उतर जाना है फिर यह किसलिए यहाँ बिस्तर लगा रहा है? मुझे ज्ञान नहीं था तब भी मैं कहता था कि, 'बाल सफेद हुए, अब किसलिए

बिस्तर बिछा रहे हो? बिस्तर बिछाकर क्या पा लेना है?' ऐसा है यह जगत्!

इन लोगों का देखकर मुझे भी बिस्तर की बुरी आदत पड़ गई थी। लोग बड़े-बड़े बिस्तर लेकर जाते थे, तो मैंने भी मुंबई से एक बिस्तर खरीदा और अंदर गद्दा डालकर यात्रा में ले जाता। हर बार मज़दूर मिल जाते थे, लेकिन एक दिन कोई मज़दूर नहीं मिला और मुझसे भी बिस्तर नहीं उठाया गया। अब मेरी क्या दशा हो? ऐसे खींच-खींचकर मेरा दम निकल गया और कोई उठवानेवाला भी नहीं मिला। तभी से सौगंध खाई कि आगे से उतना ही सामान गाड़ी में साथ में रखना है, जितना उठाया जा सके। इसलिए इतना छोटा सा बैग ही रखता हूँ, और कोई झंझट नहीं। और बिछाने के लिए चद्दर। वह चद्दर बिछाकर बैग को तकिये की तरह लेकर ऐसे ही सो जाता हूँ। लेकिन अगर बैग चुभे तो बैग में से तौलिया निकालकर, ऐसे सिर के नीचे रखकर सो गए कि झंझट खत्म। ऐसे उठाकर तो मेरा दम निकल गया था। तब से मैं समझ गया कि इन लोगों के साथ मैं कहाँ स्पर्धा में पड़ा? यदि मज़दूर नहीं मिलें तो अपनी क्या दशा होगी? बिस्तरा स्टेशन पर छोड़कर कहीं आ सकते हैं? पर उसे घर तो लाना ही पड़ेगा न? भीतर चिढ़ मचती है कि 'लाओ, अब मज़दूर है नहीं। इसके बजाय तो यहीं पर छोड़ दो न!' लेकिन स्वभाव ऐसा था कि नहीं छोड़ पाते थे। क्योंकि ममता का स्वभाव ऐसा है कि वह कुछ भी नहीं छोड़ती।

लेकिन मुझे जितना-जितना समझ में आया कि तुरंत छोड़ देता था। जहाँ मार पड़े वहाँ तुरंत छोड़ देता था। फिर निश्चय कर लेता था। लेकिन ये सब बातें, मुझे ज्ञान हुआ उससे पहले की हैं। ज्ञान होने से पहले मुझमें ऐसी दृष्टियाँ उत्पन्न हुई थीं।

...तब दोनों सिरों से मुक्त हुए

ज्ञान से पहले, हमें सब स्टेशन पर छोड़ने आते थे, गाड़ी

में यों बिस्तर बिछा देते थे। फिर गाड़ी चलने लगे तब सब कहते, 'फिर मिलेंगे, अंबालाल चाचा! आना।' फिर गाड़ी चल पड़े तब वे सभी नहीं दिखते थे यानी बड़ौदा से अभी बंधे नहीं और मुंबई से मुक्त हो गए, तो अब किसमें रहना है? मोक्ष में रहना है। यानी ज्ञान होने से पहले मैं इस तरह से मोक्ष में रहता था। यहाँ से छूटे और वहाँ पर अभी तक बंधे नहीं, वह कौन सा काल कहलाएगा? वह मुक्ति ही कहलाएगी न! तो हम ऐसा फायदा उठा लेते थे। और लोग क्या करते हैं कि मुंबई छोड़ा, फिर भी मुंबई साथ में ले जाता है और बड़ौदा आने से पहले ही अंतर में बड़ौदा को डाल देता है, इसलिए उलझता ही रहता है। और मैं तो नक्की ही कर देता था कि मुंबई से मुक्त हो गए, बड़ौदा अभी तक आया नहीं, अतः भीतर मुक्त। बीच का काल वह मोक्ष का काल! आसान रास्ता है न? हमें ज्ञान नहीं हुआ था उससे पहले भीतर तरह-तरह के ऐसे विचार स्फुरित होते थे! यह एक अच्छा स्फुरण कहलाएगा न!

इसी प्रकार तू सोते समय, खुद के रूम में पलंग पर सो जाता है, तो कोई तेरे पलंग में घुस जाता है? नहीं! तो उस घड़ी तू यदि कहे कि घर से, सभी से मुक्त हुए और पलंग से बंधे नहीं हैं। क्योंकि पलंग थोड़े ही बांधता है हमें? यदि मुक्त दशा बरते, तो वह क्या बुरा है?

[१३]

भोगवटा, लक्ष्मी का

कमाई में, चुकता किए जीवन

दादाश्री : धोराजी से यहाँ कलकत्ता में आप किसलिए आए?

प्रश्नकर्ता : जीवन निर्वाह के लिए।

दादाश्री : जीवन निर्वाह तो जीव मात्र कर ही रहा है। कुत्ते, बिल्ली, सभी अपने-अपने गाँव में ही रहकर जीवन निर्वाह करते हैं। ये मथुरा के बंदर होते हैं न, वे भी वहीं के वहीं, किसी से भी चने लेकर अपना निर्वाह कर ही लेते हैं। वे कहीं दूसरे शहर में नहीं जाते, मथुरा में ही रहते हैं। और लोग तो सभी जगह जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लोभ दृष्टि है न, इसलिए।

दादाश्री : हाँ, वह लोभ परेशान करता है, निर्वाह परेशान नहीं करता। यह निर्वाह परेशान करे ऐसा है ही नहीं। निर्वाह तो, वह जहाँ पर हो वहाँ पर उसे मिल ही जाएगा। मनुष्यत्व तो महान सिद्धि है। उसे हर एक चीज़ मिल आती है। लेकिन ये लोभ के कारण भटकते रहते हैं। 'यहाँ से लूँ या वहाँ से लूँ, यहाँ से लूँ या वहाँ से लूँ' करता रहता है। यहाँ कलकत्ता तक आए फिर भी कोई ऐसा नहीं कहता कि 'मैं संतुष्ट होकर बैठा हूँ!'

प्रश्नकर्ता : संतोष रहे तो फिर दुःख कैसा?

दादाश्री : नहीं-नहीं, संतोष की बात नहीं है। कमाने के

लिए यहाँ तक आए थे, अब कमाकर कोई ऐसा नहीं कहता कि, 'मेरे पास पाँच अरब रुपये हो गए हैं, अब मुझे कोई ज़रूरत नहीं है।' ऐसा कहनेवाला मुझे कोई नहीं मिला। पाँच अरब नहीं तो 'एक अरब हो गए हैं।' कोई ऐसा कहे तो भी मैं समझूँ कि 'भाई, ये कलकत्ता आ गए थे, वे हैं। शाबाश!' बैंक में आपके कितने पैसे हैं? पचासेक लाख रुपये हैं?

प्रश्नकर्ता : क्या बात करूँ साहब?

दादाश्री : क्या कहते हो सेठ? यदि धोराजी से यहाँ आए, फिर भी बैंक में कुछ नहीं है? देखो शरमाने जैसा हो गया है, वहाँ से यहाँ आए और फँस गए उल्टा। न तो यहाँ के रहे, न ही वहाँ के रहे।

भगवान की भाषा में संपत्ति किसे कहते हैं? जो संपत्ति गुणावाली हो, उसे। गुणावाली संपत्ति साथ में ले जाता है और उसे खुद को संतोष भी रहता है। जो संपत्ति भागवाली होती है, उसे भगवान ने संपत्ति माना ही नहीं। भागवाली संपत्ति तो जब यहाँ पर मर जाता है और तब उसकी संपत्ति भी चली जाती है।

... वह धन जमा होता है

पैसों का स्वभाव कैसा है? चंचल है। इसलिए आते हैं और एक दिन वापस चले भी जाते हैं। इसलिए पैसे लोगों के हित के लिए खर्च करने चाहिए। जब कभी आपका खराब उदय आ जाए, तब लोगों को दिया हुआ ही आपकी हेल्प करेगा। इसलिए पहले से ही समझ लेना चाहिए। पैसों का सद्व्यय तो करना ही चाहिए न?

चारित्र से समझदार हुआ कि पूरा जगत् जीत लिया। फिर भले ही जो कुछ खाना हो वह, खाए-पीए और यदि अधिक हो

तो दूसरों को खिला दे। और क्या करना है फिर? क्या कुछ साथ में ले जा सकते हैं? जो धन औरों के लिए खर्च हो, उतना ही धन अपना है। उतनी ही अगले जन्म की *सिलक* (जमापूँजी)। यानी किसी को यदि अगले जन्म की *सिलक* जमा करनी हो तो धन औरों के लिए खर्च करना। फिर पराया जीव अर्थात् कोई भी जीव, फिर वह कौआ हो, और वह इतना सा चख भी गया होगा न तो भी आपकी *सिलक* जमा हो गई। कौए को इतना डाला और वह खा गया, तो आपकी *सिलक*। लेकिन आप और आपके बच्चों ने खाया, वह सब आपकी *सिलक* नहीं है, वह सब गटर में गया। तो क्या गटर में जाना बंद किया जा सकता है? नहीं, वह तो अनिवार्य है। है कोई चारा? लेकिन साथ-साथ समझना चाहिए कि जो परायों के लिए खर्च नहीं किया, वह सब गटर में ही जाता है।

मनुष्यों को नहीं खिलाओ और अंत में कौओं को खिलाओ, चिड़िया को खिलाओ, सभी को खिलाओ तो भी वह परायों के लिए खर्च किया माना जाएगा। मनुष्य की थाली की क़ीमत तो बहुत बढ़ गई है न? चिड़िया की थाली की क़ीमत बहुत नहीं है न? तब जमा भी उतना कम ही होगा न?

दान, हेतु के अनुसार फल प्राप्ति

प्रश्नकर्ता : कई ऐसा कहते हैं कि दान करने से देवता बनते हैं, वह सच है न?

दादाश्री : दान देकर भी नर्क में जाते हैं, ऐसे भी हैं। क्योंकि दान किसी के दबाव के कारण देते हैं। ऐसा है न, कि इस दूषमकाल में दान करने की लक्ष्मी लोगों के पास है ही नहीं। दूषमकाल में जो लक्ष्मी है वह तो अघोर कर्तव्यवाली लक्ष्मी है। अत: यदि उसका दान दे, तो उससे तो बल्कि नुकसान होगा। लेकिन फिर भी यदि किसी दु:खी इंसान को दे, दान

देने के बजाय उसकी मुश्किल दूर करने के लिए करे तो वह अच्छा है। दान तो नाम कमाने के लिए करते हैं, उसका क्या मतलब? जो भूखा हो उसे खाने का दो, कपड़े नहीं हों तो कपड़े दो, वर्ना इस काल में दान देने के लिए रुपये कहाँ से लाएगा? सबसे अच्छा तो दान-वान देने की ज़रूरत ही नहीं है। अपने विचार अच्छे करो, दान देने के लिए धन कहाँ से लाए? सच्चा धन आया ही नहीं न! और सच्चा धन सरप्लस रहता भी नहीं है। ये लोग जो बड़े-बड़े दान देते हैं न, वह तो हिसाब से बाहर का, ऊपर का धन आ जाता है, वह है। फिर भी जो दान देते हैं उनके लिए गलत नहीं है। क्योंकि गलत रास्ते से लिया और अच्छे रास्ते पर दिया, तो भी बीच में पाप से मुक्त तो हुआ! खेत में बीज बोया, वह जब उगेगा तब उतना फल तो मिलेगा!

प्रश्नकर्ता : कविराज के पद में एक लाइन है न कि, '*दाणचोरी करनाराओ, सोयदाने छूटवा मथे* ' 'कर-चोरी करनेवाले, सूई जितना दान करके छूटने के लिए झूझें' तो इसमें एक जगह पर कर-चोरी की और दूसरी जगह पर दान दिया, तो उसने उतना तो प्राप्त किया, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, प्राप्त किया, ऐसा नहीं कह सकते। वह तो नर्क में जाने की निशानी है। वह तो दानत चोर है। कर-चोर ने चोरी की और सूई का दान दिया। उसके बदले दान नहीं देता और सीधा रहता न, तो भी अच्छा था। ऐसा है न, कि छह महीने जेल की सजा अच्छी, बीच में दो दिन बाग में ले जाएँ तो उसका क्या अर्थ है?

ये कवि तो क्या कहना चाहते हैं कि ये सब काला बाज़ार, कर-चोरी, सबकुछ करने के बाद फिर खुद का नाम नहीं बिगड़े, खुद का खराब नहीं दिखे, इस वजह से ये लोग पचास हज़ार दान दे देते हैं। इसे सूई का दान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी आज वैसे सात्विक लोग तो हैं नहीं न!

दादाश्री : संपूर्ण सात्विक की तो आशा रखी ही नहीं जा सकती न! लेकिन यह तो किसके लिए है कि जो बड़े लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं और इस तरफ एक लाख रुपये दान में देते हैं, वह किसलिए? नाम खराब नहीं हो, उसके लिए। अभी इस काल में ही ऐसा सूई का दान चल रहा है। यह बहुत समझने जैसा है। दूसरे लोग दान देते हैं, कुछ गृहस्थ होते हैं, साधारण स्थिति के होते हैं, वे लोग दान दें उसमें हर्ज नहीं है। यह तो सूई का दान देकर खुद का नाम बिगड़ने नहीं देते, खुद की इज़्ज़त ढँकने के लिए कपड़े बदल देते हैं! सिर्फ दिखावा करने के लिए इस तरह के दान देते हैं!

...लेकिन तख्ती में खत्म हो गया

अभी पूरी दुनिया का धन गटर में जा रहा है। इन गटरों के पाइप बड़े कर दिए हैं। वह किसलिए? कि धन को जाने के लिए स्थान चाहिए न? कमाया हुआ सबकुछ खा-पीकर बहाकर सब गटर में जाता है। एक भी पैसा सही मार्ग पर नहीं जाता और जो पैसा खर्च करते हैं, कॉलेज में दान दिया, फलाना दिया, वह सब इगोइज़्म है! बिना इगोइज़्म के जो पैसा जाए, वह सच्चा कहलाता है। वर्ना इससे तो अहंकार को पोषण मिलता रहता है। कीर्ति मिलती रहती है आराम से! लेकिन कीर्ति मिलने के बाद उसका फल आता है। वापस वह कीर्ति जब पलटती है तब क्या होता है? अपकीर्ति होती है। तब परेशानी ही परेशानी हो जाती है। उसके बजाय कीर्ति की आशा ही नहीं रखनी चाहिए। कीर्ति की आशा रखे तो अपकीर्ति आएगी न? जिसे कीर्ति की आशा नहीं है, उसे अपकीर्ति आएगी ही कैसे?

कोई धर्मदान में लाख रुपये दे और तख्ती रखवाए और कोई व्यक्ति एक रुपया ही दान में दे लेकिन गुप्त रूप से दे,

तो यह जो गुप्त रूप से देते हैं उसकी बहुत क़ीमत है। फिर भले ही एक रुपया दिया हो। और ये तख्ती लगवाते हैं, वह तो 'बैलेन्सशीट' पूरी हो गई। सौ का नोट आपने मुझे दिया और मैंने आपको छुट्टे दिए, उसमें मुझे लेना भी नहीं रहा और आपको देना भी नहीं रहा! इसी तरह ये लोग धर्मदान करके खुद के नाम की तख्ती लगवाते हैं, उसे फिर कुछ लेन-देन रहा ही नहीं न? क्योंकि जो धर्मदान दिया था, उसका मुआवज़ा उसने तख्ती लगवाकर वापस ले लिया। और जिसने एक ही रुपया गुप्त रूप से दिया, तो उसने देकर वापस लिया नहीं है, इसलिए उसका बैलेन्स बाकी रहा।

हम मंदिरों में और सभी जगह घूमे हैं, वहाँ कुछ जगह पर दीवारें तख्तियों, तख्तियों और सिर्फ तख्तियों से भरी हुई होती हैं। तख्तियों की वैल्यूएशन कितनी? तख्ती अर्थात् कीर्ति के लिए! और जहाँ कीर्ति हेतु ढेर सारी तख्तियाँ हों, वहाँ कोई इंसान देखता भी नहीं है कि इसमें क्या पढ़ना! पूरे मंदिर में एक ही तख्ती हो तो कोई पढ़ेगा, लेकिन ये तो ढेर सारी, पूरी की पूरी दीवारें तख्तीवाली बना दी हों तो क्या होगा? फिर भी लोग कहते हैं कि मेरे नाम की तख्ती लगवाना! लोगों को तख्तियाँ ही पसंद हैं न!

अंत में तो धर्म का ही साथ

ज़रूरत के समय तो सिर्फ धर्म ही आपकी मदद करने के लिए हाज़िर रहेगा, इसलिए धर्म के रास्ते पर लक्ष्मी जी को जाने देना। सिर्फ एक सुषमकाल में लक्ष्मी जी पर मोह करने योग्य था। वे लक्ष्मी जी तो आई नहीं! अभी इन सेठों को हार्टफेल और ब्लडप्रेशर कौन करवाता है? इस काल की लक्ष्मी ही करवाती है।

प्रश्नकर्ता : यदि जीवन में आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर हो तब क्या करें?

दादाश्री : एक साल बरसात नहीं हो तो किसान क्या कहते

हैं कि 'हमारी आर्थिक स्थिति खत्म हो गई।' ऐसा कहते हैं या नहीं कहते? वापस फिर दूसरे साल बरसात आए तब उनकी स्थिति सुधर जाती है। अर्थात् जब आर्थिक स्थिति कमज़ोर हो जाए, तब धीरज रखना चाहिए, खर्च कम कर देना चाहिए और किसी भी रास्ते मेहनत और प्रयत्न अधिक करने चाहिए। अर्थात् कमज़ोर परिस्थिति हो तभी यह सब करना चाहिए, वर्ना परिस्थिति अच्छी हो तब तो अपने आप ही गाड़ी चलती रहेगी। क्या अभी बहुत नाजुक स्थिति है? क्या-क्या परेशानी होती है?

प्रश्नकर्ता : कोई भी इच्छित चीज़ प्राप्त करनी हो तो देर लगती है।

दादाश्री : ओहो! इच्छित चीज़!! लेकिन इस शरीर को कौन सी चीज़ चाहिए, वह आप जानते हो?

प्रश्नकर्ता : यों तो भगवान की प्राप्ति ही मुख्य वस्तु है।

दादाश्री : भगवान की प्राप्ति के लिए यह शरीर है, लेकिन इसकी ज़रूरतें क्या-क्या हैं? रात को इतनी खिचड़ी दे दी हो, तो आपको पूरी रात ध्यान करने देगा या नहीं? यानी यह शरीर और कुछ नहीं माँगता, बाकी सब तो मन के तूफ़ान हैं! दो टाइम भोजन मिलता है या नहीं मिलता?

प्रश्नकर्ता : मिलता है।

दादाश्री : इस देह को आवश्यक खुराक ही देने की ज़रूरत है, इसे और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। नहीं तो फिर ये त्रिमंत्र रोज़ एक-एक घंटा बोलना न! यह बोलोगे तो आर्थिक परिस्थिति सुधर जाएगी। उसका उपाय करना चाहिए। उपाय करोगे तो सुधर जाएगी। आपको यह उपाय पसंद आया?

लक्ष्मी, मेहनत का फल या बुद्धि का?

बात को समझनी तो पड़ेगी न? ऐसे कब तक गप्प चलेगी?

और *उपाधि* पसंद तो है नहीं। यह मनुष्य देह *उपाधि* से मुक्त होने के लिए है, सिर्फ पैसे कमाने के लिए नहीं। पैसा कैसे कमाते होंगे? मेहनत से कमाते होंगे या बुद्धि से?

प्रश्नकर्ता : दोनों से।

दादाश्री : यदि पैसे मेहनत से कमाते, तो इन मज़दूरों के पास बहुत सारे पैसे होते। क्योंकि ये मज़दूर ही सबसे अधिक मेहनत करते हैं न! और पैसे बुद्धि से कमा रहे होते, तो ये सब पंडित हैं ही न! तो उनकी तो चप्पल भी आधी घिसी हुई होती है। इसलिए पैसे कमाने, वह बुद्धि का खेल नहीं है, न ही मेहनत का फल है। वह तो आपने पहले पुण्य किए हुए हैं, उसके फलस्वरूप आपको मिलते हैं और नुकसान, वह पाप किया है उसके फलस्वरूप है। लक्ष्मी पुण्य के और पाप के अधीन है। अतः यदि लक्ष्मी चाहिए तो हमें पुण्य-पाप का ध्यान रखना चाहिए।

लक्ष्मी के प्रति प्रीति! तो भगवान के प्रति?

पूरे जगत् ने लक्ष्मी को ही मुख्य माना है न? हर एक काम में लक्ष्मी ही मुख्य है। इसलिए लक्ष्मी पर अधिक प्रीति है। जब तक लक्ष्मी पर प्रीति अधिक रहेगी, तब तक भगवान पर प्रीति नहीं रह सकेगी। भगवान पर प्रीति होने के बाद लक्ष्मी पर प्रीति खत्म हो जाती है। दोनों में से एक पर प्रीति रहेगी। या तो लक्ष्मी के साथ या फिर नारायण के साथ। आपको ठीक लगे वहाँ पर रहो। लक्ष्मी दुःख देगी। जो सुख देती है, वह दुःख भी देगी। जबकि नारायण सुख नहीं देते और दुःख भी नहीं देते, निरंतर आनंद में रखते हैं, मुक्तभाव में रखते हैं!

ज्ञानीपुरुष के पास एक बार दिल से हँसे, तभी से भीतर भगवान के साथ तार जोइन्ट हो जाता है। क्योंकि आपके भीतर भगवान बैठे हुए हैं, हमारे भीतर भी भगवान बैठे हुए हैं। लेकिन

हमारे भीतर भगवान संपूर्ण व्यक्त हो चुके हैं, जबकि आप में व्यक्त नहीं हुए हैं, बस उतना ही है। लेकिन किस प्रकार व्यक्त होंगे? जब तक भगवान के सम्मुख नहीं हुए, तब तक किस तरह व्यक्त होंगे? आप भगवान के सम्मुख हुए थे कभी भी?

प्रश्नकर्ता : यों तो हम लक्ष्मी के सम्मुख हुए हैं।

दादाश्री : वह तो पूरा जगत् ही लक्ष्मी के सम्मुख हुआ है न! और आप सेठ जी लक्ष्मी के सम्मुख हुए हो या विमुख?

प्रश्नकर्ता : मैं तो उसके प्रति उदासीन हूँ!

दादाश्री : ऐसा? तो आप सम्मुख भी नहीं और विमुख भी नहीं हो? ऐसा? उदासीन, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है। लक्ष्मी आए तब भी ठीक है और नहीं आए तब भी ठीक है।

यह तो कैसा भोगवटा?

लोगों को लक्ष्मी को संभालना भी नहीं आता और भोगना भी नहीं आता। भोगते समय कहेंगे कि, 'इतना महँगा? इतना महँगा लिया जाता होगा?' अरे, चुपचाप भोग न! लेकिन भोगते समय भी दुःख, कमाते हुए भी दुःख! लोग परेशान करें, ऐसे में कमाना पड़ता है। कुछ तो उधार के पैसे वापस नहीं देते, अतः कमाते हुए भी दुःख और संभालते हुए भी दुःख! संभालते रहें, तब भी बैंक में रह नहीं पाते न! बैंक के खाते का मतलब ही क्रेडिट और डेबिट, *पूरण* और *गलन*! लक्ष्मी जाती है तब भी बहुत दुःख देती है। 'ये इतने महँगे आम कहीं लिए जाते होंगे? यह सब्ज़ी इतनी महँगी क्यों ली?' अरे, सभी में तू महँगा, महँगा कहता रहता है। महँगा किसे कहता है तू? तो सस्ता किसे कहता है? यह तो एक प्रकार की बुरी आदत पड़ी हुई है। उसकी दृष्टि बैठ गई है तो फिर क्या हो? हम क्या कहते हैं कि जो आया, जो महँगे भाव का आया, वह सब करेक्ट ही है, 'व्यवस्थित' है। लेकिन

उसे समझ में नहीं आता न? पहले से उसकी दृष्टि बैठ चुकी है, वह छूटती नहीं न!

कुछ तो इन्कमटैक्स पचाकर बैठे होते हैं, पच्चीस-पच्चीस करोड़ रुपये दबाकर बैठे होते हैं। लेकिन वे जानते नहीं हैं कि सभी रुपये चले जाएँगे। बाद में जब इन्कमटैक्सवाले नोटिस देंगे तब रुपये कहाँ से निकालेगा? यह तो निरा फँसाव है! इन ऊँचे चढ़नेवाले को तो बहुत जोखिमदारी है, लेकिन वह जानता ही नहीं न! बल्कि, पूरे दिन किस तरह से इन्कमटैक्स बचाऊँ, वही ध्यान! इसीलिए हम कहते हैं न, कि यह तो तिर्यंच की रिटर्न टिकट लेकर आया है।

रुपयों का नियम कैसा है कि कुछ दिन टिकते हैं और फिर चले जाते हैं। चले ही जाते हैं। वह रुपया घूमता ज़रूर है, फिर वह नफा ले आता है, नुकसान ले आता है या ब्याज ले आता है, लेकिन घूमता ज़रूर है, वह बैठा नहीं रहता। वह स्वभाव से ही चंचल है। यानी यह ऊपर चढ़ गया हो तो फिर ऊपर उसे फँसाव लगता है। उतरते समय उतर नहीं पाता, चढ़ते समय तो जोश में चढ़ जाता है। चढ़ते समय तो जोश में ऐसे पकड़-पकड़कर चढ़ जाता है, लेकिन उतरते समय तो, जैसे बिल्ली मुँह मटकी में डाले, ज़ोर से डाले और फिर निकालते समय कैसा होता है? वैसा होता है।

सहज प्रयत्न से, संधान मिलेगा ही

इसलिए हम कहते हैं कि अपने पुण्य का खाओ। पुण्य किसे कहते हैं? घर आकर सुबह साढ़े पाँच बजे उठाए कि, 'भाई, हमें बंगला बनवाना है और उसका कॉन्ट्रैक्ट आपको देना है।' ऐसा 'व्यवस्थित' है! यदि मालिक भागदौड़ नहीं करे फिर भी 'व्यवस्थित' मालिक को उठाने आए और मालिक यदि बंगला बनवाने के लिए भागदौड़ करे, तो 'व्यवस्थित' क्या कहेगा कि, 'होगा अब!'

'व्यवस्थित' से बाहर कुछ हो सके, ऐसा है नहीं। फिर भी हमें 'व्यवस्थित' का अर्थ ऐसा नहीं करना चाहिए कि, 'मैं सो जाता हूँ, सबकुछ हो जाएगा।' यदि 'व्यवस्थित' कहना हो तो अपना प्रयत्न होना चाहिए। फिर भी प्रयत्न तो 'व्यवस्थित' करवाता है उतने ही करने होते हैं। लेकिन अपनी इच्छा क्या होनी चाहिए? प्रयत्न करने की। फिर 'व्यवस्थित' जितना करवाए उतने ही प्रयत्न में। फिर दस बजे से वसूली के लिए चलने लगे, वह व्यक्ति नहीं मिला तब फिर से बारह बजे गया तो भी नहीं मिला तब फिर घर आकर वापस डेढ़ बजे जाए, ऐसा नहीं करना है। प्रयत्न अर्थात् एक बार जाकर आना, फिर वापस विचार मत करना। यह तो प्रयत्न करते हैं, वह भी कितना कि धक्के खाते रहते हैं। प्रयत्न तो सहज प्रयत्न होने चाहिए। सहज प्रयत्न किसे कहते हैं कि हम जिसे ढूँढ रहे हों, वह सामने मिल जाए। यों उसके घर जाए तो वह नहीं मिलता, लेकिन वापस लौटते समय मिल जाता है। मेरा सबकुछ सहज प्रयत्न से हो जाता है। सहज रूप से ही ऐसा हिसाब सेट हो गया है। क्योंकि हमारी दख़ल नहीं है किसी प्रकार की!

हिसाबवाली रकम, कम-ज़्यादा होगी ही नहीं

लक्ष्मी को आगे-पीछे करनेवाला कोई है ही नहीं। कम या ज़्यादा करनेवाला भी कोई नहीं है। यह तो सिर्फ अहंकार ही करता है कि, 'यह सब मैंने कमाया।' लक्ष्मी तो आपका हिसाब है और वह आप जिस तरह से माँगोगे उस तरह से आपको मिलेगा। कोई आप से कहे कि, 'आपका टेन्डर किस प्रकार का है?' तब आप कहो कि, 'साहब, सभी प्रकार से चोरी करके ही कमाना है।' तब कहेंगे कि, 'तेरी रकम तुझे उसी तरह मिलेगी।' आप कहो कि, 'साहब, मुझे एक पैसे की भी चोरी नहीं करनी है।' तब भी उतनी ही रकम मिलेगी। रकम इज़ द सेम। लेकिन यह तो आपका वहाँ पर टेस्ट होता है

और यदि चोरी करने से रकम बढ़ जाती तो कभी किसी को नुकसान होता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अभी लोभ के कारण यह अधर्म घुस गया है न?

दादाश्री : हाँ, इस लोभ के कारण ही बहुत नुकसान होता है, वह लोभ ही उसे फँसाता है। 'ऐसा करो न, तो इतने दस हज़ार बच जाएँगे।' इसीलिए तो लोभ को दुश्मन कहा है न! लोभ उल्टा सिखाकर मनुष्य को अंधा कर देता है, 'ये दस हज़ार बच रहे हैं इसलिए लिख दो न उल्टा!'

प्रश्नकर्ता : और लोभ को बढ़ानेवाली अपनी सरकार ही है न?

दादाश्री : सरकार यानी अंत में तो हम ही हैं, वह अपना ही स्वरूप है। यानी वह अपने ही सिर पर आता है, तो फिर किसे गालियाँ देंगे? सरकार तो अपना ही प्रतीक है। तो किसे कहेंगे हम? अतः भूल खुद की ही है। सभी प्रकार से यदि खुद की ही भूल देखेगा तो भूल खत्म होगी, नहीं तो भूल खत्म नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : हम लोगों को आज ऐसा लगता है कि हमारे बच्चे कितने पैसे खर्च करते हैं, लेकिन हमारे ज़माने में एक रुपये मन बाजरा था, और अभी?

दादाश्री : बात ठीक है! ऐसा है न, मैं आपको सही बात कह दूँ, यह हकीकत जानने जैसी है कि यदि इतनी महँगाई हो जाए तो पब्लिक खाने-पीने का कुछ भी नहीं पा सकेगी। इसलिए फिर मैंने ज्ञान से देखा कि, 'यह क्या है फिर? ये लोग किस तरह तेल लाकर खाते हैं? किस तरह दस रुपये भाव की चीनी लाकर खाते हैं? इतनी महँगी चीज़ें ये किस तरह खाते होंगे? वह सब हिसाब निकाला। अंत में ज्ञान से देखा

तब पता चला कि वहाँ पर रुपयों का झंझट नहीं होता। आपको कितना घी, कितना तेल, कितनी सब्ज़ी, कितना वेजिटेबल घी, कितना शुद्ध घी, कितना दूध, इन सबका हिसाब आपके साथ जोइन्ट हो चुका है। उसी कारण ये सभी चीज़ें मिलती हैं, वर्ना ये तो किसी को मिलती ही नहीं, धनवानों को भी नहीं मिलतीं।

निंदा बंद होने से, लक्ष्मी छलके

अपना यह देश पैसेवाला कब बनेगा? कब लक्ष्मीवान और सुखी होगा? जब निंदा और तिरस्कार बंद हो जाएँगे तब। ये दोनों बंद हुए कि देश में बेहिसाब पैसे और लक्ष्मी होंगे।

प्रश्नकर्ता : निंदा और तिरस्कार कब बंद होंगे?

दादाश्री : जब लोभ बढ़े तब निंदा और तिरस्कार, दोनों बंद हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लोभ बढ़े तो कपट बढ़ता है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन लोगों का तिरस्कार और निंदा करना तो बंद हो जाएगा न! लोभी मनुष्य को कभी समय होता ही नहीं और लोभी तो अपनी ही मस्ती में रहता है, इसलिए फिर उसे लक्ष्मी के अंतराय नहीं पड़ते। लक्ष्मी के अंतराय तो किसे होते हैं? कि जिसे यह सब होता है न कि 'मगनलाल ऐसे हैं, फलाने भाई ऐसे हैं।' जहाँ ऐसी निंदा है, वहाँ पर लक्ष्मी नहीं है। 'यह नीची जाति का है, यह ऊँची जाति का है, यह ऐसा है, यह वैसा है।' लोभी को ऐसा कोई झंझट रहता ही नहीं। कोई गँवार भी अगर उसका ग्राहक हो न तो उसे भी कहेगा कि, 'आओ भाई, बैठो सेठ, यहाँ गद्दी पर बैठो न!'

प्रश्नकर्ता : तो फिर लोभी को ऐसा कोई अंतराय बाधक नहीं है?

दादाश्री : लोभी यानी सिर्फ पैसे का ही लोभ हो, ऐसा नहीं। सुख का भी लोभ होता है।

प्रश्नकर्ता : मान का लोभ होता है?

दादाश्री : मान का लोभ नहीं माना जाता, सुख का लोभ कहा जाता है। मान के लोभ में तो फिर निंदा घुस जाती है।

प्रश्नकर्ता : तो इस मुंबई में लोग मान के लोभ में नहीं है?

दादाश्री : नहीं, वास्तव में यह मान का लोभ नहीं माना जाता, सुख का लोभ होता है। मान का लोभ कब कहलाता है कि दूसरों की निंदा करने का उसे समय मिले। मुंबई शहर में लोगों से पूछकर आओ कि 'आपको दूसरों की निंदा करने का समय है?' तब कहेंगे, 'नहीं।' यानी घड़ीभर का भी खाली समय इन लोगों के पास नहीं होता। और वहाँ वढवाण(गुजरात का एक गाँव) में जाएँ तो?

प्रश्नकर्ता : वहाँ सभी जगह यही होता है।

दादाश्री : फिर भी हमने क्या कहा है कि, इस हिन्दुस्तान में निंदा और तिरस्कार कम होने लगे हैं और लोभ बढ़ा है। सुख का लोभ लगा है, इसलिए हिन्दुस्तान अच्छा बनेगा। इस लक्षण पर से मैं समझ जाता हूँ। भले ही ज़रा मोह बढ़ेगा, लेकिन दूसरा सब निंदा, तिरस्कार वगैरह कम होंगे न?

जो लोभी होता है और उसके पास यदि हमारे पैसे फँसे हुए हों और हम उसे गालियाँ दें, तब वह हँसता है। 'अरे, मैं गालियाँ दे रहा हूँ और तू हँस रहा है?' तब फिर अड़ोसी-पड़ोसी और रास्ते चलते लोग हमें क्या कहेंगे कि, 'यह चिढ़ रहा है, इसलिए यही आदमी नालायक है।' इसे देखो न बेचारा हँस रहा है, और वह बल्कि अपने सिर पड़ेगा। रुपये गये अपने और ऊपर

से लोभी के सामने गलत दिखे। समझ में आया न कि लोभी कैसा होता है?

प्रश्नकर्ता : लोभी खुद के सुख में ही रहा करता है।

दादाश्री : वह समझता है कि अभी यह थककर चला जाएगा लेकिन अपने को तो ये रुपये मिल गए न!

ऐसी बात लोग समझ जाएँ तो सुखी हो जाएँगे न!

यह कुदरत हमारी हेल्प में है, यह बात पक्की है। इसलिए मैंने कह रखा है कि २००५ में हिन्दुस्तान वर्ल्ड का केन्द्र बन जाएगा। अतः यह बात बहुत समझने जैसी है। लोग दु:खी क्यों थे, वह मैंने ढूँढ निकाला, और अभी गाँववाले किसलिए दु:खी हैं? अभी तक वे निंदा के ही धंधे में पड़े हुए हैं। आज के ये जीव तो और कुछ नहीं हो तो रेडियो-टी.वी. की मस्ती में ही रहते हैं! ये लोग किसी की निंदा में नहीं पड़ते। ये तो टी.वी. देखते हैं, और भी कुछ देखते हैं, फलाना देखते हैं, वह भी खुद की आँखें बिगाड़कर। लोगों की आँखें थोड़े ही बिगाड़ते हैं? खुद की ही ज़िम्मेदारी है न! अपना पूरा देश निंदा से, भयंकर निंदा से खत्म हो गया था, शास्त्रकारों ने नियम बताया है कि अवश्य टीका करना। टीका-टिप्पणी नहीं करोगे तो फिर लोग सुधरेंगे नहीं। उस टीका का इग्ज़ैगरेशन हो गया और उससे फिर निंदा आ गई! जो विटामिन था, उसी का नाश कर दिया!

मैं तो पोज़िटिव करना चाहता हूँ, नेगेटिव सेन्स लाना ही नहीं चाहता। यदि वह अच्छा हो न, तो उसे अच्छे में पुष्टि दे देता हूँ। यानी अच्छा इतना अधिक प्रकाशमान हो जाए, इतनी अधिक जगह रोकता जाए कि नेगेटिव खत्म ही हो जाए। इस जगत् में अभी तक नेगेटिव ही टकराव करवाता रहा है! लक्ष्मी आने के बाद भी सुख नहीं है। यदि अंतरदाह रहे तो वह सब पापानुबंधी

पुण्य की लक्ष्मी है, वर्ना सच्ची लक्ष्मी एक भी क्लेश नहीं होने देती। यानी लक्ष्मी के तो इतने अच्छे गुण हैं!

बिना 'कारण' के 'क्लेम' नहीं होता

प्रश्नकर्ता : अकारण तो कुछ होता ही नहीं है न?

दादाश्री : जगत् अकारण है ही नहीं। जहाँ अकारण होता है, वहाँ मोक्ष हो जाता है! जब कोई भी 'कारण' नहीं रहे, जहाँ कोई भी क्लेम नहीं रहे, तब इस जगत् का अंत आ जाता है! यह तो घर के सभी लोगों का क्लेम, ग्राहकों का क्लेम! 'अरे, मेरा नाम क्यों दे रहे हो?' तब कहेंगे, 'ज़रा आप से मिलना था!' यानी क्लेम है सभी का। और फिर इन्कम टैक्सवाला भी बुलाता है, डराता भी है! किसलिए? क्लेम है। यहाँ पर आए तो कोई कारण होगा या अकारण? यानी बिना कारण के तो आया ही नहीं जा सकता, अकारण कुछ होता ही नहीं। कोई कारण तो होगा ही! भले ही, आपको सोचना नहीं आए, वह बात अलग है लेकिन बिना कारण के कार्य नहीं होते!

बंधन, वस्तु का या राग-द्वेष का?

किसी भी क़ीमत पर सभी हिसाब चुकाने हैं। यह पूरा जन्म हिसाब चुकाने के लिए है। जन्म हुआ तब से मरने तक सब अनिवार्य है।

प्रश्नकर्ता : यह दिवालिया निकाले और पैसे नहीं चुकाए, तो उसे फिर दूसरे जन्म में चुकाना पड़ता है?

दादाश्री : उसे फिर पैसा दिखेगा ही नहीं, रुपया उसके हाथ को छुएगा ही नहीं फिर। अपना नियम क्या कहता है? कि रुपये वापस देने के लिए आपका भाव नहीं बिगड़ना चाहिए, तो ज़रूर एक दिन आपके पास रुपये आएँगे और कर्ज़ा चुकाया जा सकेगा। भले ही कितने भी रुपये होंगे, लेकिन अंत में कहीं रुपये

साथ में नहीं आते, इसलिए कुछ काम निकाल लो। अब फिर से मोक्षमार्ग नहीं मिलेगा। इक्यासी हज़ार सालों तक मोक्षमार्ग भी हाथ में नहीं आएगा। यह अंतिम 'स्टैन्ड' है, अब आगे 'स्टैन्ड' नहीं है।

पैसों का या इस तरह का संसार का कर्ज़ा नहीं होता, राग-द्वेष का कर्ज़ा होता है। पैसों का कर्ज़ा होता तो क्या हम नहीं कहते कि, 'भाई, पाँच सौ पूरे माँग रहा है तो पाँच सौ पूरे दे देना, वर्ना तू छूट नहीं पाएगा!' हम तो क्या कहते हैं कि, 'इसका निकाल करना, पचास देकर भी तू निकाल कर लेना।' उसे पूछना कि, 'तू खुश है न?' तब वह कहे कि, 'हाँ, मैं खुश हूँ।' तो फिर निकाल हो गया।

जहाँ-जहाँ आपने राग-द्वेष किए होंगे, तो वे राग-द्वेष आपको फिर से मिलेंगे।

हिसाबी बंधन, रुपये से या भाव से?

प्रश्नकर्ता : भाव शुद्ध होना चाहिए न? भाव ही बिगड़ जाए तो वापस किस तरह कर पाएँगे?

दादाश्री : यदि भाव शुद्ध नहीं है, तो उसी पर से हम हिसाब लगा सकते हैं कि ये दिए नहीं जा सकेंगे, और भाव शुद्ध हो तो समझना कि ये वापस दिए जा सकेंगे। हमें अपने आप तौल लेना चाहिए।

हमें अड़चन हो तो हमें इतना देखना चाहिए कि अपना भाव शुद्ध रहता है या नहीं? तो ज़रूर दिए जा सकेंगे, फिर चिंता करने जैसा नहीं है।

आपने किसी से पैसे लिए हों, और आपका भाव शुद्ध रहे तो समझना कि ये पैसे अपने से वापस दिए जा सकेंगे, फिर उसके लिए चिंता-वरीज़ मत करना। भाव शुद्ध रहता है या नहीं, उतना

ही देखना है, यही उसका लेवल है। सामनेवाला भाव शुद्ध रखे या न रखे, उस पर से आप समझ सकते हैं। उसका भाव शुद्ध नहीं रहता हो तभी से समझ जाना कि ये पैसे जानेवाले हैं।

भाव तो साफ होना ही चाहिए। साफ भाव अर्थात् आपके अधिकार से आप क्या करते हो? तब कहेगा कि, 'आज रुपये हों तो आज ही दे दूँ!' वह कहलाता है चोखा भाव। भाव में तो ऐसा ही रहता है कि कब जल्दी से जल्दी चुका दूँ।

यह तो एक्स्ट्रा आइटम

एक लेनदार एक व्यक्ति को परेशान कर रहा था। वह मुझसे कहने आया कि, 'यह लेनदार मुझे खूब गालियाँ दे रहा था।' मैंने कहा कि, 'वह आए तब मुझे बुलाना।' फिर वह लेनदार आया, तब उस भाई का बेटा मुझे बुलाने आया। मैं उसके घर गया। मैं बाहर बैठा और वह लेनदार अंदर उस व्यक्ति से कह रहा था, 'आप ऐसी नालायकी करते हो? यह तो बदमाशी है।' ऐसी-वैसी बहुत गालियाँ देने लगा। इसलिए फिर मैंने अंदर जाकर कहा, 'आप लेनदार हो न?' तब कहे, 'हाँ, मैं लेनदार हूँ।' मैंने कहा, 'और यह देनेवाला है। आप दोनों का एग्रीमेन्ट है। उसने देने का एग्रीमेन्ट किया है और आपने लेने का एग्रीमेन्ट किया है और ये जो गालियाँ आप दे रहे हो वह एक्स्ट्रा आइटम है। उसका पेमेन्ट करना पड़ेगा। गालियाँ देने की शर्त एग्रीमेन्ट में नहीं रखी है। हर एक गाली के चालीस रुपये कटेंगे। विनय से बाहर जो कुछ भी बोला तो वह एक्स्ट्रा आइटम है, क्योंकि तू एग्रीमेन्ट से बाहर चला गया है।' ऐसा कहने पर वह घनचक्कर भी सीधा हो जाएगा, और फिर से ऐसी गालियाँ नहीं देगा न! हम तो बहुत कुछ सुना देते हैं ताकि वह जवाब नहीं दे पाए और वह सीधा हो जाए।

हमने तो इस देह को सट्टे में रख दिया है। जिसने सट्टे

में रख दिया हो, उसे कोई डर होगा? हम बहुत कुछ कहते हैं, लेकिन वह उसके हित के लिए होता है। हमारा खुद का हित तो हो चुका है, सर्वस्व हित हो चुका है। वह आपके हित के लिए मुझे वैसा कहना पड़ रहा है। फिर लेनदार सीधा चलेगा न? उसे समझ नहीं है कि इन गालियों का मतलब क्या है? यह 'एकस्ट्रा आइटम' है। इसे देना है, वह शर्त है, तुझे लेना है, वह शर्त है। और यह एकस्ट्रा आइटम कहाँ से आया? इस 'एकस्ट्रा आइटम' के पैसे देने पड़ेंगे! क्योंकि, तू 'एकस्ट्रा' क्यों बोला?

दृष्टि के अनुसार जीवन गुज़र जाता है

इन लोगों का तो ऐसा है कि ताश खेलने से पहले ज्ञान रहता है कि यह ताश तो मनोरजंन के लिए खेल रहे हैं। खेलने के बाद हम पूछें कि कैसा है? तो कहेंगे कि, 'मनोरजंन के लिए खेल रहे थे।' लेकिन जब ताश खेलते हैं न, उस समय राग-द्वेष करते हैं, घोटाले करते हैं, सबकुछ करते हैं। ऐसा है इस जीव का स्वभाव। यदि मनोरंजन के लिए खेल रहे हो तो मनोरंजन ही करो न! लेकिन उसमें घोटाला करने की ज़रूरत ही कहाँ है? मनोरंजन करने बैठें तो मनोरंजन ही करना पड़ेगा न? तो ऐसे घोटाले करके सामनेवाले को 'टोपी' पहना देते हैं। यानी जीव का स्वभाव मूल से ही टेढ़ा है और उसी वजह से मार खाता रहता है। वीतराग जैसे समझदार हो जाएँ न, तो कोई नुकसान नहीं।

उपयोगमय जीवन किस प्रकार?

अगर नाखून बाहर रास्ते में फेंक दे तो, उसे खींचने के लिए कितनी चींटियाँ आती हैं! और उन पर किसी का पैर पड़े तो वे सभी चींटियाँ मर जाएँगी। इसमें निमित्त डालनेवाला बनता है।

अतः यह तो बहुत उपयोगपूर्वक, विचारपूर्वक जीवन जीना है कि 'इसका परिणाम क्या आएगा? इसका परिणाम क्या आएगा?' तब कहते हैं, 'वे परिणाम सोचते-सोचते आत्मा वैसा ही हो जाएगा?' तब कहे, 'नहीं, उन परिणामों के विचारों को जो जानता है, वह आत्मा है।' लेकिन परिणाम तो सीधे ही चाहिए न?

आप नाखून का टुकड़ा डालकर तो देखना, चींटियों को सुगंध आ ही जाती है। उससे वे तुरंत इकट्ठी हो ही जाएँगी और बाल का टुकड़ा आए तो वहाँ वे इकट्ठी नहीं होतीं। बालों में भी सुगंध होती है और नाखून में भी सुगंध होती है, लेकिन बाल के पास नहीं आतीं।

यह सब बारीकी से जीना चाहिए, सही है या नहीं?

[१४]

पसंद, प्राकृत गुणों की

जगत् संबंध की यथार्थता...

ज्ञान नहीं हो और तांबे का घड़ा खो जाए तो औरतों को क्या होता है? अंदर ऐसा लगता रहता है जैसे आत्मा खो गया हो, रात को नींद में भी ऐसा ही सब लगता है! और मटकी फूट जाए तो? तो कहेगी, 'भले ही फूट गई! दो आने की ही तो थी!' यानी उसे कुछ भी नहीं होता। इसी तरह यह जगत् जब 'मटकी जैसा' दिखेगा, तब आत्मा की क़ीमत होगी! लेकिन जब तक यह तांबे जैसा लगता है, तब तक परेशानी है। वास्तव में तो यह जगत् उलझन जैसा है ही नहीं। यह तो सिर्फ भ्रांति है, गांठ ही पड़ चुकी है। ऐसे आँख के नीचे हाथ रख दे तब दो दीये दिखते हैं। अरे, हाथ छोड़ दे न चुपचाप! ज्ञानी के कहने से छोड़। तब कहेगा, 'नहीं साहब, ये दो हैं, उसकी बजाय अंदर कुछ नई ही तरह का हो जाएगा तो!' अरे, एक ही है। तुझे दो लगते हैं, वही तेरी भ्रांति है!

इस दुनिया को यथार्थ रूप से जैसा है वैसा जान लें तो, जीवन जीने लायक है। यथार्थ जान लें तो संसारी चिंता-*उपाधि* नहीं रहेगी। तब फिर जीने लायक लगेगा!

प्रश्नकर्ता : मनुष्य का जगत् के साथ और परमात्मा के साथ किस प्रकार का संबंध है?

दादाश्री : जगत् के साथ का उसका संबंध भ्रांतिमय संबंध

है और परमात्मा के साथ का संबंध सच्चा संबंध है, लेकिन जब तक यह संबंध है तब तक परमात्मा के साथ संबंध नहीं है। और परमात्मा से संबंध हो जाने के बाद यह संबंध नहीं रहेगा। आपको दोनों ही संबंध रखने हैं एक साथ? दोनों संबंध रखने हों तो परमात्मा की भक्ति करो, लेकिन पहचानकर भक्ति करो। नहीं तो आप भक्त और वे भगवान, इस तरह 'तू ही, तू ही' करते रहोगे तो कुछ नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : भगवान को सबकुछ समर्पण करके रहना, वह सही, और सुखी होने का मार्ग है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन भगवान को समर्पण करके कोई रहा ही नहीं न इस दुनिया में! मुँह पर बोलते ज़रूर हैं कि भगवान को समर्पण! लेकिन सभी ने पत्नी को समर्पण किया हुआ है। व्यवहार में बोलते हैं कि भगवान को समर्पण किया है, भक्ति करते हैं तब भगवान को समर्पण बोलते हैं, लेकिन यदि भगवान को समर्पण कर लिया हो तो फिर उसे दुःख ही क्या रहेगा?

...तो अहंकार ठिकाने रहेगा

प्रश्नकर्ता : इच्छाएँ पूरी हों, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, यह कलियुग है, इसमें जो इच्छाएँ होती हैं, यदि उनकी प्राप्ति हो जाए तो अपना अहंकार बढ़ जाएगा और फिर गाड़ी उल्टी चलेगी। इसलिए इस कलियुग में तो हमेशा उसे ठोकर लगे न, तभी अच्छा है। यानी हर एक युग में यह वाक्य अलग-अलग प्रकार से होता है। अतः इस युग के संदर्भ में यह वाक्य इस तरह कहा जाएगा। अभी यदि इच्छा के अनुसार मिल जाएगा तो उसका अहंकार बढ़ जाएगा। मिलता है सब पुण्य के हिसाब से और बढ़ता है क्या? अहंकार, 'मैं हूँ।' अतः ये जितनी भी इच्छाएँ होती हैं न, यदि उस अनुसार नहीं होगा तब उसका अहंकार ठिकाने रहेगा और बात को समझने लगेगा। जब

ठोकरें लगें, तब समझ में आता है। नहीं तो समझ में आता ही नहीं न! इच्छा हो और मिल जाए, उसी से तो ये लोग चढ़ बैठे हैं। इच्छा के अनुसार मिला तभी तो यह दशा हो गई बेचारों की! जो पुण्य था वह तो खर्च हो गया और बल्कि फँस गया और अहंकार पागल हो गया! अहंकार को बढ़ते देर नहीं लगती। फल कौन देता है? पुण्य देता है, जबकि मन में क्या समझता है कि 'मैं ही कर रहा हूँ।' ऐसे अहंकारी को तो मार पड़े, वही अच्छा है। ठोकरें खा-खाकर उसे जो प्राप्ति होगी, उसी में फायदा है।

इच्छा होते ही तुरंत मिल जाए तो घर में पैर ऊपर ही रखता है, पिता को भी कुछ नहीं मानता और न ही किसी और को मानता है। अतः यदि इच्छा होते ही मिल जाए तो समझना कि अधोगति में जाएगा, उसका दिमाग़ बढ़ते-बढ़ते घनचक्कर हो जाता है। थोड़े-बहुत लोगों को इच्छा के अनुसार मिला है, वे तो अभी पाँच-दस लाख के फ्लेट में रहते हैं और उन सभी की जानवरों जैसी दशा हो गई है। फ्लेट होता है दस लाख का, लेकिन वह उसके लिए हितकारी नहीं है, लेकिन उनकी यह स्थिति तो दया रखने जैसी है।

मुश्किल में लालच, क्यों?

पूरी ज़िंदगी भय नहीं, घबराहट नहीं। संसार में जो कुछ भी होना होगा, उसमें कुछ भी 'व्यवस्थित' से बाहर नहीं होगा। कोई हाथ देखकर कहे कि, 'आपकी लाइफ में घात है।' तब कहना कि, 'एक हो, दो हों या चार हों, उसमें क्या हर्ज है मुझे?' क्योंकि हम लोग जानते हैं कि यह जो घात है, वह तो 'व्यवस्थित' के हाथ में है। ज्योतिषी उसमें क्या करेगा? और जिसे 'व्यवस्थित' के बारे में मालूम नहीं हो, वह तो 'घात है' सुनते ही अंदर चौंक जाएगा कि कितनी उम्र में है? इन ज्योतिषी लोगों की दुकानदारी तो योजनाबद्ध है। ज़रा मुँह ढीला देखा कि तुरंत ही

घात है, कह देते हैं। फिर कहता है, 'लक्ष्मी मिलेगी ऐसा लगता है।' तब जेब में अगर सिर्फ छह रुपये हों, फिर भी वह पाँच रुपये का नोट दे देता है। अरे, छह ही रुपये हैं और पाँच कहाँ दे रहा है? अब उस ज्योतिषी के पैरों में देखने जाएँ तो चप्पल भी नहीं होते। अरे, उसके पैरों में चप्पल नहीं हैं, वह तेरा क्या देखकर देगा? कुछ बड़े सेठ होते हैं, उन सेठों को ज्योतिषी के पास बैठने में शर्म आती है। वे ज्योतिषी को ही अपने बंगले पर बुलाते हैं। अब ज्योतिषी के पैर में न तो हैं चप्पल, न ही उसमें कोई बरकत, उसके मुँह पर कोई नूर नहीं है, वह क्या तेरा देखकर देगा? किसी नूरवाले के पास जा, लेकिन ये लोग तो लालच के मारे हर कहीं हाथ मारते हैं। ज्योतिषी भी बहुत पक्के होते हैं, चेहरे से ही भांप लेते हैं कि ये भाई इतने पानी में हैं। ऐसा भी पहचान जाते हैं कि 'ये भाई कुछ देंगे ही नहीं,' इसलिए उनके पास जाते हुए भी डरते हैं यानी मनुष्य को पहचान लेते हैं। ऐसे आँखें देखते हैं, कान देखते हैं, मुँह देखते हैं, सबकुछ देखकर ही फिर शुरूआत करते हैं। ऐसे सामग्री तो ढूँढेंगे न? उन्हें लक्षणों का भान होता है, सब पता होता है। बहुत पक्के होते हैं क्योंकि बहुत लोगों को देखा होता है न! शाम तक पाँच-दस ग्राहक मिल ही जाते हैं। लोग बेचारे लालच के मारे क्या नहीं करते? डर के मारे जो कहे, वह करते हैं। अरे, ऊपर कोई बाप भी नहीं है। तू इस तरह ज्योतिषी वगैरह कुछ मत ढूँढ। अकेला जाकर बैठ, अकेले में जाकर! ज्ञान नहीं मिला हो, फिर भी ऐसे किसी के कहे अनुसार कर न! सबसे बड़ा 'बाप' तो भीतर बैठा हुआ है! उस भीतरवाले को 'बाप, बाप' करेगा, तब भी उन्हें पहुँच जाएगा, लेकिन लालची लोग तो बाहर धोखा खाते ही रहते हैं न! उसे लूट ही लेते हैं न चारों ओर से!

सबसे बड़ा गुण, अगर लालच नहीं हो तो, वह असल है, दरअसल! और लालच! इनके पास क्या लालच? ये दो हाथवाले लोग! इनके पास क्या ढूँढना है? आज पच्चीस अरब रुपये हों,

फिर भी कल भिखारी बनकर खड़ा रहेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इनके पास क्या लालच करना? अंदरवाले का नाम ले, नहीं तो ऊपरवाले का नाम ले। ऊपरवाले से कहेगा, तो भी भीतर पहुँचेगा!

स्वार्थवाले प्रेम ने, बढ़ाया संसार

घाट विनाना निर्मल प्रेमनी
(नि:स्वार्थ निर्मल प्रेम की)
पंदरे क्षेत्रोमां फेली जो सुवास... – नवनीत
(पंद्रह क्षेत्रों में फैली जो सुगंध)

नि:स्वार्थ प्रेम सीख आओ सभी, वह सीखने लायक है। यों प्रेम तो हर कोई रखता है, लेकिन नि:स्वार्थ प्रेम की तो बात ही अलग है न! ये सब रखते हैं न, वे सब प्रेम नहीं रखते, लेकिन अब सिर्फ अंदर से स्वार्थ निकाल लें तो क्या होगा? पंद्रह क्षेत्रों में खुश्बू फैलेगी, कविराज ऐसा कहते हैं! इन कविराज ने कुछ भी बुद्धिपूर्वक नहीं लिखा है, वह तो सहजभाव से निकला है। जो सत्य था वह बाहर आ गया है, पूरा सत्य ही बाहर आ गया है।

अंदर से सभी स्वार्थ निकाल लें तो फिर क्या बचा? निर्मल प्रेम बचा! 'यह मेरे काम का है' ऐसा विचार आना ही क्यों चाहिए? कुछ लोगों को तो कुछ भी नहीं हुआ हो, फिर भी यदि कोई डॉक्टर आए, तब खड़े होकर कहेगा, 'आईए डॉक्टर, आईए!' मन में कहेगा कि, 'कभी काम आएँगे।' अरे, तू बीमार पड़ेगा कब और यह मिलेगा कब? ये काम का कब तक है? अरे, रसोईया रास्ते में मिल जाए तो वह उसे 'अरे, इधर आ, इधर आ।' करता है! अरे भाई, क्यों इन्हें आप इतना बुला रहे हो? तब कहेगा, 'कभी काम पड़े, तब रसोईये को बुला सकेंगे न!' कैसे मतलबी! जैसे यहाँ से जाना ही नहीं हो न, ऐसी

बातें करते हैं! जैसे कभी भी अर्थी नहीं निकलनेवाली हो, ऐसी बातें करते हैं न?

स्वार्थ क्यों रखते हो, जहाँ अर्थी निकलनी है वहाँ? जहाँ अर्थी निकलनी हो, वहाँ क्या स्वार्थ रखना चाहिए? 'कभी काम आएँगे।' अरे, जहाँ अर्थी निकालनी हो, उस देश में 'कभी' कहीं होता होगा? कुछ दिनों बाद अर्थी निकलनी है! जिस डॉक्टर से आशा रखी, वह डॉक्टर यहाँ से चला जाता है, फिर भी लोग ऐसा सब देखते हैं न, कि 'डॉक्टर काम के हैं, वकील काम के हैं,' ऐसा नहीं देखते? हाँ, कोई सेठ आ जाएँ, तब भी कहेंगे, 'हाँ, काम के हैं।' तब 'आईए, आईए सेठ, आईए' करते हैं। 'कभी सौ रुपये माँगेंगे तो मिलेंगे!' लोग मतलब से ही बुलाते रहते हैं न! सारा मतलबी प्रेम, तो ऐसा नहीं होना चाहिए।

शुद्ध-निर्मल प्रेम! इसके अलावा उससे कोई आशा रखनी ही नहीं चाहिए। ये दो हाथोंवाले लोगों से क्या आशा रखनी? कहीं भी पाँच हाथोंवाले लोग देखे हैं? ये तो, जब संडास लगे तब दौड़ते हैं। इनसे भला क्या आशा रखनी! अरे, जुलाब लिया हो न, तो बड़ा कलेक्टर हो वह भी भागदौड़ करेगा! अरे, तू कलेक्टर है, तो ज़रा धीरे से चल न! तब कहेगा कि, 'नहीं, जुलाब हो गया है!' तब तो तुझ से आशा रखने जैसी नहीं है। तू आशा रखने जैसा इंसान है ही नहीं। इनसे क्या आशा रखनी? ये मतलब रखने जैसे हैं? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : जैसा दादा कहते हैं, वैसा ही है।

दादाश्री : हाँ, इसलिए साफ कर दो न, अगर अभी भी ज़रा कुछ मैला रह गया हो तो! घर में भी साफ रखना। मतलबी प्रेम मत रखना। 'ये मेरे क्या काम आएँगे' ऐसा नहीं होना चाहिए।

शुद्धात्मा की तरफ दृष्टि, वही प्रेम! फिर पत्नी को यहाँ पर बड़ी सी रसौली निकल आए, तब भी आपको मन में क्लेश नहीं

होगा! नहीं तो जब तक चेहरा अच्छा दिखे, तब तक उसके प्रति अच्छा भाव रहेगा और यहाँ पर रसौली निकली कि खटकने लगेगा। ऐसा होता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : होता है, दुर्भाव होता है।

दादाश्री : अरे, अभाव होता है, अभाव!

अब, सभी कुछ स्वार्थी हो गया है। छोड़ो न, किसी भी चीज़ की ताक में मत रहना। यदि अपने आप दे जाए तो ठीक है, नहीं तो ऐसे ही चलाना न! भला इन भौतिक चीज़ों की ताक में क्या रहना? 'ताक में रहना,' अर्थात्, स्त्री पर कुदृष्टि रखना और ताक में रहना, ये दोनों एक समान हैं! बाप बेटे से कुछ पाने की ताक में रहता है और बेटा भी बाप से कुछ पाने की ताक में रहता है! क्या घर में भी स्वार्थ नहीं है?

यानी यह सारा निरा स्वार्थवाला है। सिर्फ यही एक स्वार्थरहित स्थान है, इसीलिए यहाँ पर सभी एकता अनुभव करते हैं। जहाँ कुछ पाने की ताक में नहीं रहते, वहाँ परमात्मा अवश्य होते हैं। मतलबीपने से भगवान दूर रहते हैं! इसलिए यहाँ पर इन सब को आनंद आता है, सभी को कैसी एकता अनुभव होती है! अभी यहाँ पर अगर पाँच कप में चाय लाए हों तो ये सभी पाँच कप में पी लेंगे। और बाहर तो तीस लोगों के लिए पैंतीस कप चाय दें फिर भी, उन्हें कम पड़ जाता है, क्योंकि वहाँ पर पाँच-सात लोग दो-दो कप चाय पीनेवाले निकल आते हैं, इसलिए फिर दूसरों को कम पड़ जाता है।

आपने मतलबी लोग देखे हैं क्या? और जहाँ मतलबी हैं, उसका अर्थ ही यह है कि ये लोग हमारा सब्ज़ी-भाजी की तरह उपयोग करना चाहते हैं! उनकी छुरी से सब्ज़ी काटकर खाएँगे! ऐसे मतलबी के साथ रहा ही कैसे जाए? सभी मतलबी हैं न? उस स्वार्थ की लिमिट को या मतलब की लिमिट को हम एक्सेप्ट

करते हैं। जब उस लिमिट को पार कर देते हैं, तब उनके व्यवहार पर टीका-टिप्पणी होती है!

सगे चाचा का लड़का घर आया हो और यदि वह ज़रा गरीब स्थिति का हो, तो जब घर में आए तो 'आओ' भी नहीं कहते और फिर एक डॉक्टर आए और दूर से ही देखे, फिर भी खड़ा होकर, 'आईए, पधारिए, पधारिए साहब' करता है। क्यों भाई? उस डॉक्टर के जाने के बाद उसे पूछें कि, 'क्यों आप डॉक्टर के प्रति ऐसा भाव दिखा रहे थे और जब यह चाचा का लड़का आया तब अच्छा भाव नहीं दिखा रहे थे?' तब कहेगा, 'ये डॉक्टर तो कभी काम आएँगे, यह भाई किस काम का?' अरे, यह तो तेरे मन में भावना हुई कि 'मेरा शरीर बिगड़ जाएगा', यह तो रोग के बीज डाले!

...गर्ज़ है, इसलिए फँसते हैं

खुद अपने आप पर श्रद्धा नहीं रहती, कि 'मैं कुछ हूँ।' अब, 'मैं कलेक्टर हूँ' वह श्रद्धा तो होती है, लेकिन वह कलेक्टर पद ही चला जाएगा। तू कुछ ऐसा है कि जो हमेशा का पद है, तो फिर उसे खोज निकाल न! कलेक्टरी तो चली जाएगी। लोग कल उठा दें न। निकाल दें तो? फिर आरोप लगाकर जेल में भी डाल सकते हैं।

अतः किसी का नाम मत देना और किसी की सुनना भी मत। नाम तो किसी का भी नहीं देना चाहिए, लेकिन सुनना भी मत। क्योंकि वे भी जीव हैं न! लेकिन अपने में लालच होता है न, कि 'यह आदमी मेरे किसी काम का है।' ये तो गर्ज़ से गधे को भी बाप कहते हैं। गधे को भी बाप कह रहे हो? 'हाँ, गर्ज़ है इसलिए कहना ही पड़ेगा न!' अरे, तो आप जाओ, गधे के वहीं जाओ। ऐसी कैसी गर्ज़ है कि गधे को बाप कहते हैं? बाप को बाप कहे, वह बात अलग है। कभी चाचा से भी

काम पड़े तो बाप कह सकते हैं, लेकिन क्या गधे को बाप कहना चाहिए? लेकिन इन लोगों को ऐसी आदत पड़ गई है कि गर्ज़ इतनी मीठी लगती है कि उसकी मिठास के लिए कुछ भी करने से चूकते नहीं हैं। गर्ज़ कैसी लगती है? चीनी से भी मीठी लगती है!

पागल को गाँव दे दें तो आए हल...

अपने यहाँ एक कहावत है न कि *डाह्या ने डाम अने गांडा ने गाम,* (अक़्लमंद को सज़ा और पागल को गाँव) लेकिन वह सही बात है। क्योंकि पागल के साथ जो बंधे हैं, वे छूट नहीं पाते। उसे तो पूरी जायदाद देकर भी छूट जाना अच्छा, वर्ना पागल तो काट खाएँगे। यानी वे तो जो भी माँगे न, वह देकर केस बंद कर देना चाहिए। मैं पूरी ज़िंदगी यही सिस्टम सीखा था, और समझदार को तो समझाया जा सकता है कि, 'भाई, तेरा तो बाद में होता रहेगा, लेकिन यह छोड़कर उसके साथ बात का निपटारा ला दे न!'

प्रश्नकर्ता : तो अक़्लमंद तो पुण्य बाँधता है और पागल पाप बाँधता है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : अरे, फिर भी निरे पाप ही बांध रहा है। वह खुद पागलपन करके लोगों से जायदाद छीन लेता है, फिर भी पाप से लेता है और पाप बाँधकर लेता है और अक़्लमंद तो खुद की जायदाद देकर पुण्य बाँधता है। यानी अब पागल को तो, जहाँ समझदारी की कमी है, वहाँ क्या हो सकता है? इसीलिए यह कहावत बनी न? और पहले से ही ऐसा है। इसलिए लोग भी कहते हैं न, पागल है, इसे जो चाहिए, वह दे दो न! जो पागल है उससे तो जैसे-तैसे करके छूट जाना चाहिए या नहीं? नहीं तो वही कहेगा कि, 'मेरे बाग में किसलिए आए हो?' और मारेगा फिर! यानी एकाध पागल यदि आपको मिल जाए न, तो

पता चल जाएगा। चार भाईयों में से एकाध अगर पागल हो, तो बाकी सब को तंग करके रख दे! तब वह तंग आकर फिर नक्की करता है कि किसी भी जन्म में मुझे भाई मिले ही नहीं। अरे, बाकी के तीन तो अच्छे हैं न? लेकिन कहेगा, 'नहीं, मुझे अब भाई चाहिए ही नहीं।' यानी कि पागल के साथ के केस तो जैसे-तैसे करके हल कर लेना। अक़्लमंद का केस हो, तब तो हर्ज नहीं है। लेकिन पागल के साथ तो बहुत मुश्किल है। पहले हम देख चुके हैं कि पागल को तो पूरे गाँव दिए गए हैं। वे बेचारे जन्म से ही पागल, लेकिन वास्तव में यों दिमाग़ से पागल नहीं होते। वे बहुत अक़्लमंद होते हैं, लेकिन जगत् के लोगों को वह पागल लगता है। ऐसा क्यों लगता है? कि अत्यधिक स्वार्थी होता है, इसलिए उसे लोग पागल कहते हैं। वे पागल होते ही नहीं हैं, लेकिन उनके इतने अधिक स्वार्थी होने की वजह से यदि कभी उन्हें न दें या कम दें तो वे कलह कर देंगे और केस खिंचता रहेगा। फिर बात का कुछ परिणाम नहीं आता। ये कुत्ते भी यदि भौंक रहें हों न, तब उन्हें एक टुकड़ा रोटी डाल दें, तो भौंकना बंद हो जाता है। उसी तरह अपना हिस्सा छोड़ देना पड़ता है और उसे दे देना पड़ता है, ताकि वे कलह करना बंद कर दें।

आपको यदि यह कला आ जाएगी तो आप सबकुछ जीतकर निकल जाओगे, वर्ना इस जगत् में जीता नहीं जा सकता। कितने ही प्रकार के लोग हैं और प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग दिमाग़, तो कहीं पर तालमेल खाएगा ही नहीं न!

...और वीतरागों के साथ लड़े फिर भी आए हल!

वर्ना भगवान को भी पूछनेवाले मिले थे कि, 'आपने ऐसा क्यों किया?' अरे, मुझसे भी पूछते हैं न! क्योंकि उसे अधिकार है। कोई भी व्यक्ति कुछ भी पूछ सकता है। अरे पागलपन भी करते हैं। मुझे तो ऐसा भी कहते हैं कि 'आपमें अक़्ल नहीं है।'

तब मैं कहता हूँ कि, 'पहले से थी ही नहीं, तूने तो आज ही जाना, लेकिन मैं तो पहले से ही जानता हूँ!' अब वह अपनी जोखिमदारी पर बोल रहा है न! लेकिन मुझे तो उसे समझाकर मोड़ लेना पड़ेगा, नहीं तो उसे बहुत बड़ा दोष लगेगा न! जैसे कि कोई कुत्ता यदि बहुत भौंक रहा हो तब उस पर हाथ फेरने से वह शांत हो जाता है! उसी तरह जब ये इंसान बहुत भौंक रहे हों, तब यदि हम हाथ फेरें तब वे शांत हो जाएँगे। बहुत उग्र होगा, तभी बेचारा ऐसा करेगा न! दुःख के मारे करता है न! सुख के मारे क्या कोई किसी के साथ कषाय करता है? सुखी व्यक्ति दूसरों के साथ कषाय करता है? लेकिन जो खुद दुःखवाला है वही सामनेवाले के साथ कषाय करता है। इसलिए हम उसे शांत कर देते हैं और फिर वापस विराधना तुड़वा देते हैं! क्योंकि उसने जान-बूझकर नहीं किया, नासमझी में किया है।

यानी आजकल के लोगों ने जान-बूझकर कोई गुनाह किया ही नहीं, ये इतने अच्छे लोग हैं आज के! ये सभी गुनाह नासमझी से ही हो गए हैं। जान-बूझकर एक भी गुनाह नहीं किया है ऐसे हैं आजकल के लोग। बहुत ही अच्छे लोग हैं, लेकिन सिर्फ समझ की कमी पड़ गई है! और पहले तो जान-बूझकर गुनाह करते थे। 'मैं जानता हूँ, बूझता हूँ कि तू महावीर है, तू पूरे ब्रह्मांड का नाथ है, वह भी मैं जानता हूँ, लेकिन तुझसे जो हो सके वह कर लेना।' इस तरह जान-बूझकर करनेवाले लोग भी थे। लेकिन वे बड़े लोग थे। क्योंकि इतना बड़ा गुनाह, इतने बड़े व्यक्ति के साथ करना, वह क्या छोटे बच्चे का काम है? नहीं। तो फिर यहाँ से सीधे ही जाता है सातवीं नर्क में! वहाँ से देवलोक में जाता है और फिर यहाँ आकर वीतराग धर्म प्राप्त करके मोक्ष में चला जाता है! क्योंकि वीतरागों के साथ लड़ा था न! भगवान ने कहा था कि लड़ो तो भी वीतराग के साथ लड़ना, लेकिन गालियाँ मत देना। तुझे यदि लड़ने की इच्छा हो तो वीतराग के साथ लड़ना, अच्छी तरह से लड़ना, मारामारी करना, तो उनके साथ

हिसाब बँधेगा नहीं तो इन लोगों के साथ तो लड़ना ही मत। यदि तू अमेरिकन के साथ लड़ेगा तो तुझे वापस वहाँ जाना पड़ेगा। 'मेरी' के साथ शादी करनी पड़ेगी लेकिन जब 'मेरी' डायवोर्स ले लेगी तब तेरी क्या दशा होगी? यानी ऐसा है यह सब! इन कर्मों की गतियाँ समझ में नहीं आतीं।

हम कठोर बात बोलते हैं। ज्ञानी के शब्द कठोर किसलिए होते हैं? क्योंकि वे निर्भीकता से बोलते हैं और पूरा जगत् डर के मारे बोलता है। ऊपर 'बाप' है, उसका डर लगता है। कर्म बंधेंगे उसका डर लगता है। जबकि 'ज्ञानीपुरुष' को तो किसी प्रकार का डर ही नहीं है। जिन्हें कर्म बँधते हैं, उन्हें डर है। ज्ञानी तो वर्ल्ड को फेक्ट चीज़ कह देते हैं, जो फेक्ट है वह वर्ल्ड के किसी भी व्यक्ति को कह देते हैं। क्योंकि जिसे कुछ चाहिए नहीं, फिर उसे क्या? जिसे कुछ चाहिए उसे तो लालच के लिए डरना पड़ता है। 'ज्ञानी' को तो वर्ल्ड की कोई चीज़ नहीं चाहिए, उन्हें कहीं डर लगता होगा? वे तो वर्ल्ड के मालिक हैं!

ओहोहो! ज्ञानी की करुणा!

यह जगत् तो बहुत कठिन है, भगवान महावीर को भी परेशान कर दे ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा अनुभव कहाँ नहीं हुआ?

दादाश्री : आपको जो अनुभव हुए हैं वे अलग प्रकार के हुए हैं और भगवान को जो अनुभव हुए वे अलग प्रकार के हुए। भगवान तो सर्वसत्ताधारी होने के बावजूद भी, उन्हें कोई चारा नहीं न! जहाँ परसत्ता है वहाँ स्वसत्ता नहीं चल सकती और जहाँ स्वसत्ता है, वहाँ पर परसत्ता कुछ भी नहीं कर सकती। आप में तो अभी स्वसत्ता और परसत्ता अलग नहीं हुए हैं, इसलिए तब तक आपका केस इसमें नहीं माना जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : कम या अधिक शक्ति के अनुसार ही अंतराय आते हैं न?

दादाश्री : हाँ, शक्ति अधिक हो तो अधिक अंतराय आते हैं। इस दुनिया में सरल के लिए बहुत अच्छा है, सरल को कुछ भी स्पर्श नहीं करता। हम तो मूलतः पहले से ही सरल स्वभाव के हैं न, इसलिए हमें कुछ भी स्पर्श नहीं करता। हम सरल हैं, लेकिन समझ-बूझकर सरल हैं। 'वांक-सरलता' (अनजाने में सरलता) तो बहुत जीवों में है। हमें समझ में आ गया कि इन भाई का बिल्कुल करेक्ट है, तो हम बिल्कुल सरल, दूसरा कुछ भी नहीं। और ये भाई टेढ़े चलें तब भी हम जाने देते हैं लेकिन वह समझ-बूझकर जाने देते हैं। हम करुणा रखते हैं, वह करुणा भी समझ-बूझकर रखते हैं। हम जानते हैं कि यह टेढ़ापन कर रहा है, क्योंकि इसकी शक्ति अधिक नहीं है, इसलिए टेढ़ा चल रहा है यह! लेकिन वह करुणा भी समझ-बूझकर रखते हैं।

एक बार जो 'ज्ञानीपुरुष' के पास आने के बाद यदि उसमें कहीं पर अहंकार से पागलपन खड़ा हो जाए, तब तो वह मारा ही जाएगा न? नहीं तो यहाँ आना ही मत। वीतराग रहना, दूर रहना। यदि दूरवाले बोलें तो उन्हें बहुत जोखिम नहीं है, लेकिन यहाँ पर आने के बाद अगर उल्टा बोलेगा तो उसे पागल अहंकार कहेंगे। वह पागल अहंकार उसे खुद को बहुत मार खिलाता है, फिर भी हम उसे बचाते रहते हैं! एक सरीखा ही (भाव) रखते हैं, करुणा ही रखते हैं उस पर!

पराये बाज़ार में गुनहगार कौन?

एक व्यक्ति मुझसे पूछ रहा था कि, 'दादा, आप में दूसरी न कहने योग्य कोई चीज़ है क्या?' मैंने कहा, 'नहीं, नहीं, यहाँ बिल्कुल भी गोलमाल नहीं है, एक इतनी सी भी गोलमाल नहीं चलती। दिन-रात मेरे साथ रहे, निरंतर रहे, फिर भी मेरी इतनी सी

भी गलती या इन्सिन्सियारिटी आपको देखने को नहीं मिलेगी। अंदर यदि ऐसा होगा तभी गलती दिखेगी न! हम संसार में रहते ही नहीं। एक क्षण के लिए भी हम संसार में नहीं रहे हैं। संसार में रहना यानी पर-परिणती कहलाती है। हम स्व-परिणाम में रहते हैं, निरंतर मोक्ष में ही रहते हैं, खुली आँखों से ही रहते हैं। पूरा जगत् बंद आँखों से है। संसार में दुःख कहाँ से लाए? दुःख तो बंद आँखों के कारण हैं। बंद आँखें यानी क्या? पति पत्नी के लिए कहेगा कि, 'यह खराब है।' तब पत्नी कहेगी कि, 'मैं अच्छी हूँ।' इसे कहते हैं खुली आँखोंवाले अंधे। भगवान की भाषा में कौन सी बात सही है? तब भगवान कहते हैं कि, 'दोनों अंधे हैं, इसलिए ऐसा कर रहे हैं।' यदि भगवान की भाषा समझनी हो तो भगवान की भाषा में इस दुनिया में कोई व्यक्ति बिल्कुल भी गुनहगार नहीं है। इस दुनिया में मुझे कोई भी गुनहगार नहीं लगता। जेब काटे, वह भी गुनहगार नहीं है और हार पहनाए वह भी गुनहगार नहीं। गुनहगार दिखते हैं, वही आपका गुनाह है, आपकी दृष्टि का रोग है। जब दृष्टि का वह रोग जाएगा, तब काम होगा। जब कोई गुनहगार दिखे, उसी को मिथ्यात्व कहते हैं। वह दृष्टिरोग है। जब 'ज्ञानीपुरुष' दृष्टिरोग निकाल देते हैं, उसके बाद लोग गुनहगार दिखने बंद हो जाते हैं।

कोई 'कम्प्लीट' गुनहगार हो, हमें काट डालने को तैयार हो, वैसा गुनहगार हो फिर भी हमें उसके प्रति समता रखनी चाहिए। वह कैसे काट सकता है? अपना काटेगा ही नहीं। जो भी काटना होगा वह *पुद्गल* (शरीर) का काटेगा। इस दुनिया में *पुद्गल* बाज़ार में नुकसान है। लोग *पुद्गल* बाज़ार को खुद का व्यापार मान बैठे हैं।

सरलता, वह तो महान पूँजी

प्रश्नकर्ता : दुनिया टेढ़ी है लेकिन हम अपने स्वभाव के अनुसार सरलता से बर्ताव करें तो मूर्ख माने जाते हैं। तो सरलता छोड़कर टेढ़े बन जाएँ या मूर्ख माने जाएँ?

दादाश्री : ऐसा है कि कितने ही जन्मों की कमाई हो, तब जाकर सरलता उत्पन्न होती है। जो टेढ़ा है, हमारी कमाई खो जाए, वह यही चाहता है, तो क्या हम अपनी कमाई खो दें? खुद अपनी कमाई खो देंगे तो हम भी टेढ़े ही हो गए, तो फिर अपने पास रहा क्या? सामान सब खत्म हो गया! और फिर दिवालिया निकलेगा!

प्रश्नकर्ता : तो क्या इसके बजाय मूर्ख बनकर रहना अच्छा है?

दादाश्री : नहीं, इस जगत् में कोई मूर्ख नहीं है, ऐसा है ही नहीं। जहाँ पर सभी मूर्ख ही हैं, उनमें भले ही वे मूर्ख कहें! अतः आपके मन में ऐसा नहीं रखना है कि 'मुझे मूर्ख मान रहे हैं।' फिर परेशानी ही क्या है? सरलता तो बहुत जन्मों की कमाई से मिलती है, तो अगर उस कमाई को खो दें तो बहुत जोखिम है। और आप तो वकील हो, कभी खोओगे ही नहीं, सोचकर देखो कि इतनी बड़ी पूँजी कहीं खोई जाती होगी? अतः भले ही यह थोड़ा-बहुत मिले, उसमें कोई हर्ज नहीं है। आपको मूर्ख माने, उसमें जो मानता है उनकी जोखिमदारी है। उन्हें दोष लगेगा। जो बोलेगा, उसकी जोखिमदारी है। उससे आपको क्या? आप तो सरलता से बर्ताव कर रहे हो। सरलता, वह तो बहुत ऊँची चीज़ है! टेढ़े व्यक्ति के साथ सरल रहना, वह कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है, वह आसान चीज़ नहीं है। अब जो कमाई की है और आपको यदि वह खो देनी हो तो आप इन सब के साथ गुत्थम-गुत्था करना।

प्रकृति नहीं बदलेगी, ज्ञान बदलो

हर एक व्यक्ति को इतनी हद तक तैयार हो जाना है कि कोई भी जगह उसे बोझ समान न लगे। जगह उससे परेशान हो जाए, लेकिन वह खुद परेशान नहीं हो, उस हद तक तैयार होना

है, वर्ना जगहें तो अनंत हैं, अनंत क्षेत्र हैं, क्षेत्रों का अंत नहीं है।

सही बात वह है कि जिससे आपका और मेरा समाधान हो। वह फिर कानूनी हो या गैरकानूनी हो, लेकिन जहाँ समाधान होना रुक गया, उस बात को सही कह ही नहीं सकते न! यदि आप सही हो तो संसार के लोग आपकी कमियाँ नहीं निकालेंगे। शायद कभी दूसरे लोग निकाल लें कि जिन्हें आपके साथ रास नहीं आता हो ऐसी प्रजा होती है, वह कमियाँ निकालेगी लेकिन सज्जन पुरुष कमी नहीं निकालेंगे।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य ऐसी प्रकृति लेकर ही आए हों तो फिर वह प्रकृति कैसे बदलेगी?

दादाश्री : नहीं, लेकिन साथ-साथ उसे ऐसा डिसाइड करना चाहिए कि मेरी यह प्रकृति दु:खदायी है, इसलिए जो सुखदायी है मुझे उस प्रकार से बर्ताव करना चाहिए, ऐसा डिसाइड करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति बदल सकती है क्या?

दादाश्री : प्रकृति नहीं बदलती, लेकिन अपना ज्ञान तो बदल सकता है न! प्रकृति अपना स्वभाव नहीं छोड़ती, लेकिन खुद का ज्ञान बदलता है और ज्ञान बदलने से उलझनें बंद हो जाती है!

विश्वासघात के समान कोई दोष नहीं

प्रश्नकर्ता : विश्वासघात करना, वह सबसे खराब है न? सभी दोषों में सबसे खराब विश्वासघात है न?

दादाश्री : विश्वासघात तो बहुत ही गलत है। यह *अणहक्क* (बिना हक़) का भोगना वह सब विश्वासघात ही है। मिलावट करना भी विश्वासघात है। ये सब विश्वासघात के ही रूप हैं। कोई आपको विश्वास में लेकर विश्वासघात करें तो वह रूबरू विश्वासघात कहलाता

है। वह भयंकर दोषवाला है। वर्ना ये जो *अणहक्क* का भोग लेते हैं, मिलावट करते हैं, वह भी विश्वासघात है।

प्रश्नकर्ता : किया, करवाया और अनुमोदन किया, उसमें सबसे नुकसानदेह कौन सा है?

दादाश्री : नुकसानदेह? किया वही नुकसानदेह है न! जिसने किया, वही पकड़ा जाएगा। अनुमोदन तो, जिस भाव से अनुमोदन किया होगा, उस भाव से उसे फल भोगना पड़ेगा। जगत् किस तरह रुकावट डाल सकता है? गुप्त गुनाह किए हैं इसलिए। मेरे ऐसे कोई गुनाह नहीं हैं तो मुझे कोई रुकावट डालता ही नहीं। 'मुझे क्यों रोका?' ऐसा कहा तो फिर आगे का कुछ दिखेगा ही नहीं।

अतः लोग अपना ही दर्पण हैं, खुद का ही प्रतिबिंब देखने का साधन। इस भाई को मुझसे कोई भी दुःख हो जाए तो समझना है कि मेरी भूल हुई है तो फिर मैं भूल सुधारे बगैर रहूँगा नहीं। कुछ व्यवहारिक भूल हुई हो तो सुधारनी तो पड़ेगी न? लेकिन इसमें करना कुछ नहीं है, लेकिन जानना ही है। जो ज्ञान क्रिया में आ जाए, वही ज्ञान सही है। क्रिया में नहीं आए तो समझना कि यह ज्ञान गलत है।

[१५]

दु:ख मिटाने के साधन

अपने ही हिसाब...

इस जगत् में कुछ भी गलत है ही नहीं। कोई व्यक्ति आपको जो कुछ भी देता है, वह आपका ही दिया हुआ वापस देता है। आपके दिए बगैर तो कोई मनुष्य आपके यहाँ जमा करवाने आएगा ही नहीं। जितना आपने दिया होगा उतना ही वापस आता है, लेकिन कब दिया था उसकी आपको खबर नहीं है। आप आज के बहीखाते देखते हो कि इसमें तो कहीं दिया हुआ नहीं लगता, इसलिए आपको ऐसा लगता है कि यह कुछ नया देने आया है। वास्तव में तो नया कभी भी कोई देने आता ही नहीं। यह सारा पिछला कर्ज़ ही है, वह आपको तुरंत जमा कर लेना है। अब यदि आप फिर से वापस दोगे तो व्यापार चलता रहेगा।

पिछले जन्म में किसी को दो गालियाँ दी होंगी तो इस जन्म में कोई आपको दो गालियाँ देगा। उस घड़ी आपको फिर वापस कड़वा लगता है इसलिए आप वापस पाँच गालियाँ दे देते हो। दो गालियाँ वापस आईं, तो कड़वा लग रहा है, तो फिर जब पाँच गालियाँ वापस आएँगी तब क्या दशा होगी? इसलिए आप नया उधार देना बंद कर दो। जिस व्यापार में नुकसान हुआ और दु:ख महसूस होता है, उस व्यापार में पैसे लगाने बंद कर दो। हमें कोई दो सुना जाए, तब हमें भीतर अंदर से शांतिपूर्वक उसे जमा कर लेना चाहिए, क्योंकि जो दिया हुआ है वही वापस आया है। इसलिए अभी जमा कर लो और फिर वापस नहीं देना है।

अत: इस दुनिया में जो कुछ भी मिलता है वह सब, जो दिया था वही वापस आ रहा है ऐसा समझ में आए तो पहेली हल हो जाएगी या नहीं होगी? यानी हमें किसी भी तरह से इस पहेली को हल करना है!

उल्टी समझ, वही दु:ख है और सीधी समझ, वह सुख है। उसे कौन सी समझ मिल रही है, वह देखना है। उल्टी समझ की गाँठ पड़ी तो दु:ख, दु:ख और दु:ख और वह गाँठ सीधी समझ से छूट गई तो सुख, सुख और सुख! और कोई सुख-दु:ख है ही नहीं दुनिया में, यानी कि उल्टी समझ से ही गाँठ पड़ जाती है। वर्ना थोड़े-बहुत देह के दंड तो होते हैं! देह धारण करने के दंड तो रहेंगे न? यदि दाढ़ दु:खे तो क्या कोई दु:ख देने आया है? वह तो देह का दंड कहलाता है। किसी रिश्तेदार का हिसाब हो और जब वह चुकाए तो क्या हम उन्हें मना कर सकते हैं? यदि आप कहो कि, 'दादा, अभी हिसाब बंद कर दीजिए।' तो दादा बंद कर देंगे, लेकिन खाते में बाकी रहा न? तो वसूलीवाले को घर पर चाय-पानी पिलाकर 'अलीसा'ब, अलीसा'ब' करके फिर वापस निकाल दें, फिर भी वह वापस तो आएगा न? इसके बजाय एक बार दे ही दे न यहाँ से! वर्ना फिर वह आए बगैर तो रहेगा नहीं। वह लिए बगैर छोड़ेगा क्या? इसलिए प्रतिकूलता में कहना कि, 'ले जाओ, ले जाओ!' अपना दादाई बैंक है न!

दूषमकाल में जो सब लोग हमें मिलते हैं न, उनमें से अधिकतर दु:ख देने के लिए ही होते हैं, थोड़े-बहुत हमें सुख देने के लिए भी होते हैं। पाप के उदय के फल स्वरूप दु:ख देनेवाला मिलता है, लेकिन वह अच्छा है। क्योंकि मुक्त होने का रास्ता जल्दी मिल गया न!

जो मोल ले, उसे दु:ख

प्रश्नकर्ता : हम डे टु डे लाइफ में काम करते हैं, सेठगिरी

करते हैं, यहाँ हम कारखाने में जाते हैं तब लोगों के साथ फ्रिक्शन हो जाता है तो उस समय उस व्यक्ति में जो परिणाम उत्पन्न हुए और मेरे जो परिणाम उत्पन्न हुए, उसमें उस व्यक्ति के परिणाम तो हम बदलकर अच्छे नहीं कर सके तो हम उतने गुनहगार रहे न?

दादाश्री : क्योंकि आपका भाव नहीं बदलता है, इसलिए आपको कोई परेशानी है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मेरे कार्य से या मेरे वचन से सामनेवाले व्यक्ति का परिणाम बदला, उसका परिणाम बिगड़ा, उसका क्या?

दादाश्री : मेरा कहना यह है कि यदि आप कर्ता हो तब आप पर यह दोष लागू होगा। यदि आप कर्ता नहीं हो तो आप पर यह दोष लागू नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपने बर्ताव से सभी को अच्छा लगना ही चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं है। ये आपके सफेद बाल देखकर किसी को अच्छा न लगे, तो उसमें आप क्या करोगे? आपके सफेद बाल देखकर सामनेवाले को चिढ़ चढ़े, तो उसमें आपका क्या दोष?

यह बहुत सूक्ष्म बात है। यह सब को समझ में नहीं आ सकती। ये लोग तो क्या कहेंगे, 'आपसे सामनेवाले को दु:ख हुआ तो आपको दोष लगेगा।' अरे, इन्हें कब *अजंपा* नहीं होता? आप ऐसा कहो कि, 'साहब, भोजन के लिए चलिए।' तब वह कहेगा, 'मैं रोज़ साढ़े बारह बजे भोजन करनेवाला इंसान, तू साढ़े ग्यारह बजे आकर भोजन के लिए कह रहा है?' यानी इन्हें तो कब दु:ख नहीं होगा, वह कह नहीं सकते। इन्हें दु:ख होने के कारण कहाँ नहीं हैं? वे दु:खों के कारणों से ही घिरे हुए हैं। आपके सफेद बाल देखकर यदि उसे दु:ख हो तो उसमें आप क्या करोगे?

इसलिए हमने क्या कहा है? कि आप कर्ता नहीं हो तो आप जोखिमदार नहीं हो। यदि आप कर्ता हो, जब तक आपको 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा रहे, तब तक जोखिमदारी आपकी है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर महावीर स्वामी से गोशाला को दु:ख क्यों होना चाहिए? क्योंकि गोशाला तो भगवान से उल्टी ही दिशा में चला था न?

दादाश्री : ऐसा है, कि महावीर स्वामी से गोशाला को बहुत ही दु:ख होता था कि 'ये महावीर हैं तो मेरी इज़्ज़त चली जाती है, इसलिए अगर ये नहीं हों तो अच्छा।' तब महावीर स्वामी क्या कहते हैं कि, 'यह उसका मोल लिया हुआ दु:ख है, मेरा दिया हुआ दु:ख नहीं है।' जैसे यह खाने-पीने का बटोरते हैं न? वैसे ही दु:ख भी बटोरते हैं। अब ऐसे मोल लिए हुए दु:ख का कोई क्या करे? तब महावीर स्वामी ने कहते हैं कि, 'उसका मोल लिया हुआ दु:ख है, उसमें मैं क्या करूँ?' महावीर स्वामी की उपस्थिति में गोशाला को बहुत ही दु:ख रहता था। महावीर स्वामी वह जानते भी थे कि इस बेचारे को बहुत दु:ख रहता है और उस दु:ख के कारण ही वह बोल रहा था कि, 'ये महावीर ऐसे हैं और वैसे हैं!' उसमें महावीर स्वामी क्या कर सकते थे? क्या वे वहाँ पर उपवास करते? लेकिन भगवान ने तो कहा कि, 'यह इसका मोल लिया हुआ दु:ख है। यह दु:ख मेरा दिया हुआ नहीं है।' मेरा दिया हुआ और उसका मोल लिया हुआ दु:ख, इन दोनों में बहुत फर्क है।

प्रश्नकर्ता : वह समझाइए।

दादाश्री : माना हुआ दु:ख यानी क्या? अभी आप रोज़ साढ़े बारह बजे खाते हो और एक दिन घर में खाना ज़रा जल्दी तैयार हो गया हो, तो आपको बुलाने आएँ कि, 'चलो चंदूभाई, भोजन का समय हो गया है, चलो, अभी तक क्यों बैठे हुए हो?' तब आप कहो कि, 'भाई, मुझे अभी नहीं खाना है, आप मुझे

अभी किसलिए परेशान कर रहे हो? अब आपको यह जो दुःख हुआ वह माना हुआ है। वह कोई आपको दुःख देने के लिए नहीं आया था। वह तो कह रहा था कि, 'चलो साहब, भोजन के लिए!'

प्रश्नकर्ता : यदि हमें दूसरों को सुख देने की इच्छा हो तो वह क्या है?

दादाश्री : दूसरों को सुख देने की इच्छा आपको रखने की क्या ज़रूरत है? दूसरों को सुख देने की इच्छा हो ऐसा कहते हो, तो आप उस सुख के दाता हो, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : और दूसरों के सुख से ईर्ष्या हो, वह क्या है? वह भी मोल लिया हुआ दुःख कहलाएगा न?

दादाश्री : ईर्ष्या तो मोल लिया हुआ दुःख है। ये सब मोल लिए हुए दुःख हैं। वास्तव में ज़रा सा भी दुःख नहीं है।

मुझे कोई दुःख नहीं देता। क्योंकि मैं दुःख मोल नहीं लेता हूँ। नहीं तो दुःख तो होते ही रहेंगे, ठोकरें तो लगती ही रहेंगी, और जगत् तो बोलता ही रहेगा। यह सब चलता ही रहेगा, लेकिन जो मोल ले उसे दुःख।

प्रश्नकर्ता : और जो ये दुःख देते हैं वे तो नया ही बीज डालते हैं न?

दादाश्री : वह हमें नहीं देखना है, वह तो जगत् का क्रम ही है ऐसा! क्रम ही है कि सुख और दुःख के लेन-देन का नैमित्तिक भाव है।

दुःख, खुद का ही मिटाओ न!

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले को दुःख हो रहा हो तो हमें भी दुःख होगा न?

दादाश्री : ऐसा है न, इन लोगों को जो दु:ख होता है उससे यदि आपको दु:ख हो रहा हो तो उस दु:ख का आप उपाय करो, लेकिन दु:ख का उपाय नहीं हो पाता और ये लोग तो सिर्फ इगोइज़म ही करते हैं कि इनके दु:ख देखकर मुझे दु:ख हो रहा है। अरे, यदि तुझे दु:ख हो रहा है तो तू उसका दु:ख मिटा दे न। तेरे सुख के लिए उसका दु:ख मिटा दे, उनके सुख के लिए नहीं। अपने सुख के लिए हमें उसका दु:ख मिटा देना चाहिए, उस घड़ी जेब में से दस रुपये निकालकर दे देने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इस तरह कितनों को दस रुपये दूँ?

दादाश्री : इसमें बुद्धि से नहीं गिनना है। आप देने का तय करोगे, तो आप सभी को दे पाओगे। जिसे नहीं देना है, वह किसी को नहीं दे पाएगा। क्योंकि यह सब सत्ता है और सभी कुछ हो सके, ऐसा है। लेकिन 'एक तरफ अंदर दु:ख होता है और एक तरफ इस तरह कितनों को मैं पैसे दूँ?' इस तरह ये दोनों चीज़ें एक साथ नहीं हो सकतीं न!

कुदरत ने ऐसा कहा है कि आप अपना झूठा इगोइज़म मत करना। जितना आप से हो सके उतना ओब्लाइज करो। सिर्फ ओब्लाइज, अन्य कुछ भी नहीं करना है। बाकी, आप किसी का भी दु:ख ले सको, ऐसा है ही नहीं। आप खुद ही दु:खी हो न! इसलिए ओब्लाइज एवरीबडी, बस इतना ही करो। कोई भूखा आए न तो 'उसके बच्चे को क्या हो रहा होगा? उसकी पत्नी को क्या हो रहा होगा?' ऐसा सब हिसाब नहीं लगाना है। वह भूखा है तो आप कुछ पकौड़ियाँ ले लो और उसे दे दो। बस, आपको और ज़्यादा गहराई में उतरने की ज़रूरत है ही नहीं।

और दु:ख तो, 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ, उसके बाद ही चला जाता है। फिर तो दु:ख में भी सुख महसूस होता है, अभी तो सुख में भी दु:ख महसूस होता है।

प्रश्नकर्ता : यों मुझे खुद को कोई दु:ख नहीं है। मैं दु:खी हूँ ही नहीं।

दादाश्री : वह ठीक है। लेकिन यह तो मनुष्य का स्वभाव है कि दूसरों का दु:ख देखकर खुद को दु:ख होता है। स्वाभाविक रूप से दु:ख होता ही है।

ऐसा है न, ये जो दु:खी दिखते हैं वह आपकी दृष्टि है। उस दु:खी इंसान से पूछें न, तो वह क्या कहेगा? 'ये सभी लोग दु:खी हैं।' अरे, क्या तू दु:खी नहीं है? तब कहेगा कि, 'मुझे कोई दु:ख है ही नहीं।' यानी आपकी ये तो सारी दृष्टि ही रोंग है, जब आप उनसे पूछोगे तब पता चलेगा। अर्थात् इन सब लोगों की दृष्टि सही नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : यह बात मनुष्यों के लिए ठीक होगी, आप कहते हो वैसा, लेकिन यदि प्राणी दु:खी हो रहे हों तो उनका क्या?

दादाश्री : मेरा कहना यह है कि प्राणियों को जो दु:ख है, वह भूख का दु:ख है, उन्हें और कोई दु:ख नहीं है।

प्रश्नकर्ता : भूख का दु:ख असह्य कहलाता है न?

दादाश्री : हाँ, असह्य। लेकिन क्या हो सकता है फिर? उसका उपाय क्या है? पूरे जगत् का हम कैसे चला सकते हैं? और ये जो जानवर दु:खी होते हैं, वे और कोई नहीं हैं, लेकिन अपने ही जो चाचा, मामा, वगैरह जो सब थे, वे ही यहाँ पर आए हैं। अपने खुद के ही नज़दीकी सगे-संबंधी हैं।

प्रश्नकर्ता : दुनिया में अभी बहुत लोग ऐसे हैं कि जिन्हें ऐसा लगता है कि वे गरीब लोगों के लिए, बीमार, दु:खी लोगों के लिए खुद किसी भी प्रकार से मददगार हो सकें, ऐसा करना अच्छा है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, लेकिन हर एक व्यक्ति को ऐसा नहीं लगता न? जो खुद सुखी हो, खुद हर प्रकार से सैटिसफैक्शन में हो, वही दूसरों का कार्य कर सकता है, यों थोड़ा-बहुत कार्य करते हैं। लेकिन जो खुद स्थायी रूप से सुखी हों, वे सभी प्रकार से लोगों के लिए सुख का कार्य कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : अभी की राजनीतिक परिस्थिति में जिस प्रकार से सबकुछ हो रहा है, उसे देखकर दु:ख तो होगा न?

दादाश्री : वहाँ जो होता है उसका और हमारा क्या लेना-देना? हमारी जेब कट जाए तो कुछ दु:ख होता है या नहीं होता, इतना ही देखना है। हमें गाड़ी में किसी ने गाली दी और धक्का मारा, उस घड़ी बहुत दु:ख होता है या नहीं, वह देखना है। यानी वहाँ जो भी होना हो वह हो, उसके आप मालिक नहीं हो। उसके लिए तो अपनी भावना होनी चाहिए कि जगत् ऐसा नहीं होना चाहिए। सुखी ही हो, ऐसी भावना होनी चाहिए। सामूहिक भावना होनी चाहिए। लेकिन भगवान ने क्या कहा है कि भावना किसे करनी है? जिसका खुद का दु:ख मिट गया है, उसे फिर बाहर का वह काम करना बाकी रहा। पहले खुद का दु:ख सर्वस्व प्रकार से मिट जाए, कोई गाली दे तो हम पर असर नहीं हो, जेब कटे तो असर नहीं हो, ऐसा यदि हमें हो गया हो तो वह सब दवाई सही ही है, लेकिन वह कुछ हद तक फायदा करती है और फिर नुकसान भी करती है ऐसी लाभ-अलाभवाली है। सिर्फ लाभवाली दवाई तो कोई-कोई ही होती है।

लोग ऐसे नहीं हैं कि जनसेवा करें। यह तो अंदर ही अंदर कीर्ति का लोभ है, नाम का लोभ है, मान का लोभ है, तरह-तरह के लोभ छुपे हुए हैं, वे ही करवाते हैं। जनसेवा करनेवाले लोग तो कैसे होते हैं? वे अपरिग्रही पुरुष होते हैं। ये तो सब नाम कमाने के लिए, 'धीरे-धीरे कभी मंत्री बन जाएँगे,' ऐसे सोचकर जनसेवा करते हैं। अंदर चोर नियत होती है इसीलिए बाहर की आफतें,

बेकार के परिग्रह, वगैरह बंद कर दो, तो सबकुछ ठीक हो जाएगा। यह तो एक तरफ परिग्रही, संपूर्ण परिग्रही रहना है और दूसरी तरफ जनसेवा करनी है, ये दोनों एकसाथ किस तरह हो सकेगा?

सेवा-कुसेवा, प्राकृत स्वभाव

आप यह जो सेवा कर रहे हो, वह प्रकृति स्वभाव है और कोई व्यक्ति कुसेवा करता है तो, वह भी प्रकृति स्वभाव है। इसमें आपका पुरुषार्थ नहीं है और उसका भी पुरुषार्थ नहीं है, लेकिन मन से ऐसा मानते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ।' अब 'मैं कर रहा हूँ' वही भ्रांति है। यहाँ पर 'यह' ज्ञान देने के बाद भी आप सेवा तो करोगे ही, क्योंकि ऐसी प्रकृति लेकर आए हो, लेकिन वह सेवा फिर शुद्ध सेवा होगी। अभी शुभ सेवा हो रही है। शुभ सेवा यानी बंधनवाली सेवा, सोने की बेड़ी, लेकिन बंधन ही है न! इस ज्ञान के बाद सामनेवाले व्यक्ति को भले ही कुछ भी हो लेकिन आपको दुःख नहीं होगा और उसका दुःख दूर हो जाएगा। इसके बाद आपको करुणा रहेगी। अभी तो आपको दया रहती है कि बेचारे को कैसा दुःख हो रहा होगा, कैसा दुःख हो रहा होगा! उस पर आपको दया आती है। वह दया हमेशा हमें दुःख देती है। जहाँ दया होती है, वहाँ पर अहंकार रहता ही है। दया भाव के बिना प्रकृति सेवा करती ही नहीं और इस ज्ञान के बाद आपको करुणा भाव रहेगा।

.... कल्याण की श्रेणियाँ ही भिन्न

ये जो समाज कल्याण करते हैं, वह जगत् कल्याण नहीं कहलाता। वह तो एक सांसारिक भाव है, वह सब समाज कल्याण कहलाता है। वह जितना जिससे हो पाए उतना करते हैं, वह सब स्थूल भाषा है। और जगत् कल्याण करना वह तो सूक्ष्म भाषा, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भाषा है। सिर्फ ऐसे सूक्ष्मतम भाव ही होते हैं या फिर उसके छिंटे ही होते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मानवसेवा तो एक व्यवहारिक चीज़ है, ऐसा ही समझें न? वह तो व्यवहार धर्म हुआ न?

दादाश्री : वह व्यवहार धर्म भी नहीं है, वह तो समाजधर्म है। जिस समाज के लिए अनुकूल हो, उसी के लोगों को अनुकूल पड़ेगा और वही सेवा अगर किसी और समाज को देने जाएँ तो वह प्रतिकूल पड़ेगा। यानी कि व्यवहार धर्म कब कहलाता है कि जो सभी को एक समान लगे, तब! अभी तक आपने जो किया, वह समाजसेवा कहलाती है। हर एक की समाजसेवा अलग-अलग प्रकार की होती है। हर एक समाज अलग प्रकार का है, उसी तरह सेवा भी अलग प्रकार की होती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यवहार में ऐसा होता ही है न कि दया भाव रहता है, सेवा रहती है, किसी के प्रति *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) रहती है कि 'कुछ कर लूँ'। किसी को नौकरी दिलवानी, बीमार को होस्पिटल में जगह दिलवानी, यानी कि ये सभी क्रियाएँ, वह एक प्रकार का व्यवहार धर्म ही हुआ न?

दादाश्री : वे सब तो सामान्य फ़र्ज़ हैं। समाजसेवा तो, जिसने बीड़ा उठाया है, यानी घर में बहुत ध्यान नहीं देता, और बाहर लोगों की सेवा में पड़ा हुआ है, वह समाजसेवा कहलाती है। जबकि बाकी के सब तो खुद के आंतरिक भाव कहलाते हैं। ऐसे भाव तो खुद को आते ही रहते हैं। किसी पर दया आए, किसी पर *लागणी* हो वगैरह, ऐसा सब तो खुद की प्रकृति में लेकर ही आया होता है, लेकिन आखिर में यह सारा प्रकृति धर्म ही है। समाजसेवा भी प्रकृति धर्म है। उसे प्रकृति स्वभाव कहते हैं कि 'इसका स्वभाव ऐसा है, इसका स्वभाव ऐसा है।' किसी का स्वभाव दु:ख देने का होता है, किसी का स्वभाव सुख देने का होता है। इन दोनों के स्वभाव, वे प्रकृतिक स्वभाव कहलाते हैं, आत्मस्वभाव नहीं। प्रकृति में जैसा माल भरा है, वैसा ही उसका माल निकलता है।

अंततः उपकार खुद पर ही करना है

कभी किसी पर भी उपकार किया हो, किसी का फायदा किया हो, किसी के लिए जीए हों तो उतना खुद को लाभ होता है, लेकिन वह भौतिक लाभ होता है, उसका भौतिक फल मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : किसी पर उपकार करने के बजाय खुद पर उपकार करे तो?

दादाश्री : बस, खुद पर उपकार करने के लिए ही सबकुछ करना है। यदि खुद पर उपकार करे तो उसका कल्याण हो जाए। लेकिन उसके लिए खुद अपने आप को जानना पड़ेगा, तब तक लोगों पर उपकार करते रहना, लेकिन उसका भौतिक फल मिलता रहेगा। खुद अपने आप को जानने के लिए, 'हम कौन हैं?' वह जानना पड़ेगा। अभी तक तो आप 'मैं चंदूभाई हूँ,' उतना ही जानते हो न? या और भी कुछ जानते हो? 'मैं ही चंदूभाई हूँ,' ऐसा कहोगे। 'इसका पति हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ,' ऐसी सब श्रृंखलाएँ! ऐसा ही है न? वही ज्ञान आपके पास है न? उससे आगे नहीं गए हैं न?

यह स्वार्थ है या परार्थ?

लोग जिसे स्वार्थी कहते हैं, उसे वीतराग परार्थी कहते हैं। परार्थी यानी पराये के लिए ही ये गड़बड़ करता रहता है और भयंकर कर्म बाँधता है। या तो परमार्थी अच्छा और नहीं तो स्वार्थी अच्छा। सच्चा स्वार्थ अच्छा है। यह स्वार्थ तो परार्थ है। पत्नी और बच्चों के लिए उल्टी-सीधी गड़बड़ें करता है, और फिर खुद तो कर्म बाँधकर चला जाएगा और सारा खाएँगे-पीएँगे उसके बच्चे और खुद बेचारा पाप बाँधकर जाएगा। इसलिए उस पर तो करुणा रखने जैसा है।

प्रश्नकर्ता : स्वार्थ और निःस्वार्थ, इन दोनों में किस तरह फर्क करें?

दादाश्री : आपने कोई स्वार्थी इंसान देखा है?

प्रश्नकर्ता : सभी को खुद के लिए स्वार्थ तो होता ही है न?

दादाश्री : नहीं, वह स्वार्थ नहीं है, वह तो परार्थ है। परार्थ को ही लोग स्वार्थ कहते हैं। स्वार्थी तो मेरे जैसा शायद ही कोई होता है, जो खुद का स्वार्थ साधकर चले जाते हैं। यह तो परार्थ है। परायों के लिए जीते हैं, मेहनत भी परायों के लिए करते हैं। यह जो स्वार्थ कहलाता है, वह भ्रांति की भाषा में कहलाता है। इसकी तो समझ ही नहीं, इसलिए फॉरिन डिपार्टमेन्ट को ही होम कहते हैं। फॉरिन को होम कहेंगे तो क्या फायदा होगा? अत: ये तो परार्थ को ही स्वार्थ मानते हैं और परायों के लिए ही सारे जोखिम मोल लेते हैं। हमें भ्रांति से दिखता है कि यह वाइफ मेरी है, ये बच्चे मेरे हैं, और यह सब जो दिखाई दे रहा है, वह सब भ्रांति से मेरा लग रहा है। वास्तव में खुद के नहीं हैं। और वह खुद का नहीं है, ऐसा भी नहीं। वह खुद का है लेकिन वह ड्रामेटिक होना चाहिए। उसे आप ड्रामेटिक रखते नहीं हो न?

प्रश्नकर्ता : यों तो दुनिया के मंच पर सभी एक्टर ही हैं न?

दादाश्री : एक्टर तो हैं, लेकिन सब उलझे हुए ही हैं न! यह उलझन तो उसीकी है न! जिसे स्वार्थ मानते हैं, वह स्वार्थ नहीं है। स्वार्थ का मतलब तो 'स्व' का अर्थ करना। होम डिपार्टमेन्ट में रहकर, 'स्व' को 'स्व' माने तो वह होम डिपार्टमेन्ट का लाभ उठा सकता है। वर्ना यह तो फॉरिन को होम मानता है, वह स्वार्थ नहीं है, परार्थ है।

जगत् के लोग तो एक्सेस परिणाम को आग्रह कहते हैं। संसार में ज़रूरत के मुताबिक परिणाम को आग्रह नहीं कहते, उसी प्रकार से जो ज़रूरत के मुताबिक हो, उसे स्वार्थ नहीं कहते। माँ

का और बच्चे का स्वार्थ ही है न? लेकिन ज़रूरत के मुताबिक परिणाम को स्वार्थ नहीं कहते, एक्सेस हो जाए तभी स्वार्थ कहलाता है। उसी प्रकार जब एक्सेस हो जाए तब आग्रह कहलाता है। ज़रूरत के मुताबिक हो, तो कोई आपत्ति नहीं उठाएगा न? इस दाल में कोई चीज़ ज़रूरत के मुताबिक डाली हो तो कोई आपत्ति उठाएगा?

इस जगत् में सभी लोगों को स्वार्थी नहीं कहते हैं। वास्तव में तो यह पूरा जगत् स्वार्थी ही है, लेकिन वह बिलीफ में है इसलिए वह स्वार्थ कहलाता ही नहीं है, लेकिन एक्सेस होते ही वह स्वार्थ कहलाता है। और वास्तव में स्वार्थ तो कौन सा है? कि खुद खुद के लिए स्वार्थ रखे, स्वयं शुद्धात्मा का और वह भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान हो जाए, तब वह वास्तव में स्वार्थ कहलाएगा। यह तो सब परार्थ कहलाता है। स्वार्थ से यहाँ पर सब इकट्ठा करता है, फिर अर्थी निकलती है।

प्रश्नकर्ता : स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ को ज़रा ठीक से समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है न, कि यहाँ पर आपके गाँव में कोई स्वार्थी व्यक्ति है क्या?

प्रश्नकर्ता : सचमुच के स्वार्थी नहीं मिलते।

दादाश्री : नहीं, वे भी सचमुच के स्वार्थी नहीं हैं। जब तक 'मैं चंदूभाई हूँ,' चंदूभाई ही आपका स्वरूप है, तब तक आप स्वार्थी माने ही नहीं जा सकते और आप जो-जो करते हो वह सारा परार्थ ही है।

'जो मरण आ ज़िंदगी नी छे अरे छेल्ली दशा,
(देख मृत्यु, इस ज़िंगदी की हे रे अंतिम दशा)
तो परार्थे वापरवा मां, आ जीवन ना मोह शा?'
(तो परार्थ के लिए इसका उपयोग करने में, इस जीवन का मोह क्या?)

यह स्वार्थ तो गलत स्वार्थ है, लेकिन इस परार्थ में यानी अभी भी किसी के, औरों के लाभ के लिए जीवन गुज़रे, जैसे कि यह जो मोमबत्ती जलती है, वह क्या खुद के प्रकाश के लिए जलती है? सामनेवाले के लिए, परार्थ के लिए करती है न? सामनेवाले के फायदे के लिए करती है न? उसी तरह अगर ये लोग सामनेवाले के फायदे के लिए जीएँ तो उनका खुद का फायदा तो इसमें है ही। यों भी मरना तो है ही! अतः अगर सामनेवाले का फायदा करने जाएगा तो तेरा फायदा तो अंदर है ही और सामनेवाले को त्रास देने जाएगा तो उसमें तेरा त्रास है ही। तुझे जो करना हो वह कर। तो क्या करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : परोपकार के लिए ही जीना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, परोपकार के लिए ही जीना चाहिए। लेकिन अब यदि तुरंत ही आप ऐसे लाइन बदल लोगे तो ऐसा करते समय पिछले रिएक्शन तो आएँगे ही, तब फिर आप परेशान हो जाओगे कि 'यह तो अभी भी मुझे सहन करना पड़ रहा है!' लेकिन कुछ समय तक सहन करना पड़ेगा, उसके बाद आपको कोई दु:ख नहीं रहेगा। लेकिन अभी तो नये सिरे से लाइन बना रहे हो, इसलिए पिछले रिएक्शन तो आएँगे ही। अभी तक जो उल्टा किया था, उसके फल तो आएँगे ही न?

परार्थ यानी क्या? परायों के लिए, बच्चों के लिए, औरों के लिए जीना, तब उसमें तुझे क्या मिला? यहाँ करोड़ रुपये इकट्ठे करता है, *अणहक्क* का लेता है, *अणहक्क* का सबकुछ भोग लेता है और फिर सबकुछ बच्चों के लिए छोड़कर चला जाता है। ऐसा है यह जगत्!

कार्य का हेतु, सेवा या लक्ष्मी?

हर एक काम का हेतु होता है कि किस हेतु से यह काम किया जा रहा है। उसमें यदि उच्च हेतु नक्की किया जाए, यानी

क्या कि यह अस्पताल बनाना है, तो पेशेन्ट किस तरह स्वास्थ्य प्राप्त करें, किस प्रकार सुखी हो, किस तरह लोग आनंद में आए, कैसे उनकी जीवनशक्ति बढ़े, ऐसा अपना उच्च हेतु नक्की किया हो और सेवाभाव से ही वह काम किया जाए, तब उसका बाइ प्रोडक्शन क्या? लक्ष्मी। अतः लक्ष्मी तो बाइ प्रोडक्ट है, उसे प्रोडक्शन मत मानना। पूरे जगत् में लक्ष्मी को प्रोडक्शन बना दिया है इसलिए फिर उसे बाइ प्रोडक्शन का लाभ नहीं मिलता। अतः आप यदि सिर्फ सेवा का भाव ही नक्की करो तो उसके बाइ प्रोडक्शन में तो फिर और अधिक लक्ष्मी आएगी। यानी यदि लक्ष्मी को बाइ प्रोडक्ट में ही रखें तो लक्ष्मी अधिक आती है, लेकिन यह तो लक्ष्मी के हेतु से ही लक्ष्मी के लिए प्रयत्न करते हैं, इसलिए लक्ष्मी नहीं आती। इसलिए आपको यह हेतु बता रहे हैं कि यह हेतु रखना 'निरंतर सेवाभाव।' तो बाइ प्रोडक्ट अपने आप ही आता रहेगा। जिस तरह बाइ प्रोडक्ट में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती, खर्चा नहीं करना पड़ता, वह फ्री ऑफ कॉस्ट होता है, उसी तरह यह लक्ष्मी भी फ्री ऑफ कॉस्ट मिलती है। आपको ऐसी लक्ष्मी चाहिए या *ऑन* (मूल क़ीमत से ज़्यादा में बेचना) की लक्ष्मी चाहिए? *ऑन* की लक्ष्मी नहीं चाहिए? तो फिर अच्छा है! अगर फ्री ऑफ कॉस्ट मिले तो वह कितनी अच्छी! अतः सेवाभाव नक्की करो, मनुष्य मात्र की सेवा। क्योंकि हमने अस्पताल खोला यानी कि हम जो विद्या जानते हैं सेवाभाव में उस विद्या का उपयोग करें, वही अपना हेतु होना चाहिए। उसके फलस्वरूप दूसरी चीज़ें फ्री ऑफ कॉस्ट मिलती रहेंगी और फिर लक्ष्मी की कभी भी कमी नहीं पड़ेगी और जो लक्ष्मी के हेतु से ही करने गए उन्हें नुकसान हुआ है। हाँ, और लक्ष्मी के हेतु से ही कारखाना बनाया, फिर बाइ प्रोडक्ट तो रहा ही नहीं न! क्योंकि लक्ष्मी खुद ही बाइ प्रोडक्ट है, बाइ प्रोडक्शन का! अतः हमें प्रोडक्शन नक्की करना है, ताकि बाइ प्रोडक्शन फ्री ऑफ कॉस्ट मिलता रहे।

आत्मा प्राप्त करने के लिए जो कुछ भी किया जाता है,

वह प्रोडक्शन है और उसकी वजह से बाइ प्रोडक्ट मिलता है और संसार की सभी ज़रूरतें पूरी होती हैं। मैं अपना एक ही तरह का प्रोडक्शन रखता हूँ, 'जगत् परम शांति को प्राप्त करे और कुछ मोक्ष को पाएँ।' मेरा यह प्रोडक्शन और उसका बाइ प्रोडक्शन मुझे मिलता ही रहता है। ये चाय-पानी, जैसा आपको मिलता है, हमें उससे कुछ अलग ही प्रकार का मिलता है। उसका क्या कारण है? कि आपकी तुलना में मेरा प्रोडक्शन उच्च कोटि का है। यदि आपका प्रोडक्शन भी उतना ही उच्च कोटि का होगा तो बाइ प्रोडक्शन भी उच्च कोटि का आएगा।

बाकी का सारा प्रोडक्शन बाइ प्रोडक्ट होता है, उसमें आपको ज़रूरत की सभी चीज़ें मिलती रहेंगी और वे ईज़िली मिलती रहेंगी। देखो न! यह पैसों का प्रोडक्शन किया है इसलिए आज पैसा ईज़िली नहीं मिलता। भागदौड़। बदहाल घूम रहे हों ऐसा करते हैं और मुँह पर अरंडी का तेल चुपड़कर घूम रहे हों, ऐसे दिखते हैं! घर में अच्छा खाने-पीने का है, कितनी सुविधाएँ हैं, रास्ते कितने अच्छे हैं, रास्ते पर चलें तो पैर धूलवाले नहीं हो जाते! इसलिए मनुष्यों की सेवा करो, मनुष्य में भगवान विराजमान है, भगवान भीतर ही बैठे हैं। बाहर भगवान ढूँढने जाओगे तो वे मिलेंगे नहीं। आप इंसानों के डॉक्टर हो इसलिए आपको इंसानों की सेवा करने को कहता हूँ। जानवरों के डॉक्टर होंगे तो उन्हें जानवरों की सेवा करने का कहूँगा। जानवरों में भी भगवान विराजमान हैं। लेकिन इन मनुष्यों में भगवान विशेष रूप से प्रकट हुए हैं!

प्रश्नकर्ता : कर्तव्य तो हर एक व्यक्ति का होता ही है, फिर वकील हो या डॉक्टर, लेकिन कर्तव्य तो यही होता है कि 'मनुष्य मात्र का अच्छा करूँ?'

दादाश्री : हाँ, लेकिन यह तो 'अच्छा करना है' ऐसी गाँठ बाँधे बिना बस करता ही रहता है, कोई भी डिसीज़न नहीं लिया है। कोई भी हेतु निश्चित किए बगैर यों ही गाड़ी चलती रहती

है। कौन से शहर जाना है, उसका ठिकाना नहीं और कौन से शहर में उतरना है, उसका भी ठिकाना नहीं है। रास्ते में कहाँ पर चाय-नाश्ता करना है, उसका भी ठिकाना नहीं है। बस, दौड़ता ही रहता है। इसलिए सबकुछ उलझ गया है। हेतु निश्चित करने के बाद ही सारे कार्य करने चाहिए।

लक्ष्मी तो बाइ प्रोडक्शन है, उसका प्रोडक्शन नहीं हो सकता। उसका प्रोडक्शन हो सकता तो यदि हम कारखाना बनाते तो प्रोडक्शन में अंदर से पैसा मिलता, लेकिन नहीं, लक्ष्मी तो बाइ प्रोडक्शन है। पूरे जगत् को लक्ष्मी की ज़रूरत है। तो फिर हम ऐसी क्या मेहनत करें कि अपने पास पैसा आए, इसे समझने की ज़रूरत है। लक्ष्मी, वह बाइ प्रोडक्शन है, इसलिए अपने आप प्रोडक्शन में से आएगी, सहजभाव से आए ऐसी है। जबकि लोगों ने लक्ष्मी के कारखाने बना दिए, प्रोडक्शन ही उसे बना दिया।

हमें तो सिर्फ हेतु ही बदलना है, और कुछ नहीं करना है। पंप के इन्जन का एक पट्टा उधर लगा दें तो पानी निकलता है और पट्टा इस तरफ लगा दें तो डांगर में से चावल निकलते हैं। यानी सिर्फ पट्टा देने में ही फर्क है। हेतु निश्चित करना है और वह हेतु फिर हमारे लक्ष्य में रहना चाहिए। बस, और कुछ भी नहीं। लक्ष्मी लक्ष्य में रहनी ही नहीं चाहिए।

[१६]

बॉस-नौकर का व्यवहार

'स्वतंत्र' बनाए, वह शिक्षण सच्चा!

इस प्रकार बहुत जन्मों से पढ़ते रहे हैं और वही का वही वापस पढ़ना? यह तो बच्चा बनकर फिर अस्सी वर्ष का बूढ़ा हो जाता है और फिर मर जाता है। फिर से जब यहाँ पर आता है, तब फिर वापस एक एकम एक, दो एकम दो सीखता है! अरे, यह तो पिछले जन्म में भी पढ़ा था न? लेकिन विस्मृत हो जाता है न? माता के गर्भ में आने पर सबकुछ भूल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सच्चा शिक्षण तो आपके पास है।

दादाश्री : सच कह रहा है, सच्चा शिक्षण 'यही' है, असल शिक्षण 'यही' है। अतः यदि यह हम यहाँ पर पढ़ लें न, तो फिर 'शालाओं' में बहुत नहीं जाना पड़ेगा! मेरे पास से कुछ शिक्षण ले जाए न तो फिर वह स्वतंत्र है और वह कितनी अधिक स्वतंत्रता है न! वर्ल्ड में कोई *ऊपरी* नहीं, ऐसी स्वतंत्रता! क्योंकि मेरा *ऊपरी* कोई नहीं है, तब फिर आपका *ऊपरी* सिर्फ मैं रहा, लेकिन मैं तो बालक जैसा हूँ। छोटा बालक होता है न, वैसा नहीं लगता मैं? लक्षण, निर्दोषता, सबकुछ नहीं दिखता? 'ज्ञानीपुरुष' बालक जैसे होते हैं, वे डाँट-डाँटकर आपको कितना डाँटेंगे? सिर्फ ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' ही *ऊपरी* हों, तो फिर हर्ज नहीं है। मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है और आपका भी *ऊपरी* कोई नहीं है। खुद का *ऊपरी*

खुद की भूलें हैं। भूलें अर्थात् ब्लंडर्स और मिस्टेक्स। ये दो ही खुद के *ऊपरी* हैं। अन्य कोई जगत् में *ऊपरी* नहीं है। हर एक का जगत् स्वतंत्र है। अपने-अपने कार्यों का जोखिमदार खुद ही है, इसलिए जोखिमदारी समझकर कार्य करना।

उकसाने में जोखिम किसे?

यह जगत् अपना है, इसमें अन्य किसी की ज़िम्मेदारी है ही नहीं। भगवान यदि *ऊपरी* होते न, तब तो हम समझें कि 'हम पाप करेंगे और भगवान की भक्ति करेंगे तो धुल जाएगा,' लेकिन ऐसा नहीं है। यह तो अपनी ही ज़िम्मेदारी है। किंचित्‌मात्र, एक भी उल्टा विचार आया तो उसकी ज़िम्मेदारी अपनी ही है। होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल हम ही हैं। ऊपर कोई बाप भी नहीं है। आपका कोई *ऊपरी* है ही नहीं, जो हो, वह आप ही हो।

सिर्फ व्यक्ति के रूप में सब अलग हैं, लेकिन हैं आत्मा ही, यानी कि वे भी भगवान ही हैं। इसलिए किसी का भी नाम मत देना और किसी को परेशान मत करना। हेल्प हो सके तो करना और नहीं हो तो कोई बात नहीं, लेकिन परेशान तो नाम मात्र के लिए भी नहीं करना। लोग बाघ को परेशान नहीं करते, साँप को परेशान नहीं करते, और मनुष्यों को ही परेशान करते हैं, उसका क्या कारण है? बाघ या साँप से तो मर जाएँगे, और मनुष्य तो, बहुत हुआ तो लकड़ी से मारेगा या फिर ऐसा ही कुछ करेगा। इसीलिए मनुष्य को परेशान करते हैं न! किसी को भी परेशान नहीं करना चाहिए, क्योंकि भीतर परमात्मा बैठे हैं, आपको समझ में आती है यह बात? आपने किसी को परेशान किया था क्या?

प्रश्नकर्ता : खुद के जो मातहत हों उन्हें लोग परेशान करते हैं।

दादाश्री : जब तक आपको अपने मातहत को कहने की

आदत है, डाँटने की आदत है, तब तक आपको भी कोई डाँटनेवाला मिल आएगा। मैं किसी को भी नहीं डाँटता, इसलिए मुझे कोई नहीं डाँटता। अपने से नीचेवाले डाँटने के लिए नहीं हैं, जिस प्रकार से उन्हें संतोष हो उस प्रकार हमें अपना काम निकाल लेना चाहिए। इस बैल को रोज़ दस रुपये का खिलाते हैं और तीस रुपये का काम निकलवा लेते हैं। उसी तरह, अपने यहाँ जो मज़दूर काम कर रहे हों, वे बेचारे तो यदि उन्हें फायदा होगा तभी अपने यहाँ रहेंगे न? लेकिन हम उसे डाँटते रहें तो वह कहाँ जाएगा? जीवमात्र में भगवान बिराजमान हैं, लेकिन मनुष्य में तो भगवान व्यक्त रूप में हैं, ईश्वर स्वरूपी हो गए हैं, भले ही परमेश्वर नहीं बने हैं। ईश्वर क्यों कहलाते हैं? क्योंकि वह यदि मन में पक्का कर ले न कि 'इन्हें एक दिन गोली से मार डालना है,' तो वह एक दिन गोली चलाकर मार सकता है न? इस तरह से ये ईश्वर स्वरूप है, अतः उनका नाम ही नहीं लेना चाहिए। इसलिए हम कहते हैं न, कि इस काल में एडजस्ट एवरीव्हेर हो जाओ। कहीं भी डिस्एडजस्ट होने जैसा नहीं है। यहाँ से तो भाग छूटने जैसा है। 'यह' विज्ञान तो एक-दो जन्मों में मोक्ष में ले जानेवाला है, इसलिए यहाँ काम निकाल लेना है।

उसमें भूल किसकी?

प्रश्नकर्ता : मेरा स्वभाव ऐसा है कि गलत चीज़ सहन नहीं होती, इसलिए गुस्सा आता रहता है।

दादाश्री : गलत है, ऐसा न्याय कौन करता है?

प्रश्नकर्ता : अपनी बुद्धि जितना काम करती है, उस अनुसार करते हैं।

दादाश्री : हाँ, उतना ही न्याय होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा है न, कि एक व्यक्ति को हम रोज़ के पच्चीस रुपये तनख़्वाह देते हों, और वह व्यक्ति पाँच रुपये

का भी काम नहीं करे, तो हमें ऐसा तो लगेगा न कि यह ठीक नहीं है?

दादाश्री : लेकिन वह काम क्यों नहीं करता होगा? किस कारण से वह काम नहीं करता होगा?

प्रश्नकर्ता : उसका स्वभाव प्रमादी है इसलिए।

दादाश्री : ऐसे व्यक्ति क्या सभी लोगों को मिलते होंगे?

प्रश्नकर्ता : सभी को मिलते होंगे, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : तो आपको ही ऐसा व्यक्ति क्यों मिला? उसका कोई कारण तो होगा न?

प्रश्नकर्ता : मेरे पिछले कर्म ऐसे रहे होंगे, इसलिए मुझे मिला।

दादाश्री : तो फिर उसका क्या दोष? तो उस पर गुस्सा करने का कारण ही कहाँ रहा? गुस्सा तो अपने आप पर करो कि, ''भाई, 'मैंने' ऐसे कैसे कर्म बाँधे कि मुझे ऐसा व्यक्ति मिला?'' खुद की कमज़ोरी तो खुद को ही नुकसान पहुँचाती है। 'भुगते उसी की भूल।' वह काम नहीं करे और आप गुस्सा करो तो आपको दुःख होगा, अतः भूल आपकी है। वह तो वैसे का वैसा ही रहेगा। कल भी वैसा ही करेगा और ऊपर से आपकी नकल उतारेगा। आप पीछे मुड़े कि आपके पीछे मज़ाक करेगा, कहेगा कि, 'घनचक्कर ही है न, जाने दो न उसे!'

प्रश्नकर्ता : तो उसे अपने पास बैठाकर, समझाकर कहना चाहिए कि, 'तुझसे इतना काम क्यों नहीं हो सकता? जबकि दूसरे तो कितना अच्छा काम करते हैं।' उसे नहीं आता हो तो सिखलाएँ, ऐसा करें?

दादाश्री : हाँ, उसे समझ में आए, उसे *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) उत्पन्न हो, उस तरह से समझाना चाहिए।

अन्डरहैन्ड भी उपकारी बनें

आपके यहाँ कोई नौकरी कर रहा हो तो कभी भी उसका तिरस्कार मत करना, छेड़ना मत, सभी को मानसहित रखना। न जाने किस व्यक्ति से हमें क्या लाभ हो जाए! आज आपको 'इनके' द्वारा बहुत लाभ हो गया। मेरे साथ परिचय हुआ न, वही बहुत बड़ा लाभ हो गया। इसे अपूर्व लाभ कहते हैं। किसी काल में नहीं सुना हो, वैसा लाभ कहलाता है। इसलिए किसी को परेशान मत करना। घर के सामने कुत्ता बैठा हुआ हो तो उसे भी परेशान मत करना। वह कुत्ता यदि किसी के पीछे पड़ जाए तो वह व्यक्ति आपके घर में घुस जाएगा और आपको सत्संग करवाएगा। कुत्ता यदि 'ज्ञानीपुरुष' के पीछे पड़ गया तो 'ज्ञानीपुरुष' आसरा ढूँढ़ेंगे और उसके घर में घुस जाएँगे। देखो, कुत्ता काम में आया न! सभी कुछ काम में आए, ऐसा है इस जगत् में! सभी में परमात्मा बिराजमान है और जीव मात्र रात-दिन आपकी सेवा में ही है। लेकिन उसे सेवा का लाभ उठाना नहीं आता, लाभ लेना नहीं आता।

जहाँ देखो वहाँ बॉस, बॉस और बॉस! और आप भी वापस किसी के बॉस। वह बॉस उस अन्डरहैन्ड को डाँट-डाँटकर बेचारे का तेल निकाल देता है, चैन से बैठने भी नहीं देता। इसलिए हम सभी को इतना अच्छा न्यायी जीवन जीना चाहिए कि किसी को भी दु:ख नहीं हो। बॉस को दु:ख नहीं हो, अन्डरहैन्ड को दु:ख नहीं हो, घर पर वाइफ को दु:ख नहीं हो, बच्चों को दु:ख नहीं हो, ऐसा जीवन जीने के लिए आपको आपकी 'मशीनरी' 'ज्ञानीपुरुष' से 'ओवरहॉल' करवानी पड़ेगी। ओवरहॉल करवाने का टेन्डर लाए हो?

प्रश्नकर्ता : आपकी वाणी में भी कोन्ट्रेक्टर की भाषा निकलती है।

दादाश्री : हाँ, ऐसी ही निकलती है! हम कोन्ट्रेक्टर हैं न, इसलिए ये टेन्डर वगैरह के बारे में सब जानते हैं।

ऊपरी कैसे पुसाए?

प्रश्नकर्ता : जितना इस बॉस के सामने झुकते हैं, उतना यदि भगवान के सामने झुकें, तब तो कल्याण हो जाए।

दादाश्री : हाँ, कल्याण हो जाए। उतना यदि भगवान को नमस्कार करें, तब भी निबेड़ा आ जाए। क्योंकि भगवान के घर पर कमी नहीं है। लोगों को बॉस के सामने झुकना पसंद नहीं है। लेकिन एक तरफ संसार चलाना पड़ता है और वह अनिवार्य है न! वह क्या करे? इसलिए बॉस के सामने झुककर, काम करके, दो उल्टे-सुल्टे बोल सहन करकर चलाना पड़ता है। बॉस घर से चिढ़कर आया हो, तो वह आप पर चिढ़ता रहेगा।

इसलिए मुझे तेरहवें वर्ष में विचार आया था कि सिर पर *ऊपरी* होगा तो वह कैसे पुसाएगा? मुझे वह विचार उस समय बहुत खटकता था। *ऊपरी* हमें बिना कारण के डाँटते-डपटते रहते हैं! न्यायसंगत डाँटे, तो समझें कि ठीक है, लेकिन यह तो खुद चिढ़ा हुआ होता है, तो अपने ऊपर भी चिढ़ता है, इसलिए मुझे बॉस पसंद नहीं थे। इसलिए मैंने नक्की किया था कि भगवान को ही ढूँढ निकालना है। यह बॉस तो कैसे रास आए?

सिर्फ इन मनुष्यों को ही ठेठ तक बेगार करना पड़ता है। वर्ना ये गाय-बैल जब बूढ़े हो जाते हैं, तब उन्हें पशुशाला में रख आते हैं। सिर्फ इन मनुष्यों को ही ठेठ तक हाय-हाय, हाय-हाय, और भागदौड़ करनी पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : तो नौकरी छोड़ देना अच्छा है न?

दादाश्री : नहीं। नौकरी करना भी अच्छा नहीं है और छोड़ देना भी अच्छा नहीं है। छोड़ दोगे तो घर में सब के मन में

खटकता रहेगा और नौकरी करोगे तो आपको झंझट रहेगा। इसके बजाय जो चल रहा है, वैसे ही चलने दो न गाड़ी! अपने आप छूट जाएगी, तब ठीक है!

अपने जोड़ नरम हो जाएँ, तब बच्चे भी डाँटते-डपटते हैं इसमें कहाँ सुख आया? ये सब बैराग की बातें हैं। लेकिन हमने ऐसा देखा है। तभी हमें लगता है कि यह तो वास्तव में बंधन है! हमें तो यह सब बचपन से ही बंधन लगने लगा था, *ऊपरी* पसंद नहीं थे। हमें *ऊपरी* बिल्कुल भी पसंद नहीं थे, वह तो बहुत बड़ा त्रास लगता था। मास्टर साहब को तो मजबूरन चला लेना पड़ता था। मास्टर साहब के पास पढ़ने जाना पड़ता था न, वह तो मजबूरन चला लेता था। क्योंकि घर से फुटबॉल को मारते थे कि जाओ स्कूल में और स्कूल में मास्टर साहब फुटबॉल को मारते थे कि घर पर जाओ, तो फुटबॉल जैसी दशा होती थी। तो फिर ऊपरी अच्छे लगते होंगे? अभी पूरे वर्ल्ड में हमारा कोई ऊपरी नहीं है। ऊपरी कैसे पुसाए? और आपको भी ऊपरी रहित बना देता हूँ, इसके बावजूद मुझे किसी का ऊपरी नहीं बनना है।

अन्डरहैन्ड को 'डिसमिस' मत करना

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरी नौकरी पुलिस विभाग में है, हमारे विभाग में करप्शन बहुत चलता है। फिर मुझे भी करना पड़ता है।

दादाश्री : जो करप्शनवाले हैं, वे लोग तो सड़े हुए बीज डाल रहे हैं। वे जब उगते हैं, तब पत्ते भी सड़े हुए होते हैं! ऐसा आपने देखा है? पत्तों में छेद होते हैं? देखो, आश्चर्य है न! ईमानदार को अभी इन लोगों की तरफ से परेशानी है। थोड़ा सा भी ईमानदार कोई आया तो उसे जीने ही नहीं देते, जैसे कि 'अरे यह भूत कहाँ से आ गया?' *ऊपरी* अधिकारी भी ऐसा समझते हैं कि यह दख़ल आई। सभी ओर ईमानदार को परेशानी है, लेकिन

अंत में भगवान और कुदरत, ईमानदार की तरफ ही खड़े रहते हैं!

प्रश्नकर्ता : गवर्नमेन्ट की बड़ी पोस्ट पर हमारे नीचेवाला जब बहुत उल्टा करने लगें, तब हम निश्चित करते हैं कि इनके सामने कोई कदम उठाएँ और उसे डिसमिस कर दें।

दादाश्री : डिसमिस मत करना। हमें उसे इन्फोर्मेशन देनी चाहिए कि, 'भाई, ऐसा नहीं होना चाहिए।' वर्ना आपका यह गवर्नमेन्ट का विभाग है, इसलिए डिसमिस तो करना ही मत। आपके ऊपर आपको कोई डिसमिस करनेवाला है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : है न!

दादाश्री : तो फिर डिसमिस करने के ऐसे जोखिम तो लेने ही नहीं चाहिए। आपके *ऊपरी* ऑफिसर ने कहा हो, फिर भी आपको नरम कर देना चाहिए अंत में झूठ बोलकर भी नरम कर देना। आपके खुद के डिसमिस होने की बात आए, तो आप पर खुद पर वह डिसमिस शब्द सुनते ही बहुत अधिक असर हो जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : होगा न! सभी को होता है।

दादाश्री : तब उस बेचारे पर कितना अधिक असर होगा? इस जगत् में किसी को भी दुःख किसलिए देना है? आप नियमपूर्वक रहो, नियमों में निकलने के सभी रास्ते होते हैं। और माइल्ड भाषा होती है या नहीं होती? आप तो ऐसा कहना कि, 'आपको डिसमिस क्यों नहीं करें, उसका एक्सप्लेनेशन दो।' और 'मैं आपको डिसमिस कर दूँगा।' इन दोनों वाक्यों में क्या फर्क नहीं है? इसलिए माइल्ड भाषा का उपयोग करना चाहिए। यानी यह तो हमारी ज़िम्मेदारी है, बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि भले ही अपने हाथ से गलत हो, लेकिन किसी को जीवित जाने देना, किसी की नौकरी या पेट पर लात मत मारना।

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने भी ज़रा नियम रखे हुए थे कि फाँसी पर चढ़ाना हो न, तीन बजकर पैंतालीस मिनट पर इस व्यक्ति को फाँसी पर चढ़ाना है, उसमें एक सेकन्ड भी आगे-पीछे नहीं होता था। और यदि एक मिनट भी आगे-पीछे हो जाए तो फिर फाँसी रोकनी पड़ती थी। वह समय यानी समय। फाँसी किसी से भी रोकी नहीं जा सकती। फिर भी उन दिनों नियम ऐसा था कि जे.पी. वहाँ से होकर गुज़र रहे हों और उनकी नज़र पड़ जाए तो उस मुजरिम को छोड़ देना पड़ता था और ऐसे बहुत सारे छूट गए थे। कुछ लोग जान-बूझकर जे.पी. को वहाँ पर बुलवाते थे। इस तरह किसी को डिसमिस करना हो तो झूठ बोलकर भी छुड़वा देना चाहिए। फिर अंदर गड़बड़ की है या और कुछ किया है, ऐसा सब देखने की ज़रूरत नहीं है।

ठेठ भगवान तक सिफारिश है। भगवान के दरवाज़े तक। फिर दरवाज़े के अंदर सिफारिश नहीं है। जे.पी. को लोग बुलाकर ले आते थे और उसकी फाँसी रुकवा देते थे। सरकार भी जानती थी कि ये लोग जे.पी. को बुला लाते हैं, ऐसे खटपट करनेवाले लोग हैं, लेकिन नियम यानी नियम! अब इस जे.पी. की नज़र से इतना अधिक फायदा होता है तो 'ज्ञानीपुरुष' की नज़र पड़े तो क्या नहीं हो सकता?

[१७]

जेब कटी? वहाँ समाधान!

जेब कटी, वहाँ हकीकत क्या है?

कुदरत हमेशा न्यायी रही है। इस जगत् में एक क्षणभर भी इस कुदरत ने अन्याय नहीं किया है। इन कोर्टों में अन्याय हो सकता है, लेकिन इसमें अन्याय नहीं हो सकता। इसलिए अभी बड़े लोग लूटते हैं, वह भी ठीक है। लोग काला बाज़ारी करते हैं, वह भी ठीक है। काला बाज़ार में ऐसा होगा, वह भी ठीक है। उसका परिणाम ऐसा आएगा, वह भी ठीक है। अतः कुदरत सबकुछ नियमपूर्वक ही करती है। एक्ज़ेक्ट नियमपूर्वक ही करती है। नियम से बाहर नहीं जाती। यह कुदरत अन्यायी नहीं हुई है, एक क्षणभर भी!

प्रश्नकर्ता : यानी अभी जो भुगत रहा है, वही बाद में पाएगा, ऐसा?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। भुगते या नहीं भुगते, कुदरत दंड देती ही रहती है। जिसकी जेब कटी है, उसे जगत् के लोग आश्वासन देते हैं कि, 'लो, चाय पीओ, ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा है, वैसा है।' अब कुदरत क्या कहती है? जिसकी जेब कटी वही गुनहगार है, वह आज पकड़ में आ गया। दो लोग साथ में बैठे थे, तो इसी की जेब क्यों कटी? यानी पहले जो किया था, उसका आज फल आया है। वह चोर तो जब पकड़ा जाएगा, तब गुनहगार कहलाएगा। अभी तो वह जलेबी खा रहा है और जिसकी जेब

कटी, वह अभी भुगत रहा है। इसलिए भुगते उसी की भूल। 'अभी कौन रो रहा है' वह देख लेना है। रोनेवाले के लिए समझना कि यही गुनहगार है। भुगते उसी की भूल। चोर जब भुगतेगा, तब उसकी भूल। इस जगत् का न्याय अलग है और कुदरत क्या कहती है? भुगते उसी की भूल। इसलिए शिकायत मत करना। कौन भुगत रहा है वह देख लो, उसी की भूल। यह बात बहुत गहरी है। यह बात यदि समझ में आ जाए तो ठेठ मोक्ष में ले जाए। गहराई से सोचे तो ठेठ मोक्ष में पहुँचा दे और बुद्धि से भूल देखने जाए न तो कभी भी संसार से बाहर निकलेगा ही नहीं। भुगते उसी की भूल पर से आपको समझना है कि यह तो हम भुगत रहे हैं, इसलिए अपनी ही भूल है और वही मोक्ष में जाने का मार्ग है।

इस जगत् में किसी का बंधन नहीं है। लाखों चोरों के बीच रहना पड़े और आप रात को सो जाओ और आपकी जेब में बहुत सारे रुपये हों, लेकिन फिर भी कोई भी चोर आपकी जेब को छू नहीं पाएगा। ऐसा नियमवाला है यह जगत्। और इस जगत् का रेग्युलेटर भी ऐसा है न, वह जगत् को इतना अधिक रेग्युलेशन में रखता है! यानी यह जगत् कोई गप्प नहीं है।

ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये ही दु:ख देनेवाले हैं। बाहर से कोई भी दु:ख नहीं देता। ये क्रोध-मान-माया-लोभ हमें क्या सिखलाते हैं कि यह दु:ख है, इस तरह आपको उल्टा रास्ता दिखाते हैं। वर्ना बाहर तो इस जगत् में कोई दोषित है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अपना कर्म दोषित है, ऐसा ही है न?

दादाश्री : नहीं, आप खुद ही दोषित हो, दोष और किसी का भी नहीं है। आपकी जेब कट जाए तो जेब कतरे का दोष नहीं है, आपके ही दोष के कारण यह जेब कटी है। पूर्वजन्म

के सारे हिसाब चुक रहे हैं। उसमें वह काटनेवाला तो अभी मौज कर रहा होगा, लेकिन आप आज पकड़ में आए हो।

प्रश्नकर्ता : कोई अपने पास से पच्चीस हज़ार रुपये ले जाए और वापस नहीं दे, तो वह भी हम पूर्वजन्म का अपना ऋण ही चुका रहे होंगे न?

दादाश्री : सब हिसाब ही है, इसलिए वरीज़ मत करना। वह सामने मिले तब भी उस पर चिढ़ना मत, नहीं तो एक तो रुपये गए और ऊपर से उसके साथ कर्म बँधेंगे।

प्रश्नकर्ता : 'वह भले ही ले गया,' ऐसे कहें?

दादाश्री : फिर ऐसा मत बोलना कि 'भले ही ले गया', वहाँ पर मौन रहना। 'वह भले ही ले गया' ऐसा बोलेंगे, तब भी गुनाह कहलाएगा। अंदर समझ जाना है कि अपनी भूल का परिणाम है यह, मुँह पर कुछ भी मत बोलना। नहीं तो वह व्यक्ति फिर चढ़ बैठेगा! मुँह पर तो ऐसा ही कहना कि, 'भाई, आपको ठीक लगे उतने तो कुछ वापस करो।' इतना कहना। अंदर समझना कि मिलें तो ठीक है और नहीं मिलें तो कुछ नहीं, लेकिन मुँह से कहना तो चाहिए।

बाकी बगैर हिसाब के तो मिलेंगे ही नहीं न! किसी और को नहीं दिए और इसी को क्यों दिए? यानी हिसाब है। हिसाब के बगैर तो वह एक बार भी नहीं मिलेगा।

हमें पूरा जगत् निर्दोष दिखता है। दोषित कोई है ही नहीं, पूरा जगत् ऐसा ही दिखता है। यदि कोई दोषित दिखता है, तो अभी वह अपनी भूल है। कभी न कभी तो निर्दोष देखना पड़ेगा न? संक्षेप में इतना समझ जाओ न कि, अपने हिसाब की वजह से ही है यह सब, तो भी सब बहुत काम आएगा।

आत्मा के पास जेब नहीं होती। यदि आप आत्मा हो तो

आपके पास जेब होगी ही नहीं, तो आपका कुछ कटेगा भी नहीं। जो कटा वह 'चंदूभाई' का कटा, लेकिन 'आप' कहते हो, 'मेरी जेब कट गई,' तब 'आप' 'चंदूभाई' हो गए। वह मिथ्यात्व है।

प्रश्नकर्ता : मैं सांसारिक व्यक्ति के तौर पर बात कर रहा हूँ कि मेरी जेब कट रही हो और मैं खुद देख रहा हूँ, मुझे पता हो कि जेब कट रही है, तो मुझे क्या करना चाहिए उस समय?

दादाश्री : अभी तो यदि आपकी जेब कट रही हो, तब आप अपनी तरह से वही करते हो उसे पकड़कर कि, 'तू मेरी जेब क्यों काट रहा है?' और उसे गालियाँ देते हो और ऐसा सब करते हो। लेकिन वास्तव में क्या करना चाहिए, आप वह पूछना चाहते हो? तो मैं क्या कहना चाहता हूँ कि, 'आपकी जेब' काटे तब तुरंत ही आपको भगवान की बात याद आनी चाहिए कि यह जेब काट रहा है, यह एक तरफ दो सौ रुपये पड़े हैं वह नहीं काटा और यह पाँच हज़ारवाली जेब काट रहा है, इसलिए यह मेरे ही कर्म का उदय है। वह जो जेब काट रहा होता है, उस घड़ी आपको कौन सा अच्छा योग मिलता है? कि सबसे बड़ा धर्मध्यान उत्पन्न होने का योग मिलता है, तब आप रौद्रध्यान करते हो। जेब काटता है, तब आपके कर्म के उदय से यह भाई मिला है, और यह दो सौ रुपयेवाली नहीं काटता और यह पाँच हज़ार रुपयेवाली जेब उसके हिस्से में आई है, यानी कि यह अपना हिसाब चुक रहा है।

प्रश्नकर्ता : यह तो कट जाने के बाद, जैसा आपने कहा उस अनुसार धर्मध्यान करना है, लेकिन जिस घड़ी कट रहा हो उस घड़ी क्या करना चाहिए? उसे रोकें या कटने दें?

दादाश्री : उस तरह कटने भी नहीं देनी है।

प्रश्नकर्ता : मुझे पता चला कि यह आदमी मेरी जेब काट रहा है तो मुझे क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपकी दृष्टि में आए तो उसे पकड़ना! उसे पकड़ने के बाद उस पर रौद्रध्यान मत करना। उसे कहना कि, 'भाई, किसलिए मेरी जेब काट रहा है? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? तुझे परेशानी हो तो ले मैं ये सौ रुपये देता हूँ, तू ले जा। यह पाँच हज़ार रुपये तो मुझे वहाँ जमा करवाने जाना हैं।' तो पचास-सौ रुपये उसे दे दें तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन ऐसे समाधानपूर्वक होना चाहिए। पकड़ना तो चाहिए। ऐसा नहीं कह सकते कि, 'भाई हाँ, काट ले! मेरे भगवान ने कहा है कि काट ले!' ऐसा नहीं कहना चाहिए। लेकिन यदि वह जेब काट जाने के बाद कलह करें, तो वह सब बेकार है।

जेब काटनेवाला जेब काटता है, उसमें गलत नहीं है। यह जगत् एक भी मिनट नियम से बाहर चला ही नहीं। फिर भी लोग कहते हैं कि, 'आज कल लोग नालायक हो गए हैं।' नहीं, ऐसे तो कुछ नालायक नहीं हो गए हैं। यह सब कुदरत ही करवाती है और ये लोग तो बीच में निमित्त हैं। और ये इगोइज़म करते हैं कि, 'मैंने किया, मैंने किया' इतना ही। अतः किसी का भी दोष मत निकालना, क्योंकि दोष निकालोगे तो फिर से आप जोखिमदार बन जाओगे। जोखिमदारी नहीं लेनी है न?

कुदरत की कैसी ग़ज़ब की प्लानिंग!

जेब काटना भी एक प्रकार की विद्या है न! इस दुनिया में जेब काटनेवालों को सभी ओर से ढूँढ-ढूँढकर मार डाला जाए तो क्या होगा? दुनिया अस्तव्यस्त (नियम विरुद्ध,अन्यायपूर्ण) हो जाएगी। जैसे ये बैन्डवाले होते हैं उनमें पिपूड़ीवाले को निकाल दें तो बैन्ड अच्छा दिखेगा? वैसे ही इन जेब काटनेवालों की ज़रूरत है और जगत् में जितने जेब काटनेवालों की ज़रूरत है, उतने ही हैं!

इन लोगों के पास जो रुपये हैं, उनमें से वे रुपये उनके नहीं हैं, पराये ही हैं। अब उनके वे रुपये कौन ले जाएगा? भगवान कहीं खुद नहीं आएँगे, भगवान खुद तो लेते नहीं हैं। इसलिए आपको ही यह सारा कारोबार अंदर-अंदर सौंप दिया है। तो औरों के रुपये जेब काटनेवाले काट लेते हैं, अब जेब कौन काटेगा लेकिन? जिसने मन में नक्की किया हो कि, 'बस, मुझे तो यही धंधा करना है।' तो फिर 'किसकी जेब काटूँ?' वह ऐसा ढूँढता है। तब कुदरत फिर उसे उसमें हेल्प करती है! क्योंकि वह उसका धंधा है। हर एक व्यक्ति स्वतंत्र है और कुदरत उसकी हेल्पर है। आपको जो धंधा करना हो, जो अनुकूल आए वह करो, कुदरत उसमें हेल्प करती है। वह इतनी अधिक हेल्पर होती है कि जेब काटनेवाले के सामने पुलिसवाला खड़ा हुआ होता है, वह जेब काटने की तैयारी करे, तब पुलिसवाले को एकदम दूसरी तरफ जाना पड़ जाता है। यानी कुदरत उसे हटा देती है, कुदरत जेब काटनेवाले के लिए जगह बना देती है। संयोग बैठा देती है। 'किसकी जेब काटनी' उससे भी मिलवा देती है।

यानी काटनेवाले को तो 'कौन सी जेब काटनी है' उसकी सभी तैयारी कर रखी होती है! और जेब काटने के बाद कौन से दरवाज़े से निकलना है, दरवाज़े से बाहर आगे कौन-से फाटक में से होकर निकलना है, फाटक से निकलकर कहाँ जाकर खड़ा रहना है, इस प्रकार के सोलह-सोलह अवधान उसे एट ए टाइम रहते हैं! जबकि लोग उसका तिरस्कार करते हैं। अरे, वह कितना अक़्लमंद आदमी है! ऐसा सब तो किसी बड़े कलेक्टर को भी नहीं आता!

तब एक व्यक्ति ने मुझ से कहा कि, 'लेकिन भगवान को इन चोरों को, लुच्चों को, लबाड़ लोगों को जन्म ही नहीं देना चाहिए न?' मैंने कहा कि, 'तू चोरों को, लुच्चों को, लबाड़ को

समझता है? वे लोग नहीं होंगे न, तो यह जगत् मर जाएगा! वे लोग हैं तो ये सब जीवित हैं।' यह किसके जैसा है? उसकी सिमिलि दूँ आपको? कि इस मुंबई शहर में हम तानसा से पानी ले आएँ और घर-घर नल लगवा दें और पानी आ जाए। अब गटर नहीं होंगे तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : महामारी फैल जाएगी।

दादाश्री : तो ये चोर, लुच्चे वगैरह तो गटर हैं। भगवान तो क्या कहते हैं कि, 'तू गटर का ढक्कन मत खोलना। तुझे अनुभव करना हो तो एक बार खोल दे और एक बार अनुभव करने के बाद फिर नक्की कर कि अब, मुझे यह गटर का ढक्कन नहीं खोलना है।' मैंने कहा, 'चोर लोग तो सब विटामिन है इस जगत् के! उनके बिना तो जगत् चलेगा ही नहीं!'

यानी यदि वे लोग नहीं होंगे तो क्या होगा? जितना ज़रूरी है उतना ही जगत् में है। जिनकी ज़रूरत है, उतने ही लोग हैं इस जगत् में! आपका गलत माल ले जाने के लिए इस जगत् में इन चोरों का जीवन है। भगवान कहीं खुद मारने नहीं आते। वे तो ऐसे लोग होते ही हैं, वे आपको ऐसे मोटर में से उतारकर, मार-ठोककर हीरे की लोंग, घड़ी वगैरह सब ले लेते हैं न! अतः सभी की इस जगत् में ज़रूरत है।

जेब कटी, समाधान किस प्रकार?

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरी जेब में से रुपये गए, उसका बहुत दुःख होता रहता है।

दादाश्री : दुःखी होने से रुपये वापस आ जाएँगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं आएँगे।

दादाश्री : वे तो गए, लेकिन बाद में क्या ऊपर से दूसरा नुकसान उठाना है? और अब उसका उपाय क्या है? ऐसे दुःखी

होते रहे तो वापस आएँगे क्या? इसके बजाय भगवान का नाम लोगे तो उपाय होगा।

प्रश्नकर्ता : उसमें भी संसार की मुश्किलें आड़े आती हैं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन वे थोड़े ही कुछ वापस आनेवाले हैं? जो वापस नहीं आनेवाले हैं उसकी तो हमें बात ही क्या करनी? 'गॉन इज़ गॉन!'

प्रश्नकर्ता : फिर भी उस दुःख के कारण भगवान की तरफ अब कदम नहीं बढ़ते और चिंता ही रहा करती है।

दादाश्री : चिंता से फिर क्या होता है? फायदा होता है या नुकसान होता है?

प्रश्नकर्ता : नुकसान होता है।

दादाश्री : फिर नुकसान का धंधा क्यों कर रहे हो? नफे का धंधा करो। नुकसान तो, रुपये गए वह क्या कम नुकसान हुआ है? फिर ये चिंता-*उपाधि* करके दूसरा नुकसान क्यों उठा रहे हो? उसके बजाय भगवान का नाम लो न अथवा यहाँ सत्संग में आओगे तो भी शांति रहेगी।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि सच्चे रास्ते पर चलनेवाले को संसार में बहुत मुश्किलें सहन करनी पड़ती हैं।

दादाश्री : मुश्किलें तो अपनी ही खड़ी की हुई है, किसीने कोई मुश्किल की ही नहीं। इस जगत् में कोई भी व्यक्ति किसी को मुश्किल में डाल ही नहीं सकता। जो मुश्किलें आती हैं वे खुद की ही खड़ी की हुई हैं और लोग आपको आपकी इच्छा के अनुसार मुश्किल खड़ी करने में हेल्प करते हैं। जो लोग आपकी जेब काटते हैं, वे आपको हेल्प कर रहे हैं। और आप वापस उसे मुश्किल कह रहे हो? किस तरह हेल्प करते हैं? कि आपको कर्म में से छुड़वाने के लिए वह बेचारा आपकी जेब काटता है,

और आप कहते हो कि इसने मुझे मुश्किल में डाल दिया। अरे! मुश्किल में कहाँ डाल रहा है, यह तो आपको छुटकारा दिलवा रहा है। यानी कि दुनिया में कोई व्यक्ति आपको मुश्किल में डाल सके, ऐसा है ही नहीं। आपका ही हिसाब है यह, उसमें लोग तो निमित्त मात्र हैं।

ज्ञान होने से पहले मैं बोम्बे की लोकल ट्रेन में जा रहा था, तो एक आदमी ने ऐसे भीड़ में जेब में हाथ डाला। मैंने कहा कि, 'भाई, कुल दस ही रुपये हैं, रहने दे न!' लेकिन वह लेकर चला गया। अतः यह तो सब ऐसा है। वह तो ले ही जाएगा! उसका है, तो वह ले ही जाएगा। एक व्यक्ति मुझे आकर जेब दिखाने लगा, मुझसे कहने लगा कि, 'देखो, मेरी यह जेब काट गया।' तब मैंने कहा कि, 'क्या ले गया?' तब कहता है कि, 'सिर्फ दो-चार कागज़ थे और रेल्वे का पास था और इस तरफ की जेब में पाँच हज़ार रुपये थे।' लो, पाँच हज़ार रह गए और कागज़वाला काटकर ले गया! तब मैंने कहा कि, 'दूसरी जेब में पाँच-दस रुपये रखने थे न, तो वह बाहर निकलकर चाय तो पीता। अगर कुछ नहीं मिलेगा तो निराश हो जाएगा बेचारा!'

संसार में बिना वजह कहीं कुछ होता होगा?

एक भाई गाड़ी में जा रहे होंगे, उनकी जेब में से सात सौ रुपये कोई ले गया, लेकिन उनके परिणाम नहीं बदले, तुरंत ज्ञान हाज़िर हो गया कि, 'व्यवस्थित' है। और उस जेब काटनेवाले के भी शगुन अच्छे ही हुए होंगे, तभी न! नहीं तो जेब में हाथ डाले और तीन ही रुपये मिलें तो क्या करेगा? दो घंटे में सात सौ रुपये की फीस तो यहाँ वकील को भी नहीं मिलती! लेकिन लोग जेब काटनेवाले को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। वह भी उसके हुनर के ही पैसे हैं न! मैं ऐसे किसी को पहचानता हूँ। वे मेरे पास कबूल भी कर लेते

हैं कि, 'दादा, मैं यह धंधा करता हूँ।' मैं कहता हूँ कि, 'ठीक है भाई, लेकिन शगुन वगैरह सब देखकर निकलना, क्योंकि जोखिम बहुत है।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि ऐसे बहुत सारे लोग तैयार हो जाएँ और यही धंधा करने लगें तो सोसायटी की क्या दशा होगी?

दादाश्री : ऐसा है, कि यह धंधा ये लोग नहीं करते हैं। ये जो नालायक लोग पैसा इकट्ठा करते हैं, वह गलत पैसा है। उस गलत पैसे के लिए ये जीव उत्पन्न होते हैं। नहीं तो इन नालायकों का धन कौन, ये भगवान खुद लेने आएँगे? यानी यह जो सारी गलत लक्ष्मी है, उसी के कारण ये जीव बढ़ते हैं। जब लक्ष्मी अच्छी हो जाएगी, तब ये जीव कम हो जाएँगे। जैसे ये एक प्रकार के जीव हैं, वैसे ही वकील भी जीव हैं, डॉक्टर भी जीव हैं। लेकिन इन डॉक्टरों और वकीलवाले जीव के बजाय टी.बी. के जीवजंतु अच्छे। ये सभी प्रकार के जीवजंतु ही हैं, लेकिन कौन-से जीव संसार के काम के हैं? किसान काम के हैं कि वे अनाज उगाकर देते हैं, गाय-भैंसें रखते हैं। वे जीव काम के हैं क्योंकि वे घी, दूध, सब सप्लाई करते हैं। अतः जो जानवरों को पालते हैं, किसान हैं वगैरह, वे सभी काम के हैं और वैद्य भी काम के हैं, लोगों के दर्द मिटाते हैं, ये कुछ डॉक्टर भी काम के हैं, लेकिन बाकी डॉक्टरों में से जो कुछ जीव (लोगों को अहित करनेवाले) उत्पन्न हो गए हैं। कुछ वकील भी ऐसे हो गए हैं जैसे निरे जीवाणु (लोगों को अहित करनेवाले जीव) ही उत्पन्न हो गए हैं। क्योंकि इस काल में झगड़े बढ़े हैं, इसलिए वकील बढ़ गए, और जब वकील बढ़ जाएँ तो झगड़े बढ़ते ही हैं। वे तो, जहाँ पर न हों, वहाँ भी झगड़े खड़े करवाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी जब भी कभी कोई रोग होता है, उसके सामने जीवाणु खड़े हो ही जाते हैं?

दादाश्री : हाँ, होते ही हैं। नियम हमेशा ऐसा ही है कि इस शरीर में किसी भी जगह पर कचरा इकट्ठा हो जाए तो उस कचरे में अपने आप ही, उस कचरे को खाने के लिए जीव उत्पन्न हो ही जाते हैं। इन फेफड़ों में अगर कचरा भर जाए तो फिर अंदर उस कचरे को खाने के लिए जीव उत्पन्न हो ही जाते हैं। जबकि अपने लोग कहते हैं, 'अरे टी.बी. के जीवाणु लग गए!' अरे नहीं, जीवाणु बाहर से नहीं आते, वे तो अंदर ही पैदा होते हैं, अंदर ही जीव पड़ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये चोर नाम के जो जीवाणु हैं, वे ऐसा समझकर उनके पास जाते हैं कि लायक का पैसा है या नालायक का पैसा है? या फिर जहाँ गलत कमाई है, वहीं पर वे जाते हैं और जहाँ पसीने की कमाई हो वहाँ वे नहीं जाते?

दादाश्री : ऐसा है, कि जितना सही धन है, पसीने का धन है, वह कभी भी जाता ही नहीं और यह बिना पसीनेवाला गलत धन है न, वह अपने आप ही किसी न किसी रास्ते चला जाएगा, ऐसे जाएगा, वैसे जाएगा, अरे! जेब कटवाकर भी चला जाएगा, लेकिन किसी न किसी रास्ते जाएगा, जाएगा और जाएगा ही। जो सही धन है, वह हमें सुख देकर ही जाएगा और जो गलत धन है, वह दु:ख देकर जाएगा। वह फिर डॉक्टर से पेट कटवाता है, अंदर चीरे लगवाता है और हज़ारों रुपये खर्च करवाता है! यानी गलत धन दु:ख देता है, सही धन सुख देता है! हमारे यहाँ गलत धन नहीं आएगा। अभी तो ऐसा है कि गलत तो सब ओर घुस ही जाता है, लेकिन हमारे यहाँ पर यों बहुत गलत धन नहीं घुसेगा। अत: किसी प्रकार का दु:ख उत्पन्न नहीं होगा। कुछ ऐसे लोग होंगे कि जिनके यहाँ गलत धन नहीं आता है, उन्हें दु:ख नहीं भोगना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह सरकार टैक्स काटती है, वह सब एक प्रकार का लाइसेन्स खूनी जैसा ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : नहीं, नहीं। ये टैक्स तो पद्धतिपूर्वक है। टैक्स और गलत धन का कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कुछ टैक्स ऐसे होते हैं कि हमें ऐसा लगता है कि ये सब गैरज़रूरी है।

दादाश्री : नहीं, गैरज़रूरी टैक्स होते ही नहीं। सभी टैक्स ज़रूरी हैं। क्योंकि हम सभी उस टैक्स से सुविधाएँ भोगते हैं। सरकार को यह जो सेना रखनी पड़ती है, इस हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए जो सेना रखी है, उस सेना के लिए सभी खर्चे चाहिए या नहीं चाहिए? यानी जो आय और व्यय है और जिसमें अपने देश का रक्षण है न, उसके लिए जो कुछ भी कदम हैं, उसके लिए हमें टैक्स तो देना ही पड़ेगा न! और हिन्दुस्तान की सुरक्षा में अपनी ही सुरक्षा है न! अब अगर उस टैक्स में चोरी करें तो वह गुनाह है, ऐसा करना ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वे बिचौलिए जेबें भरते हैं, उनका क्या?

दादाश्री : वे लोग जो जेबें भरते हैं, वे तो इन जेबकतरों के बड़े भाई हैं। हमें लालच रहता है कि मेरे दो हज़ार बच रहे हैं न! और उसे पाँच सौ रुपये देने हैं न! यानी आपने चोरी की और उसने भी चोरी की। ये तो सब चोर-चोर इकट्ठे हो गए! इसलिए उन्हें 'चोर के भाई महाचोर' कहते हैं। वह यदि चोर कहलाते हैं तो यह महाचोर है लेकिन सबकुछ एक सा ही है। वर्ना, यह सब गलत है, बहुत ही गलत है। अतः यदि हक़ का धन, हक़ के विषय हों, तो इस दुनिया में कोई दुःखी रहेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी कहीं पर हक़ की रोटी होगी ऐसा पाँच-दस प्रतिशत भी लगता है?

दादाश्री : नहीं होता, एकाध प्रतिशत होता होगा? प्रतिशत

तो सौ में से होता है और ऐसी तो लाखों में से एक या दो ही ध्वजा फहरती हैं।

प्रश्नकर्ता : यह कलियुग है इसलिए ऐसा होगा, लेकिन सत्‌युग में तो होगा न?

दादाश्री : सत्‌युग में तो बहुत अच्छे लोग थे। सत्‌युग की तो बात ही क्या करें! सुगंधीवाले लोग! जबकि अभी तो किसी की थोड़ी सी भी सुगंधी आती है?

क़ीमत दर्शन की, न कि चप्पलों की!

प्रश्नकर्ता : पहले हर रोज़ मंदिर जाता था, लेकिन इस साल दो बार नए-नए चप्पल खो गए, इसलिए अब मैं कभी-कभी ही मंदिर जाता हूँ।

दादाश्री : अब आप नए चप्पल पहनकर मंदिर में जाना और दर्शन करने जाओ, उस समय चप्पल बाहर निकालो तब चप्पल से इतना कहना कि, 'हे चप्पल, तुझे जाना हो तो जा और रहना हो तो रहना। मैं तो भगवान के दर्शन करने जा रहा हूँ।' फिर वह जो दर्शन करोगे न, उस दर्शन का लाभ तो आपको, लाखों चप्पल की क़ीमत से भी अधिक ऊँचा फल मिलेगा! हमारे कहे अनुसार यदि करोगे तो! चप्पल से कहकर जाना, लेकिन कोई सुन ले, ऐसे मत बोलना।

...और चप्पल चोरी हो जाएँ तब!

हमें भी नए जूतों का ऐसा एक अनुभव हो चुका है। बड़ौदा में घड़ियाली पोल है। वहाँ एक बड़ा उपाश्रय है। वहाँ एक दिन दर्शन करने गया था। उस दिन लंबा कोट पहना था और ज्ञान तो कुछ हुआ नहीं था, तो उन महाराज के पास बैठकर सुनता था और ज्ञान की सभी बातें महाराज से पूछता था। अभी तो फिर भी थोड़े बहुत पुराने जूते पहन लेता हूँ। लेकिन उन

दिनों तो थोड़े से पुराने जूते भी नहीं पहनता था। थोड़ा सा पुराना हो जाए तो निकाल देता और नये जूते ही पहनता था। तो नये जूते, ऐसे फर्स्ट क्लास दिख रहे थे, वे उपाश्रय के बाहर रख दिए थे। लेकिन उस दिन मुझे तो ऐसी खबर ही नहीं थी कि इस तरह जूते चोरी हो जाते हैं। मैं तो फिर जब उपाश्रय से बाहर निकला, तब मैंने देखा कि जूते नहीं थे। फिर इधर-उधर सब तरफ देखा, तब एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि, 'चाचा, क्या ढूँढ रहे हो?' मैंने कहा कि, 'मेरे जूते मैंने यहाँ निकाले थे और अब वे नहीं दिख रहे हैं।' तब उसने पूछा कि, 'वे नए थे?' तब मैंने कहा कि, 'हाँ, वे तो पंद्रह दिन पुराने ही थे।' तब उसने कहा कि, 'चाचा, अब ढूँढना ही मत, आपके वे जूते तो अब चले ही गए। यहाँ नए से नए जूते उठा ले जाते हैं और पुराने रहने देते हैं।' तब मैंने मन में कहा कि, 'यह तो कल्याण हो गया अपना(!)' लंबा कोट, सिर पर काली टोपी और जूते गायब, फिर देख लो मज़े! उसका फोटो कितना अच्छा आएगा? पैर में जूते नहीं थे, इसलिए मन में शर्म आई कि आज किस तरह घर जाऊँगा? फिर विचार आया कि ऐसे नंगे पैर जाने में क्या हर्ज है! शायद लोग पूछेंगे कि क्या है? तो वे नवीनता तो देखेंगे। उन दिनों तो सभी लोग मुझे पहचानते थे न! और ऐसे नंगे पैर जाऊँ तो सब पूछते न! वे जो दुकानदार थे न, अभी तो उन दुकानदारों के बेटे के बेटे बैठते हैं। ये लड़के तो मुझे पहचानते ही नहीं। फिर मैं रास्ते पर चलता हुआ निकला, तब रास्ते में लोगों ने पूछना शुरू किया कि, 'क्यों, ये बूट कहाँ गए?' तब किसीने मुझसे कहा कि, 'आप ऐसा करो, यह बुरा दिख रहा है, आप रिक्शा में बैठकर घर जाओ।' इसलिए फिर रिक्शा में बैठकर घर चला गया। दूसरे बूट बनवाकर ही फिर बाहर निकला! तब तक, जो पुराने बूट थे, वे पुराने बूट ही पहनकर घूमा, दो दिनों तक।

यानी मुझे भी ऐसा अनुभव हो चुका है, मैं जानता हूँ न!

इसमें आपका क्या दोष? तब फिर उस लेनेवाले का भी क्या दोष? उसे कोई परेशानी होगी, तभी वह ले गया होगा न? बगैर परेशानी के तो कोई लेगा ही नहीं न! और जूते गए तो हम समझ लें कि किसी पुण्यशाली मनुष्य के हाथ में गए हैं न, उसके पुण्य होंगे तभी ऐसे महँगे जूते मिले न! नहीं तो नए जूते उसके भाग्य में कहाँ से आते? लेकिन जूते गायब हो जाएँ तो हमें समझ जाना चाहिए कि अपना ही हिसाब चुक गया है।

जीवनपर्यंत, नियमबद्ध

इन जूतों का नियम फिर ऐसा है कि आपके सात जूते जानेवाले होंगे, तो उन सात से आठवीं जोड़ी नहीं जाएगी।। आप फिर रोज़ नए जूते पहनकर जाओगे न, यदि आप में हिम्मत हो तो जाने दो, जाएँ उतने जाने दो। क्योंकि इसके साथ ही नियम बताया हुआ है। अतः कैसा भी चोर आ जाए न, फिर भी नहीं उठाएगा। यह नियम जान लिया हो तो अच्छा है न? तो बहुत हुआ तो सात जाएँगे, या दस जाएँगे या बारह जाएँगे। लेकिन उसका अंत आएगा या नहीं आएगा? इसलिए उसका अंत आ जाने दो न! क्योंकि यह सब अंतवाला है!

चीज़ों के उपयोग के नियम क्या?

अपने कनुभाई हैं, वे छोटे थे तब मुझसे क्या कहा कि, अंबालाल चाचा, मैं तो तीन ही कमीज़ें सिलवाता हूँ, लेकिन ये रसिकभाई पूरी छह-छह कमीज़ें सिलवाते हैं। तब मैंने कहा, 'तू समझदार है, लेकिन तू तो तीन सिलवाता है, जबकि मैं तो दो सिलवाता हूँ।' फिर मैंने उसे समझाया कि यह जितना-जितना तू उपयोग कर रहा है न, वह तू तेरा अपना ही खर्च कर रहा है। अतः यदि तुझे बाद में कमी नहीं पड़ने देनी हो, तो तू अभी से ही संभाल-संभालकर उपयोग कर। इसका अर्थ तुझे समझ में आ गया न?

मैं क्या कहना चाहता हूँ कि इस दुनिया का क्रम कैसा है? कि आपको १९९५ में जो कमीज़ मिलनेवाले हैं, उनका यदि आप आज अधिक उपयोग कर लोगे तो १९९५ में बगैर कमीज़ के रह जाओगे, मैं ऐसा कहना चाहता हूँ। इसलिए आप उन्हें इस तरह से खर्च करो। और किसी चीज़ को ऐसे ही बिना घिसे निकाल मत देना और किसी चीज़ को निकाल दो तो किसी न किसी जगह पर घिसी हुई होनी चाहिए तब फिर निकाल देना। ऐसा मेरा नियम है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी तक इतना नहीं घिसा है तो क्या इस चीज़ को निकाल दोगे? नहीं, क्योंकि यह इतना ही खराब हुआ है, अभी तो चलेगा, उसे अगर मन चाहे तब निकाल दोगे तो वह मीनिंगलेस हुआ न! यानी ये सभी चीज़ें जो आप काम में लेते हो, उनका हिसाब होता होगा या नहीं? उनका हिसाब है और वह कितना हिसाब है? कि एक परमाणु का भी हिसाब है। बोलो, वहाँ गोलमाल किस तरह चलेगा? 'व्यवस्थित' के ऐसे नियम हैं, परमाणु के हिसाब हैं। इसलिए किसी चीज़ का बिगाड़ मत करना।

जगत् में पोल चलेगी ही नहीं

हमें यह पानी का बिगाड़ करना पड़ता है। मैं 'ज्ञानीपुरुष' हूँ, इसलिए मुझे तो, 'ज्ञानीपुरुष' को त्यागात्याग संभव नहीं है, फिर भी मुझे पानी का बिगाड़ करना पड़ता है। हमें इस पैर में तकलीफ हुई है, इसलिए डबल्यु सी में बैठना पड़ता है फिर पानी के लिए ज़ंज़ीर खींचते हैं, तो कितना, दो डब्बे पानी जाता होगा? और पानी की कमी है, पानी क़ीमती है इसलिए? नहीं, लेकिन इस तरह से पानी के कितने ही जीव टकरा-टकराकर बिना बात के मारे जाते हैं! और जहाँ एक-दो डब्बों से काम चल जाए ऐसा है, वहाँ इतने सारे पानी का बिगाड़ क्यों करें? जबकि हम तो 'ज्ञानीपुरुष' हैं, इसलिए ऐसी भूल होते ही हम तो तुरंत दवाई (प्रतिक्रमण) डाल देते हैं। उससे कितने ही महीनों तक हमारा काम

चलता रहता है। लेकिन फिर भी दवाई तो हमें भी डालनी पड़ती है। क्योंकि वहाँ ऐसा नहीं चलेगा, 'ज्ञानीपुरुष' हों या कोई भी हों, लेकिन कुछ नहीं चलेगा। यह अंधेर नगरी नहीं है। यह तो वीतरागों का राज है, चौबीस तीर्थंकरों का राज है! आपको पसंद आई यह तीर्थंकरों की ऐसी बात?

[१८]

क्रोध की निर्बलता के सामने

वीतरागों की सूक्ष्मता तो देखो

लोग क्या कहते हैं कि यह बाप अपने बेटे पर इतना गुस्सा हो गया है न, इसलिए यह बाप नालायक आदमी है, और कुदरत के वहाँ इसका क्या न्याय होता होगा? 'इस बाप के हिस्से में पुण्य रखो।' क्रोध कर रहा है फिर भी पुण्य में आता है? हाँ, क्योंकि बेटे के हित के लिए खुद अपने आप पर संघर्षण लेता है न! बेटे के सुख के लिए खुद ने संघर्षण उठाया, इसलिए इसे पुण्य दो! वर्ना किसी भी प्रकार का क्रोध पाप का ही बंधन करता है, लेकिन सिर्फ यही बेटे के या मित्र के सुख के लिए जो क्रोध करते हो, वह खुद का जलाकर उसके सुख के लिए करते हो, तो उसका पुण्य बँधता है। फिर भी यहाँ तो लोग उसे अपयश ही देते रहते हैं! लेकिन ईश्वर के घर पर सही कानून है या नहीं? खुद के बेटे पर या बेटी पर क्रोध करता है न, वह खूब ज़बरदस्त क्रोध करे, लेकिन उसमें हिंसकभाव नहीं होता, बाकी सभी जगह हिंसकभाव होता है। फिर भी उसमें *तंत* रहा करता है, क्योंकि जैसे ही वह बेटे को देखता है, तो अंदर फिर से क्लेश होने लगता है। उसका वह तंत रहा करता है। भगवान ने तो क्या कहा है कि बेटी पर, बेटे पर गुस्सा करने के बावजूद भी उसे पुण्य बँधता है, क्योंकि भीतर हिंसकभाव नहीं है। साथ ही साथ जब तंत नहीं रहता तब क्या होता है? मोक्ष होता है। यदि क्रोध में हिंसकभाव और तंत, ये दो नहीं रहें तो मोक्ष होता

है। और सिर्फ हिंसकभाव नहीं है, सिर्फ तंत है तब भी पुण्य बंधता है। कैसी सूक्ष्मता से भगवान ने ढूँढ निकाला है न!

यह वीकनेस है या पर्सनालिटी?

प्रश्नकर्ता : इंसान को तो क्रोध कदम-कदम पर आ ही जाता है, तो क्रोध जल्दी नहीं आए, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हर एक व्यक्ति को क्रोध आता होगा?

प्रश्नकर्ता : हम सही हों, फिर भी कोई अपने लिए गलत कर दे, तब फिर अंदर उस पर क्रोध आता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन आप सही होंगे तब न? आप सही हो क्या? आप सही हो, ऐसा आपको पता चला?

प्रश्नकर्ता : हमें अपना आत्मा कहता है न, कि हम सही हैं।

दादाश्री : यह तो आप ही जज, आप ही वकील और आप ही अभियुक्त, तब फिर आप सच्चे ही हुए न? आप फिर झूठे बनोगे ही नहीं न? सामनेवाले को भी ऐसा ही लगता है कि मैं ही सच्चा हूँ। आपको समझ में आता है? क्रोध सिर्फ आपको ही आता है या किसी और को भी आता है?

प्रश्नकर्ता : क्रोध तो सभी को आ जाता है न!

दादाश्री : लेकिन इस भाई से पूछो, वे तो मना कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : सत्संग में आने के बाद फिर क्रोध नहीं आता न!

दादाश्री : ऐसा? उन्होंने क्या दवाई पी होगी? द्वेष का मूल चला जाए, ऐसी दवाई पी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे यह पूछना था कि अन्याय पर चिढ़ चढ़े, वह तो अच्छा है न? किसी भी चीज़ के लिए हम खुले तौर पर अन्याय होता हुआ देखें तब जो प्रकोप होता है, क्या वह योग्य है?

दादाश्री : अब वह अच्छा कब कहलाएगा कि फॉरिन में एक्स्पोर्ट हो, तब अच्छा कहलाएगा। वह एक्स्पोर्ट होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह एक्स्पोर्ट हो सकता है।

दादाश्री : लेकिन सामने लेनेवाले ग्राहक हैं क्या? उसका कोई ग्राहक मिलेगा नहीं न! ऐसा है कि ये सब क्रोध और चिढ़ वगैरह ये सभी कमज़ोरियाँ हैं, सिर्फ वीकनेस हैं। पूरे जगत् के पास यह वीकनेस है, फिर आपका उत्पादन कौन लेगा? यहाँ से रोज़ चिढ़ एक्स्पोर्ट करो, तो कोई नहीं लेगा। वे कहेंगे, 'बल्कि हम ही आपको भेज देंगे! और भेजने का सब चार्ज भी हमारा।' ऊपर से ऐसा कहेंगे!

प्रश्नकर्ता : सात्विक चिढ़ या फिर सात्विक क्रोध, अच्छा है या नहीं?

दादाश्री : उसे लोग क्या कहेंगे? ये बच्चे भी उसे क्या कहेंगे कि, 'ये तो चिड़चिड़े ही हैं!' चिढ़ तो मूर्खता है, फूलिशनेस है! चिढ़ को कमज़ोरी कहते हैं। बच्चों से हम पूछें कि, 'तेरे पापा जी कैसे हैं?' तब वे भी कहेंगे कि, 'वे तो बहुत चिड़चिड़े हैं!' बोलो, अब इज़्ज़त बढ़ी या घटी? यह वीकनेस नहीं होनी चाहिए। अतः जहाँ सात्विकता होगी, वहाँ वीकनेस नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति छोटे बच्चे को बहुत ही मार रहा हो और उस समय हम वहाँ से गुज़र रहे हों, तब उस व्यक्ति को रोकें और नहीं माने तो अंत में डाँटकर क्रोध करके उसे एक तरफ हटा देना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : क्रोध करोगे, तो भी वह मारे बगैर नहीं रहेगा। अरे, आपको भी मारेगा न! फिर भी उस पर क्रोध किसलिए करते हो? उसे धीरे से कहो, व्यवहारिक बातचीत करो। वर्ना, सामने क्रोध करोगे तो वह वीकनेस है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे बच्चे को मारने दें?

दादाश्री : नहीं, वहाँ पर आपको जाकर कहना चाहिए कि, 'भाई, आप ऐसा क्यों कर रहे हो? इस बालक ने आपका क्या बिगाड़ा है? उसे इस तरह समझाकर बात करनी चाहिए।' आप उस पर क्रोध करोगे तब तो वह क्रोध आपकी कमज़ोरी है। प्रथम तो खुद में कमज़ोरी नहीं होनी चाहिए। जिसमें कमज़ोरी नहीं होती उसका प्रभाव पड़ता है न! वह तो अगर यों ही, साधारण रूप से भी कहे न, तो भी सब मान जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : शायद न मानें।

दादाश्री : नहीं मानने का क्या कारण है? आपका प्रभाव नहीं पड़ता। घर में छोटे बच्चों से पूछें कि, 'तेरे घर में पहला नंबर किसका?' तब बेटा ढूँढ निकालता है कि मेरी मम्मी नहीं चिढ़ती, इसलिए सबसे अच्छी वह है। पहला नंबर उनका। फिर दूसरा, तीसरा, ऐसे करते-करते पापा का नंबर अंत में आता है! किसलिए? क्योंकि वे चिड़चिड़े हैं इसलिए। मैं कहूँ कि, 'पापा पैसे लाकर खर्च करते हैं फिर भी उनका आख़िरी नंबर?' तब वे कहते हैं, हाँ। बोलो अब, मेहनत-मज़दूरी करते हो, खिलाते हो, पैसे लाकर देते हो, फिर भी आख़िरी नंबर आपका ही आता है न?

यानी कमज़ोरी नहीं होनी चाहिए, चारित्रवान होना चाहिए। मेन ऑफ पर्सनालिटी होना चाहिए! लाखों गुंडे उसे देखते ही भाग जाएँ! इन चिड़चिड़े लोगों से तो कोई नहीं भागता, बल्कि मारते हैं! जगत् तो कमज़ोरी को ही मारेगा न!

पर्सनालिटी कब आती है? विज्ञान जानने से पर्सनालिटी आती है। इस जगत् में जो विस्मृत हो जाए, वह ज्ञान है और जो कभी भी विस्मृत न हो, वह विज्ञान है।

जगत्, शील से जीता जा सकता है

दादाश्री : कोई तुझे डाँटे तो तू उग्र हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो जाता हूँ।

दादाश्री : तो वह कमज़ोरी कहलाएगी या मज़बूती कहलाएगी?

प्रश्नकर्ता : दोनों कहलाएगा।

दादाश्री : नहीं, नहीं, वह तो कमज़ोरी ही कहलाएगी।

प्रश्नकर्ता : किसी जगह पर तो क्रोध होना ही चाहिए।

दादाश्री : नहीं, नहीं। क्रोध तो खुद ही कमज़ोरी है। 'किसी जगह पर तो क्रोध होना ही चाहिए,' वह तो संसारी बात है। यह तो खुद से क्रोध नहीं निकल पाता इसलिए ऐसे कहता है कि क्रोध होना ही चाहिए! तुझे मालूम है, हिम गिरता है, वह? अब हिम का मतलब बहुत ही ठंड होती है न? उस हिम से पेड़ जल जाते हैं, सारा कपास, घास सभी कुछ जल जाता है। तू ऐसा जानता है क्या? वे ठंड में क्यों जल जाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : 'ओवरलिमिट' ठंड के कारण।

दादाश्री : हाँ, यानी यदि तू ठंडा बनकर रहेगा तो वैसा शील उत्पन्न हो जाएगा। और फिर, उग्रता तो कमज़ोरी ही है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ज़रूरत से ज़्यादा ठंडा होना भी एक प्रकार की कमज़ोरी ही है न?

दादाश्री : ज़रूरत से ज़्यादा ठंडा होने की ज़रूरत ही नहीं। आपको तो लिमिट में रहना है, उसे 'नॉर्मेलिटी' कहते हैं। बिलो

नॉर्मल इज़ द फीवर, अबव नॉर्मल इज़ द फीवर, नाइन्टी एट इज़ द नॉर्मल। अतः हमें नॉर्मेलिटी ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कोई मेरा अपमान करे और मैं शांति से बैठा रहूँ तो वह निर्बलता नहीं कहलाएगी?

दादाश्री : नहीं। ओहोहो! अपमान सहन करना, वह तो बहुत बड़ा बल कहलाता है! अभी हमें कोई गालियाँ दें तो हमें कुछ भी नहीं होगा, उसके लिए मन भी नहीं बिगड़ेगा, वही है बल! और निर्बलता तो ये सब किच-किच करते ही रहते हैं न, जीव मात्र लड़ते ही रहते हैं। वह सारी निर्बलता कहलाती हैं। यानी कि शांति से अपमान सहन करना, वह बहुत बड़ा बल कहलाता है। और ऐसा अपमान एक ही बार लाँघ जाएँ, एक स्टेप लाँघ जाएँ न, तो सौ स्टेप लाँघने की शक्ति आ जाएगी। आपको समझ में आया न? सामनेवाला यदि बलवान हो, तो जीवमात्र उसके सामने निर्बल हो ही जाता है। वह तो उसका स्वाभाविक गुण है। लेकिन यदि निर्बल मनुष्य आपको छेड़े तब भी आप उसे कुछ भी नहीं करो, तब वह बहुत बड़ा बल कहलाएगा। 'ज्ञानीपुरुष' के पास तो इतनी सारी सिद्धियाँ होती हैं कि एक ही विधि करके सामनेवाले को आश्चर्यचकित कर डालें, लेकिन ऐसा नहीं करते। सिद्धि का तो वे उपयोग ही नहीं करते न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन एक बार सिद्धि का उपयोग करके देखिए न!

दादाश्री : ऐसे कहीं उपयोग करते होंगे? और ऐसे लोगों के सामने कहाँ उपयोग करें?

वास्तव में तो निर्बल का रक्षण करना चाहिए और बलवान का सामना करना चाहिए, लेकिन इस कलियुग में ऐसे लोग रहे ही नहीं न! अभी तो निर्बल को ही मारते रहते हैं और बलवान से तो भागते हैं। बहुत कम लोग हैं कि जो निर्बल की रक्षा

करते हैं और बलवान का सामना करते हैं। यदि ऐसे लोग हों, तब उसे तो क्षत्रिय गुण कहा जाएगा। वर्ना पूरा जगत् कमज़ोरों को मारता ही रहता है। घर जाकर पति अपनी पत्नी पर शूरवीरता दिखाता है। खूंटे से बँधी हुई गाय को मारें तो वह किस ओर जाएगी? और खुली छोड़कर मारे तो? भाग जाएगी न, या फिर सामना करेगी।

खुद की शक्ति होने के बावजूद भी इंसान सामनेवाले को तंग नही करे, अपने दुश्मन को भी दुःखी नहीं करे, वह बहुत बड़ा बल कहलाता है। अभी कोई आप पर गुस्सा करे और आप भी उस पर गुस्से हो जाओ तो वह कमज़ोरी नहीं कहलाएगी? यानी मेरा क्या कहना है कि ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सभी निर्बलताएँ हैं। जो बलवान है, उसे तो क्रोध करने की ज़रूरत ही कहाँ रही? लेकिन ये तो क्रोध का जितना ताप है उस ताप से सामनेवाले को बस में करने जाते हैं, लेकिन जिसे क्रोध नहीं है उसके पास कुछ होगा तो सही न? उसका शील नाम का जो चारित्र है उससे जानवर भी वश में हो जाते हैं। वाघ, सिंह, दुश्मन वगैरह, पूरी सेना सबकुछ वश में हो जाता है! क्रोध-मान-माया-लोभ तो खुली कमज़ोरी है और बहुत क्रोध आ जाए तो ये हाथ-पैरे ऐसे काँपते हुए नहीं देखे हैं आपने?

प्रश्नकर्ता : शरीर भी मना करता है कि 'तुझे क्रोध नहीं करना है।'

दादाश्री : हाँ, शरीर भी मना करता है कि यह अपने को शोभा नहीं देता। यानी क्रोध तो कितनी बड़ी कमज़ोरी है! अतः क्रोध नहीं होना चाहिए हममें। हममें लोभ भी नहीं होना चाहिए। लोभ का क्या अर्थ है? दूसरों का हड़प लेना। अपने पास होने के बावजूद दूसरों का हड़प लेना, वह लोभ कहलाता है। खाने-पीने की अपनी लिमिट है। वह सब होने के बावजूद और भी आगे का सोचना, वह लोभ कहलाता है।

प्रकृति, कषाय से ही गूंथी हुई

ये क्रोध-मान-माया-लोभ जो हैं न, उसमें लोभ की प्रकृति ऐसी है कि उसके मालिक को भी पता नहीं चलता कि मुझ में कितना लोभ है। यानी लोभ उतना अधिक कपटवाला है। क्रोध का स्वभाव भोला है। मालिक को तो क्या लेकिन पराये व्यक्ति भी कह जाते हैं कि इतना अधिक क्रोध क्यों कर रहे हो? लेकिन लोभ का तो खुद को भी पता ही नहीं चलता। लोभ से इंसान बहुत उल्टा चलता है न! और लोभ की प्रकृति चली जाए, ऐसी नहीं है। अनंत जन्मों तक लोभ की प्रकृति नहीं जाती। क्योंकि लोभ की राग प्रकृति है, वह द्वेष प्रकृति नहीं है। और राग प्रकृति ठंडकवाली होती है इसलिए वह प्रकृति छूटने नहीं देती, वह तो बहुत भारी प्रकृति है। लोभ और कपट, वे दोनों राग प्रकृति में जाते हैं और क्रोध व मान, वे द्वेष प्रकृति में जाते हैं। द्वेष प्रकृति तो अपनी पकड़ में आ जाती है, लेकिन राग प्रकृति तो पकड़ में नहीं आती। मालिक की पकड़ में भी नहीं आती न! क्योंकि उसमें तो इतनी अधिक मिठास बरतती है! लोगों को तो मान और अपमान की ही पड़ी हुई है न!

प्रश्नकर्ता : दादा वह तो पहले से ही चलता आया होगा न?

दादाश्री : अनादिकाल से यही का यही सारा मान और अपमान! मनुष्य योनि में आया तभी से मान और अपमान, नहीं तो दूसरी वंशावलियों में, दूसरी योनियों में ऐसा कुछ भी नहीं है। यहाँ मनुष्यों में और वहाँ देवलोगों में भी मान-अपमान का बहुत ऊधम है।

प्रश्नकर्ता : यहाँ आते ही यह सब कहाँ से सीख गया?

दादाश्री : यह तो सीखकर ही आया हुआ है। यह देखो न, यह बच्चा कितने साल का हुआ?

प्रश्नकर्ता : पाँच साल का।

दादाश्री : तो पचहत्तर पिछले जन्म के और पाँच इस जन्म के, तो बोलो अब अस्सी साल का हुआ न?

प्रश्नकर्ता : ये दूसरी योनि में मान-अपमान फिर से भूल जाता होगा?

दादाश्री : भूल जाता है सबकुछ। यहाँ से गया तभी से भूल जाता है, याद नहीं रहता। चार दिन पहले क्या हुआ था, वह आपको याद है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन फिर बैर, मान-अपमान, वह सब याद रहता है तो यह अच्छा-अच्छा कैसे भूल जाता है?

दादाश्री : नहीं, वह बैर भी याद नहीं रहता। सिर्फ क्रोध-मान-माया-लोभ ही संज्ञा के रूप में रहते हैं। ये चार संज्ञाएँ हमेशा रहती हैं, बाकी बैर तो फिर बाद में होता है। लेकिन ये चार क्रोध-मान-माया-लोभ पहले से ही होते हैं। आते ही उसका अपमान हो कि शोर मचाने लगता है। अब, ये बच्चों के खाने की गोलियाँ होती हैं न! वह पिपरमिंट यहाँ पर हो और इस बेबी और इस बच्चे को लेनी हो तो जो लोभी होगा वह अधिक ले लेगा। हमें पता भी चलता है कि यह लोभी है। लोभी हर चीज़ में आगे ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : पशुयोनि में भी क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं न?

दादाश्री : सब जगह होते हैं, लेकिन वे संज्ञा के रूप में होते हैं इसलिए हर्ज नहीं। वे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं माने जाते, उसका कर्म नहीं बंधता।

प्रश्नकर्ता : ये क्रोध-मान-माया-लोभ की प्रकृति जन्म से ही जीव में होती है?

दादाश्री : अरे, यहाँ से साथ में लेकर ही जाता है और साथ ही वहाँ उपयोग करता है।

प्रश्नकर्ता : लोभ प्रकृति, मान प्रकृति से क्या भावकर्म बँधते हैं?

दादाश्री : इनसे ही ये सब भावकर्म उत्पन्न होते हैं। ये जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, उन्हीं से अंधापन आता है और उससे फिर उल्टे-सीधे भाव करता है। वह अंधापन तोड़ने के लिए, क्रोध-मान-माया-लोभ जाएँ तभी अंधापन टूटेगा और तभी भाव शुद्ध होंगे। अहंकार से अंधा हो गया है, लोभ से अंधा हो गया है, क्रोध से अंधा हो गया है और कपट से अंधा हो गया है, चारों प्रकार से अंधा, अंधा और अंधा ही बनकर घूमता है।

क्रोधी के बजाय क्रोध नहीं करनेवाले से लोग अधिक घबराते हैं। क्या कारण होगा उसका? क्रोध बंद होने पर प्रताप उत्पन्न होता है। कुदरत का नियम है ऐसा! नहीं तो उसे रक्षण करनेवाला ही नहीं मिलेगा न! क्रोध तो रक्षण था, अज्ञानता में क्रोध से रक्षण होता था।

सम्यक उपाय, जानो एक बार

प्रश्नकर्ता : क्रोध नहीं करना हो फिर भी हो जाता है, तो उसका निवारण क्या है?

दादाश्री : क्रोध करना किसी को अच्छा लगता ही नहीं न? क्रोध यानी खुद अपने ही घर में दियासलाई लगाना। खुद के घर में घास भरकर उसमें दियासलाई लगा देना, वह क्रोध है। यानी पहले खुद जलता है और फिर पड़ोसी को जलाता है।

प्रश्नकर्ता : यह जानने के बावजूद भी क्रोध हो जाता है। उसका क्या निवारण है?

दादाश्री : कौन जानता है? जानने के बाद क्रोध होगा ही

नहीं। क्रोध हो जाता है इसका मतलब जानते ही नहीं, सिर्फ अहंकार करते हो कि मैं जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : क्रोध हो जाने के बाद ध्यान आता है कि हमें क्रोध नहीं करना चाहिए।

दादाश्री : नहीं, लेकिन जानने के बाद क्रोध नहीं होगा। हमने यहाँ पर दो शीशियाँ रखी हों, वहाँ पर किसी ने समझाया हो कि यह दवाई है और दूसरी शीशी में पोइज़न है। दोनों एक सी दिखती हैं लेकिन उसमें भूलचूक हो जाए तो समझ में आएगा न कि यह जानता ही नहीं? भूलचूक नहीं हो तभी कह सकते हैं कि यह जानता है, लेकिन भूलचूक हो जाती है, तो यह बात पक्की हो गई कि वह जानता ही नहीं था। उसी प्रकार जब क्रोध हो जाता है, तब कुछ भी जानते नहीं हो और यों ही जानने का अहंकार लेकर घूमते रहते हो। उजाले में ठोकरें लगेंगी क्या? यानी जब तक ठोकरें लगती हैं, तब तक कुछ जाना ही नहीं। यह तो अंधेरे को ही उजाला कहते हैं, वह अपनी भूल है। इसलिए सत्संग में बैठकर 'जानो' एक बार, फिर क्रोध-मान-माया-लोभ सभी कुछ चला जाएगा।

परिणाम तो, कॉज़ेज़ बदलने से ही बदलेंगे

एक भाई ने मुझसे कहा कि, 'अनंत जन्मों से इस क्रोध को निकाल रहे हैं, फिर भी यह क्रोध जाता क्यों नहीं?' तब मैंने कहा कि, 'आप क्रोध निकालने के उपाय नहीं जानते हो।' तब उसने कहा कि, 'क्रोध निकालने के तो जो उपाय शास्त्र में लिखे हैं, वे सभी करते हैं, फिर भी क्रोध नहीं जाता।' तब मैंने कहा कि, 'सम्यक उपाय होना चाहिए।' तब कहा कि, 'बहुत सम्यक उपाय पढ़े हैं, लेकिन उनमें से कुछ भी काम में नहीं आया।' फिर मैंने कहा कि, 'क्रोध को बंद करने का उपाय ढूँढना मूर्खता है, क्योंकि क्रोध तो परिणाम है। जैसे कि आपने परीक्षा दी और

रिज़ल्ट आया, तो अब रिज़ल्ट के ऊपर, मैं रिज़ल्ट को नाश करने का उपाय करूँ, उसके जैसी बात हुई। यह रिज़ल्ट आया वह किसका परिणाम है, हमें उसे बदलने की ज़रूरत है।'

लोगों ने क्या कहा है कि, 'क्रोध को दबाओ, क्रोध को निकालो।' अरे, ऐसा क्यों करता है? बिना बात के दिमाग़ बिगाड़ रहे हो! इसके बावजूद भी क्रोध निकलता तो है नहीं। फिर भी लोग कहेंगे कि, 'नहीं साहब, थोड़ा-बहुत क्रोध दब गया है।' अरे, जब तक वह अंदर है तब तक वह दबा हुआ नहीं कहा जा सकता। तब उन भाई ने कहा कि, 'तो आपके पास और कोई उपाय है?' मैंने कहा, 'हाँ, उपाय है। आप करोगे?' तब उन्होंने कहा, 'हाँ।' तब मैंने कहा कि, 'एक बार तो नोट करो कि इस जगत् में खास तौर पर किस पर अधिक क्रोध आता है?' जहाँ-जहाँ क्रोध आता है उसे 'नोट' कर लो और जहाँ क्रोध नहीं आता उसे भी जान लो। एक बार लिस्ट में डाल दो कि इस व्यक्ति पर क्रोध नहीं आता। कुछ लोग उल्टा करें, फिर भी उन पर क्रोध नहीं आता और कुछ तो बेचारे सीधा कर रहे हों फिर भी उन पर क्रोध आता है, तो फिर कोई कारण तो होगा न?

प्रश्नकर्ता : उसके लिए मन के अंदर ग्रंथि बन गई होगी?

दादाश्री : हाँ, ग्रंथि बन चुकी है, उस ग्रंथि को छोड़ने के लिए अब क्या करें? परीक्षा तो दे चुके हो। जितनी बार उसके प्रति क्रोध होना है उतनी बार हो ही जाएगा और उसके लिए ग्रंथि भी बन चुकी है, लेकिन आगे से आपको क्या करना चाहिए? जिस पर क्रोध आता है उसके लिए मन नहीं बिगड़ने देना चाहिए। मन सुधारना कि भाई, अपने प्रारब्ध के हिसाब से यह व्यक्ति ऐसा कर रहा है। वह जो-जो कर रहा है, वह मेरे कर्म के उदय हैं इसलिए ऐसा कर रहा है। इस प्रकार मन को सुधार लेना। मन को सुधारते रहोगे और सामनेवाले के प्रति मन सुधर जाएगा तो उसके प्रति क्रोध आना बंद हो जाएगा। कुछ समय तक, जो पिछला इफेक्ट है, पहले

का इफेक्ट है, उतना इफेक्ट देकर फिर बंद हो जाएगा।

यह ज़रा सूक्ष्म बात है और सूक्ष्म है इसलिए लोगों के ध्यान में नहीं आया। हर एक चीज़ का उपाय तो होता ही है न! जगत् बगैर उपाय के तो होता ही नहीं न! जगत् तो परिणाम का ही नाश करना चाहता है।

अतः क्रोध-माना-माया-लोभ का उपाय यह है। परिणाम को कुछ भी मत करो, उसके कॉज़ेज़ को खत्म करो तो ये सभी चले जाएँगे। यानी वह खुद विचारक होना चाहिए। वर्ना अगर अजागृत होगा तो किस प्रकार उपाय करेगा?

प्रश्नकर्ता : कॉज़ेज़ किस तरह खत्म करें, वह ज़रा फिर से समझाइए न!

दादाश्री : इस भाई पर मुझे क्रोध आ रहा हो, तो फिर मैं नक्की करूँगा कि इस पर जो क्रोध आ रहा है वह, मैंने पहले जो उसके दोष देखे हैं, उसका परिणाम है। अब यह जो-जो दोष कर रहा है उन्हें मन पर नहीं लूँगा तो फिर उसके प्रति क्रोध बंद होता जाएगा, लेकिन कुछ पूर्व परिणाम होंगे उतने आ जाएँगे, लेकिन आगे के दूसरे सब बंद हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : दूसरे के दोष दिख जाते हैं, क्या उस वजह से क्रोध आता है?

दादाश्री : हाँ। वे दोष देखते हैं, उन्हें भी हमें जान लेना है कि ये भी गलत परिणाम हैं। अर्थात् जब ये गलत परिणाम देखना बंद हो जाएगा, उसके बाद क्रोध बंद हो जाएगा। हमारा दोष देखना बंद हो गया तो फिर सबकुछ बंद हो गया।

क्रोध, मात्र निर्बलता ही!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, कभी कोई व्यक्ति अपने सामने गरम हो जाए, तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : गरम तो हो ही जाएँगे न! उनके हाथ में थोड़े ही हैं? अंदर की मशीनरी हाथ में नहीं है न! यह तो जैसे-तैसे करके मशीनरी चलती रहती है। यदि खुद के हाथ में होता तो कोई मशीनरी गरम होने ही नहीं देता न! इस दुनिया में कोई गरम नहीं होता। यह गरम होना यानी, थोड़ा भी गरम हो जाना यानी गधा बन जाना। मनुष्यपन में गधा बन गया! ऐसा कोई करेगा ही नहीं न! लेकिन जो खुद के हाथ में नहीं है, वहाँ फिर क्या हो?

ऐसा है, इस जगत् में कभी भी गरम होने का कोई कारण ही नहीं है। कोई कहेगा कि, 'यह बच्चा ऐसे कुँए में गिर जाए ऐसा लग रहा था।' ऐसे कुँए में गिर जाए तब भी वह गरम होने का कारण नहीं है। वहाँ तुझे ठंडे रहकर काम लेना है। यह तो, तू गरम है इसलिए गरम हो जाता है। और गरम हो जाना, वह निर्बल स्वभाव है। भयंकर निर्बलता कहलाती है। यानी जब बहुत अधिक निर्बलता होगी, तभी गरम होगा न! यानी जो गरम होता है उस पर तो दया रखनी चाहिए कि इस बेचारे के कंट्रोल में कुछ भी नहीं है। जिसका खुद का स्वभाव ही उसके कंट्रोल में नहीं है, उस पर दया रखनी चाहिए। गरम होना यानी क्या? कि पहले खुद जलना और फिर सामनेवाले को जला देना। यह दियासलाई लगाना यानी खुद भभककर जलना और फिर सामनेवाले को जला देना। यानी गरम होना खुद के हाथ में होता तो कोई गरम होता ही नहीं न! सभी को गरमी होती भी नहीं है न! जलन किसे पसंद है? यदि कोई ऐसा कहे कि, 'कितनी ही बार संसार में क्रोध करने की ज़रूरत पड़ती है।' तब मैं कहूँगा कि, 'नहीं, कोई ऐसा कारण नहीं है कि जहाँ पर क्रोध करने की ज़रूरत हो।' क्रोध, वह निर्बलता है इसलिए वह हो जाता है। भगवान ने इसलिए अबला कहा है। पुरुष तो किसे कहते हैं? क्रोध-मान-माया-लोभ की निर्बलता जिसमें न हो, उसे भगवान ने पुरुष कहा है। यानी ये जो पुरुष दिखते हैं उन्हें भी अबला कहा

है, लेकिन इन्हें शर्म नहीं आती है न, उतना अच्छा है! वर्ना अबला कहने पर तो शरमा जाएँगे न? लेकिन इन्हें कुछ भान ही नहीं है। भान कितना है? नहाने का पानी रखो तो नहा लेता है। खाने का, नहाने का, सोने का वगैरह सब भान है, लेकिन और कुछ भान नहीं है, मनुष्यपन का जो विशेष भान कहा जाता है कि ये सज्जन पुरुष हैं, वैसी सज्जनता लोगों को दिखे, उसका भान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सज्जनता भी संसार में ज़रूरी है न?

दादाश्री : सबसे पहली ज़रूरत है। संसार में सज्जनता की ही क़ीमत है और सज्जनता होगी तब मनुष्य में वापस आएगा और अगर सज्जनता खत्म हो गई और इन्सानियत चली गई कि वापस चार पैरवाला हो जाएगा। सर्व प्रथम इन्सानियत तो होनी ही चाहिए। इन्सानियत है, बस इतना ही टेस्ट हो जाए, तभी यहाँ पर मनुष्य योनि में जन्म होगा। अतः सज्जनता तो सब से पहले चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह भान ज्ञानी के बिना नहीं मिलता है न!

दादाश्री : ऐसा है, पहले ज्ञानी नहीं मिले हों लेकिन फिर भी संत मिले होंगे न, उस जन्म में भी उनमें विनयगुण यानी कि सज्जनता तो आ चुकी होती है। भले ही उनमें निर्बलता हो, लेकिन सज्जनता तो आ सकती है। मैंने ऐसे अच्छे-अच्छे लोग देखे हैं, क्योंकि पहले संत, गुरु मिले थे कि जिनके आधार पर सज्जनता रख सकते हैं। लेकिन मोक्ष का रास्ता तो तभी होगा जब 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ।

क्रोध का शमन, किस समझ से?

कुछ लोग क्रोध को दबाते हैं। अरे, दबाने जैसी चीज़ नहीं है वह! क्रोध को पहचानकर दबा न! क्रोध दबाएगा तो, उसमें चार भैंसे हैं : क्रोध-मान-माया-लोभ! उसमें क्रोध के भैंसे को

ज़रा दबाकर सँकरा करे न, तब मान का भैंसा अधिक मोटा हो जाता है! इससे क्या फायदा हुआ? मान का भैंसा बढ़ा। लोग तो एक भैंसे को दबाते हैं न? लेकिन ऐसा नहीं करना है। क्रोध क्या है? उसे पहचानने की ज़रूरत है।

क्रोध खुद ही अहंकार है। अब उसकी जाँच करनी चाहिए। जाँच करो कि वह किस प्रकार से अहंकार है। उसकी जाँच करें, तब पकड़ में आता है कि क्रोध अहंकार है। यह क्रोध क्यों उत्पन्न हुआ? तब कहे कि, 'इस बहन ने कप-प्लेट फोड़ दिए इसलिए क्रोध उत्पन्न हुआ।' अब कप-प्लेट फोड़ डाले, उसमें हमें क्या आपत्ति है? तब कहे कि, 'हमारे घर में नुकसान हुआ।' और नुकसान हुआ तो क्या उसे डाँट दें फिर? लेकिन अहंकार करना, डाँटना, वगैरह को अगर बारीकी से सोचा जाए तो सोचने से ही वह सारा अहंकार धुल जाएगा, ऐसा है। अब इन कप का टूटना, वह निवार्य है या अनिवार्य है? निवार्य संयोग होते हैं या नहीं होते? नौकर को सेठ डाँटता है कि, 'अरे, कप-प्लेट क्यों फोड़ डाले? तेरे हाथ टूटे हुए थे क्या? और तेरा ऐसा था और वैसा था।' यदि अनिवार्य हो तो क्या उसे डाँट सकते हैं? जमाई के हाथ से कप-प्लेट फूट गए हों तो वहाँ कुछ भी नहीं कहते! क्योंकि वह सुपीरियर है, वहाँ चुप! अगर इन्फीरियर हो वहाँ छिट् छिट् करता है! ये सब इगोइज़्म हैं। सुपीरियर के सामने क्या सभी चुप नहीं हो जाते? इन दादा के हाथ से कुछ फूट जाए तो किसी के मन में कुछ आता ही नहीं और नौकर के हाथ से फूट जाए तो?

इस जगत् ने न्याय कभी देखा ही नहीं। नासमझी के कारण यह सब है। यदि समझदार बुद्धि होती न, तब भी बहुत हो चुका! बुद्धि यदि विकसित हो, समझवाली हो तो कहीं भी कोई झगड़ा होगा ही नहीं। अब झगड़ा करने से क्या कप-प्लेट जुड़ जाते हैं? सिर्फ संतोष मिलता है, उतना ही न? बल्कि कलह हो जाती है,

वह अलग। मन में क्लेश हो जाता है, वह अलग। यानी इस व्यापार में तो एक तो प्याले गए वह नुकसान; दूसरा, यह क्लेश हुआ वह नुकसान और तीसरा, नौकर के साथ बैर बँधा वह नुकसान! नौकर बैर बाँधता है कि 'मैं गरीब हूँ,' इसीलिए ये मुझे अभी ऐसा कह रहे हैं न! लेकिन वह बैर छोड़ेगा नहीं और भगवान ने कहा है कि बैर किसी के भी साथ मत बाँधना। शायद कभी प्रेम बँधे तो बाँधना, लेकिन बैर मत बाँधना। क्योंकि प्रेम बँधेगा तो वह प्रेम अपने आप ही बैर को खोद डालेगा। प्रेम की कबर तो बैर को खोद डाले ऐसी है, लेकिन बैर की कबर कौन खोदेगा? बैर से तो बैर बढ़ता ही रहता है। इस प्रकार निरंतर बढ़ता ही रहता है। बैर के कारण ही तो यह भटकन है सारी! ये मनुष्य किसलिए भटकते हैं? क्या तीर्थंकर नहीं मिले थे? तब कहे, 'नहीं, तीर्थंकर तो बहुत सारे मिले थे। वहाँ गए थे, वहाँ बैठे थे। उनकी बात सुनी, देशना भी सुनी, लेकिन कुछ हुआ नहीं।'

किस-किस बात में अड़चनें आती हैं? कहाँ-कहाँ आपत्ति होती हैं? उन आपत्तियों को खत्म कर दो न! यदि आपत्ति होती है वह संकुचित दृष्टि है। तो 'ज्ञानीपुरुष' लोंग साइट दे देते हैं। उस लोंग साइट के आधार पर सबकुछ 'ज्यों का त्यों' दिखता है!

[१९]

व्यापार की अड़चनें

अड़चनें, करवाएँ प्रगति

'अड़चन आना अच्छी चीज़ है' ऐसा मानोगे तभी आगे बढ़ा जा सकेगा। जब ऐसा मानोगे कि जिसे आप अड़चन कहते हो, वह अच्छी चीज़ है, तब आगे बढ़ पाओगे, वर्ना यदि आप ऐसा कहोगे 'यह अड़चन खराब है' तो वह अड़चन आपको रोक देगी और आपकी प्रगति रुँध जाएगी। अड़चनों को पार करोगे तभी काम हो पाएगा, नहीं तो वे अड़चनें ही आपको रोकेंगी। और अड़चनों की वजह से आप उस पर '*बाखड़ी बाँधोगे*' तो फिर बरकत नहीं आएगी, कुछ नहीं हो सकेगा।

प्रश्नकर्ता : '*बाखड़ी बाँधोगे*' मतलब?

दादाश्री : जो लोग अड़चन डालते हैं, उनके प्रति यदि मन में ऐसा हो कि 'सामनेवाला ऐसा क्यों करता है?' या फिर यदि ऐसे रास्ते भी करने जाओगे तो उससे कुछ होगा नहीं। लोग तो अड़चन डालेंगे ही, हमें ऐसा मानकर ही आगे बढ़ना है। रास्ते में लोग अड़चन डालेंगे, ऐसा मानकर ही हमें आगे चलना है और फिर लोगों के प्रति वीतराग रहना है। वे लोग अड़चन डालेंगे, उन अड़चनों को पार कर लेना है, और फिर वीतराग रहना है, इतना मानकर ही मोक्षमार्ग में चलना है। फिर भी हमने जो मोक्षमार्ग दिया है, वह बहुत आसान मार्ग है!

विषमता में समता, वही लक्ष्य

मुश्किलें तो आती ही रहेंगी। मुश्किलों के बगैर तो यह टाइम बीते ऐसा नहीं है, इसी का नाम दूषमकाल! महादुःखपूर्वक समता रहे, ऐसा यह काल है, यानी नब्बे प्रतिशत विषमता ही रहती है। उसमें थोड़ी बहुत समता रखनी, वह कोई ऐसी-वैसी बात है? अभी तो यह विषमता का सागर है।

प्रश्नकर्ता : उसमें थोड़ी समता रह जाए, वह आश्चर्य है।

दादाश्री : हाँ, वह आश्चर्य है और वैसी समता रहे तो उसका आनंद हमें स्पष्ट पता चलेगा।

व्यवहार के लक्ष्य में समता बरते तो वह सब अहंकार के बढ़ने का कारण है। आत्मा का लक्ष्य बैठे बिना उसे समता नहीं कहा जा सकता इसलिए लोगों को यह समता रहती भी नहीं है। वह तो अगर ढीठ बन चुका हो तब समता रहती है, तब फिर वह समता नहीं कहलाती। ढीठ मतलब क्या कि, 'मुझे क्या? वह तो मरेगा!' इसे भगवान ने ढीठ कहा है। जो ऐसा कहे कि 'मुझे क्या,' उसका तो कभी भी हल नहीं आएगा। 'मुझे क्या' कह रहा है? अरे, तेरे बच्चे हैं या नहीं? तब फिर 'मुझे क्या' कैसे कह सकता है? लेकिन ऐसे ढीठ बन चुके हैं। ऐसा है, कि जब मनुष्य पर बहुत दुःख पड़ें, तब फिर वह ढीठ बन जाता है।

उधारी के धंधे में सुख का उधार

प्रश्नकर्ता : मेरे घर में सभी प्रकार की मुश्किलें क्यों रहा करती हैं? धंधे में, वाइफ को, घर में सभी को ऐसी कुछ तकलीफ़ें रहती ही हैं।

दादाश्री : हम यदि लोगों को तकलीफ़ें दें, तब फिर अपने यहाँ तकलीफ़ रहती है। हम यदि लोगों को सुख दें, तो अपने यहाँ सुख आता हैं। सुख चाहिए तो लोगों को सुख दो और तकलीफ़ें

चाहिए तो लोगों को तकलीफ़ें दो, जो चाहिए वही दूसरों को दो। अपने यहाँ जो आता है, उस पर से हमें समझ लेना है कि हमने सामनेवाले को क्या दिया था। अतः यदि सुख चाहिए तो सुख देने का प्रयत्न करो, शुरूआत करो।

यह जगत् तो व्यवहार स्वरूप है, जो ऐसा कहता है कि 'देकर लो'। यदि तकलीफ़ें आती है तो हमें समझ जाना चाहिए कि हमने लोगों को तकलीफ़ें ही दी हैं, दूसरा धंधा ही नहीं किया! और यदि सुख आता है तो समझना कि हमने दूसरों को सुख दिया है।

प्रश्नकर्ता : जो पहले तकलीफ़ें दी जा चुकी है, वे तकलीफ़ें अभी आ रही है। अब वे तकलीफ़ें हों, तो सुख कैसे दे सकते हैं?

दादाश्री : वह तो सुख देने का भाव करो और फिर किसी को भी तकलीफ़ मत देना। दो गालियाँ दे जाएँ, तो आप वापस दूसरी पाँच गालियाँ मत देना और उन दो गालियों को जमा कर लेना। जो दो गालियाँ दी थी वे वापस आई हैं, इसलिए उन दो गालियों को जमा कर लेना। यह तो कोई दो गालियाँ दे तो जमा करने के बजाय दूसरी पाँच देता है। अरे, उसके साथ व्यापार जारी क्यों रखता है? यानी यह सब लेन-देन का हिसाब है। फिर उसे जगत् चाहे जो नाम दे कि ऋणानुबंध है, लेकिन सब लेन-देन का हिसाब है। यानी अगर पसंद हो तो उधार दो, लेकिन वह उधार दिया हुआ वापस आएगा। यह तो जमा-उधार का खेल है! जो जमा किया था वही वापस आ रहा है, इसमें भगवान हाथ डालते ही नहीं। तकलीफ़ पसंद नहीं है? तो फिर तकलीफ़ें देना बंद कर दो।

भले ही कोई सौ गालियाँ दे। अब गालियाँ कोई पत्थर नहीं है। ज्ञान मिलने के बाद ये गालियाँ क्या पत्थर हैं? पत्थर लग जाए तब मुझे लगेगा कि इसे चोट लगी है, खून निकला, तो

उसे दुःख माना जाएगा। लेकिन ये गालियाँ कोई पत्थर नहीं है कि लगे और खून निकले!

प्रश्नकर्ता : फिर भी अंदर बीच में स्वीकार हो जाता है और असर हो जाता है।

दादाश्री : लेकिन मेरा कहना है कि गालियाँ क्या हमें ऐसे स्पर्श करती हैं?

प्रश्नकर्ता : इसके बावजूद भी अंदर घाव लग जाते हैं।

दादाश्री : लेकिन वह आपको कैसे छू सकती है? वह बोला वहाँ पर और तुझे यहाँ पर कैसे चोट लग गई?

कौन सी दृष्टि से जगत् दिखे निर्दोष?

पुद्गल (जो पूरण और गलन होता है) को मत देखना, *पुद्गल* की ओर दृष्टि करना ही मत। आत्मा की ओर ही दृष्टि रखना। भगवान महावीर को जगत् में सभी निर्दोष दिखे थे। कान में कीलें मारनेवाले भी निर्दोष दिखे। कोई दोषित है ही नहीं जगत् में। यदि कोई दोषित दिखता है तो, वह अपनी ही भूल है। वह एक प्रकार का अपना अहंकार है। यह तो हम बिना तनख़्वाह के काज़ी बनते हैं, उसी की फिर मार खाते हैं।

'मोक्ष में जाते हुए ये लोग हमें उलझाते हैं' हम जो ऐसा कहते हैं वह तो हम व्यवहार से कहते हैं। इस इन्द्रिय ज्ञान से जैसा दिखता है वैसा बोलते हैं, लेकिन वास्तव में हकीकत में वैसा नहीं है। हकीकत में तो लोग उलझा ही नहीं सकते न! क्योंकि कोई जीव किसी जीव में किंचित्‌मात्र भी दख़ल कर ही नहीं सकता, ऐसा है यह जगत्। ये लोग तो बेचारे प्रकृति के अधीन हैं, प्रकृति जैसा नाच नचाती है उस अनुसार नाचते हैं, अतः उसमें किसी का दोष है ही नहीं। जगत् पूरा ही निर्दोष है। मुझे खुद को निर्दोष अनुभव में आता है। जब आपको वह निर्दोष

अनुभव में आएगा तब आप इस जगत् से छूटोगे, नहीं तो कोई एक जीव भी दोषित लगेगा तब तक आप छूटोगे नहीं।

प्रश्नकर्ता : इसमें सभी जीव आ जाते हैं? सिर्फ मनुष्य ही नहीं, लेकिन कीड़े, मकौड़े सभी आ जाते हैं?

दादाश्री : हाँ, जीवमात्र निर्दोष स्वभाव के दिखने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने ऐसा कहा है कि जीवमात्र निर्दोष है। अब नौकरी में मैंने कहीं पर भूल की और मेरा *ऊपरी* अधिकारी ऐसा कहे कि तूने यह भूल की, फिर वह मुझे डाँटेगा-डपटेगा। अब यदि मैं निर्दोष हूँ तो वास्तव में मुझे डाँटना नहीं चाहिए न?

दादाश्री : कोई डाँटे तो, आपको वह नहीं देखना है। हमें 'डाँटनेवाला भी निर्दोष है,' ऐसा आपकी समझ में रहना चाहिए। यानी किसी पर भी दोषारोपण नहीं करना चाहिए। वे आपको जितने निर्दोष दिखेंगे उतना ही ऐसा कहा जाएगा कि आपको समझ में आ गया।

मुझे जगत् निर्दोष दिखता है। जब आपकी दृष्टि ऐसी हो जाएगी तब यह पज़ल सोल्व हो जाएगा। मैं आपको ऐसा उजाला दूँगा और इतने पाप धो डालूँगा ताकि आपका उजाला रहे और आपको निर्दोष दिखता जाए और साथ-साथ पाँच आज्ञा दूँगा। उन पाँच आज्ञा में रहोगे तो वह, जो दिया हुआ ज्ञान है उसे बिल्कुल भी फ्रैक्चर नहीं होने देगा।

'सुनार,' कैसी गुणवान दृष्टि

हम पूरे जगत् को निर्दोष देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार से पूरे जगत् को निर्दोष कब देख सकते हैं?

दादाश्री : आपको उदाहरण देकर समझाता हूँ। आप समझ

जाओगे। एक गाँव में एक सुनार रहता है। पाँच हज़ार लोगों का गाँव है। आपके पास सोना है, वह सारा सोना लेकर वहाँ बेचने गए। तब वह सुनार सोना ऐसे घिसता है, देखता है। अब हमारा सोना वैसे तो चाँदी जैसा दिख रहा होता है, मिलावटवाला सोना होता है, फिर भी वह सुनार डाँटता नहीं है। वह क्यों नहीं डाँटता कि 'ऐसा क्यों बिगाड़कर लाए हो?' क्योंकि उसकी दृष्टि सोने पर ही है। और दूसरे के पास जाओ, तो वह डाँटता है कि 'ऐसा कैसा लाए हो?' इसलिए जो सुनार है, वह डाँटता नहीं है। इसलिए आप यदि सोना ही माँग रहे हो, तो इसमें सोना ही देखो न! उसमें और कुछ क्यों देखते हो? इतना मिलावटवाला सोना क्यों लाए हो? ऐसे डाँटे-करे तो, उसका कब पार आएगा? हमें अपनी तरह से देख लेना है कि इसमें इतना सोना है और उसके इतने रुपये मिलेंगे। आपको समझ में आया न? उस दृष्टि से मैं सारे जगत् को निर्दोष देखता हूँ। इसी दृष्टि से, भले ही कैसा भी सोना हो, फिर भी सुनार सोना ही देखता है न? बाकी कुछ देखता ही नहीं है न और डाँटता भी नहीं है। हम उसे बताने जाएँ, तब अपने मन में होता है कि वह डाँटेगा तो? अपना सोना तो सारा खराब हो गया है! लेकिन नहीं, वह डाँटता-करता नहीं है। उसे कुछ हर्ज भी नहीं। वह क्या कहेगा, 'मुझे दूसरा क्या लेना-देना?' वे बेअक़्ल हैं या अक़्लवाले हैं?

प्रश्नकर्ता : अक़्लवाला ही कहलाएगा न?

दादाश्री : यह सिमिलि ठीक नहीं है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है। ऐसा उदाहरण दें, तो सबकुछ जल्दी फिट हो जाता है।

दादाश्री : अब यह उदाहरण कोई जानता नहीं क्या?

प्रश्नकर्ता : जानते होंगे।

दादाश्री : ना, किस तरह ख्याल में आए? पूरे दिन ध्यान

लक्ष्मी जी में, और लक्ष्मी जी का विषय पूरा हुआ कि वापस घर पर मेमसाहब याद आती रहती हैं और मेमसाहब का विषय पूरा हुआ कि वापस लक्ष्मी जी का विषय याद आता है! इसीलिए दूसरा कुछ ख्याल में ही नहीं रहता है न! फिर दूसरे हिसाब निकालने रह ही जाएँगे न?

हमने सुनार को देखा था, तब मुझे ऐसा होता था कि यह डाँटता क्यों नहीं कि आप सोना क्यों बिगाड़कर लाए हो? उसकी दृष्टि कितनी सुंदर है! बिल्कुल भी नहीं डाँटता। इसका अच्छा है वैसा भी नहीं कहता है और उसका खराब है वैसा भी नहीं कहता है। कुछ भी कहता नहीं, लेकिन ऐसा कहता है, 'बैठो, चाय-पानी पीओगे न?' अरे, मिलावटी सोना है, फिर भी चाय पिला रहा है? ऐसा ही इसमें भी क्या बिगड़ गया है? अंदर 'शुद्ध' सोना ही है न?

यह कैसी रिसर्च, कि भगवान मिल गए

मैंने पूरी लाइफ रिसर्च में निकाली है, रिसर्च ही किया है सब। छोटी उम्र में ही कहता था कि भगवान सिर पर नहीं चाहिए। उसके बजाय ये बीवी-बच्चे, माँ-बाप सिर पर हों तो हर्ज नहीं है खिलाएँगे-पिलाएँगे। लेकिन यदि भगवान सिर पर होंगे तो वे तो बिना काम के झिड़केंगे। फिर पढ़ने में आया कि भगवान तो भीतरवाले को कहते हैं, तब वह बात मुझे पसंद आई। कई लोग तो भगवान को भीतरवाला ही कहते हैं न!

अवकाश, धर्म के लिए ही बिताया

हमने कितने ही समय से व्यापार किया ही नहीं। व्यापार में तो अगर हमारे पार्टनर पूछें कि, 'यह कैसे करेंगे?' तब मैं कहता कि, 'ऐसा करें।' तब वे कहते, 'यह तो मेरी छह महीने की उलझन चली गई अब आप छह महीने तक नहीं आएँगे तो चलेगा। आप एक दिन कुछ बताते हैं न तो मेरे छह महीने की

मेहनत बच जाती है।' यानी मुझे छूट दे दी थी कि आप अपना धर्म करते रहो और मैं यह करता रहूँगा। साथ-साथ उन्होंने कहा था कि मुझे भी बदले में थोड़ा-बहुत 'यह' दीजिएगा।

नुकसान बता देना, उधार तो रुके!

वर्ना, अगर व्यापार में नुकसान जाता हो तो लोगों से कह देता था और फायदा होता था तो वह भी कह देता था! लेकिन यदि लोग पूछें तभी, नहीं तो मेरे व्यापार की बात ही नहीं करूँ। लोग पूछें, कि 'आपको अभी नुकसान हुआ है, क्या यह बात सही है?' तब मैं कह देता था कि, 'यह बात सही है।' कभी हमारे पार्टनर ने हमसे ऐसा नहीं कहा कि आप क्यों कह देते हो? क्योंकि ऐसा कहना तो अच्छा है कि लोग पैसा लगाने के लिए आ रहे हों तो रुक जाएँगे और उधार बढ़ना कम हो जाएगा, नहीं तो लोग क्या कहेंगे? 'अरे! नहीं कहना चाहिए, वर्ना लोग पैसा नहीं लगाएँगे।' लेकिन इससे तो अपना उधार बढ़ जाएगा न, इसके बजाय जो हुआ हो वह साफ-साफ कह दो न कि 'भाई नुकसान हुआ है।'

दोनों को जवाब अलग-अलग

हमारी कंपनी में नुकसान हुआ तो ज़रा ठंड़ा पड़ गया था। तो जब बड़ौदा जाते तब लोग पूछते कि, 'बहुत नुकसान हुआ है?' तब मैंने कहा कि, 'कितना लगता है आपको?' तब कहते कि, 'लाख रुपये का नुकसान हुआ लगता है।' तब मैं कहता कि, 'तीन लाख का नुकसान हुआ है।' अब व्यापार में आधे या पौने लाख का नुकसान हुआ होता था, लेकिन मैं उसे तीन लाख कहता था। क्योंकि वह यही ढूँढने आया था! वह क्या ढूँढने आया है वह मैं जानता था, कि इसे यदि मैं लाख का कहूँगा तो खुश रहेगा और बेचारे को घर पर भोजन करना अच्छा लगेगा। इसलिए मैं कहता कि 'तीन लाख का नुकसान

हुआ,' तो उस दिन वह चैन से भोजन करता। और यदि दूसरा कोई शुभचिंतक आए और पूछे कि, 'बहुत नुकसान हो गया है?' तब मैं कहता कि, 'नहीं, पचासेक हज़ार का नुकसान हुआ है।' 'ताकि उसे भी घर जाकर शांति रहे।' शुभचिंतक और बाकी के, दोनों प्रकार के लोग आएँगे। दोनों को खुश करके भेजना चाहिए। यदि मैं कहूँ कि, 'तीन लाख का नुकसान हुआ है' तो वह बहुत खुश हो जाएगा। उसे वापस कहूँ कि, 'चाय पीकर जाओ न?' तब कहता है कि, 'मुझे ज़रा काम है।' क्योंकि उसे आनंद हो गया न, तब चाय वगैरह सबकुछ आ गया। उसे उसकी खुराक मिल गई, क्योंकि द्वेष है न! यह स्पर्धा ऐसी चीज़ है कि स्पर्धा के मारे इंसान कुछ भी कर दे। स्पर्धा यानी कि, 'मुझसे आगे बढ़ गया है? अब इसे पीछे धकेलना ही चाहिए।' तो फिर पीछे धकेलने के प्रयत्न करता रहता है। ऐसे को मैं साफ-साफ ही कह देता हूँ कि, 'अधिक नुकसान हुआ है।' देखो, उसे चैन से खाने का भाया न! और अपने यहाँ क्या नुकसान होनेवाला है? अपना तो नुकसान हुआ ही है, उसमें हमें हर्ज नहीं। लेकिन लोगों को तो क्या है कि जवाब तो देना पड़ेगा न! उन्हें यदि कह दें कि, 'कोई नुकसान नहीं हुआ।' तो वह और कुछ ढूँढकर लाएगा वापस कि 'ये तो मना कर रहे हैं।' अतः उसे कहना पड़ता है, 'हाँ, तीन गुना नुकसान हुआ है। जिसने तुझसे कहा हो उसे पूछ लेना, उसे भी पता नहीं होगा। लेकिन मुझे बहुत नुकसान हुआ है।' फिर थोड़े दिन बाद वापस आए और कहे कि, 'अब काम-धंधा कैसा है आपका? बंद करना पड़ेगा?' तब मैंने कहा कि, 'यह तो सात लाख की जायदाद थी, उसमें से तीन लाख कम हो गए।' यानी उसे नई ही प्रकार का कहते थे। अरे, तू क्या मुझे पहुँच पाएगा! मैं 'ज्ञानीपुरुष' हूँ, तुझे दुःख नहीं दूँगा, लेकिन इस तरह कुरेदना मत। यह तो बिना बात के पीछे घूमते रहते हैं! तो ऐसे तो मैंने बहुत लोग देखे हैं। दुनिया है न, सभी तरह के लोग होते हैं!

चोरियाँ होने दीं, हिसाब चुकाए

हमारे यहाँ काम पर ऐसा होता था न, कि जिसे चौकीदार रखते वे ही चोरियाँ करवाता था। फिर एक के बदले दो लोग रखे। एक रात का और दूसरा दिन का, ऐसे दो लोग रखे। वो भी चोरियाँ करवाता था। हर दूसरे-तीसरे दिन चोरियाँ होती ही रहती थीं। मैं समझ गया कि, 'यह सब ठीक है, यह सारा हिसाब चुकाना पड़ेगा। इस गाँव में चोरियों का हिसाब चुकाने आए हैं, तो जब सारा हिसाब चुक जाएगा तो निबेड़ा आ जाएगा।' चोर चोरियाँ करे और हमें सुबह जान लेना है, जान लेने के बाद फिर शांत कर देता और जो स्पेयरपार्ट चोरी हो जाते थे, वे वापस दूसरे मँगवा लेता था और काम आगे बढ़ने देता। इतना ही काम करता रहता था। फिर सात दिन बाद पुलिसवाले को खबर देता। नुकसान में और भी नुकसान! ऐसे क्यों करता था? नहीं, वह नाटक भी करना पड़ता है। नाटक नहीं करें तो फिर गलत माना जाएगा। फिर पुलिसवाले आते थे। वे पुलिसवाले पूछते थे कि, 'क्या-क्या गया?' तब मैं कहता कि, 'यह-यह गया है, वह वाला सामान तो सारा चला गया। आप एक बार सब को धमकाओ।' वह फिर उन सब को धमका आते कि, 'अरे, ऐसा कैसे? अरे, ऐसा कैसे? मैं आया हूँ।' हम जान जाते थे कि कल से वापस चोरियाँ शुरू हो जाएँगी, हम वह ज्ञान जानते ही थे। पुलिसवाला धमकाता और वे चोरी करते। हम यह सब करवाते थे और ऐसे सब चलता रहता! लेकिन 'व्यवस्थित' से बाहर कुछ भी होनेवाला नहीं है। बारह महीनों तक चोरियाँ हुई, लेकिन हमारे यहाँ किसी पर कोई असर नहीं। रोज़ चोरियाँ होती रहती थीं। हम सिर्फ जान लेते थे कि भाई आज इतनी चोरी हुई।

चोर चोरी करते हैं, वे तो बेचारे अच्छे हैं। बाकी ये जो साहूकार कहलाते हैं न, जब वे चोरियाँ करते हैं तो वे अधिक गुनहगार हैं। इसके बजाय, वह तो चोर ही है। वह कहता भी है न, कि 'मेरा काम ही चोरी करना है।'

दंड का भान हो, तभी गुनाह रुकेंगे

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा नहीं करेगा तो पेट कहाँ से भरेगा?

दादाश्री : पहले हमें भी ऐसा भय लगता था। इस कलियुग में हमने भी जन्म लिया न! तो १९५१ तक तो ऐसा भय रहता था, लेकिन फिर वह भय छोड़ दिया, क्योंकि सिमेन्ट निकाल लेना, वह मनुष्य में से ब्लड चूसने के समान है और लोहा निकाल लेना, वह इन सब के स्केलेटन (हड्डियाँ) निकाल लेने जैसा है। स्केलेटन निकाल लिया, खून निकाल लिया, फिर मकान में बचा क्या?

हम लोगों को चोरी करना शोभा नहीं देता। हम साहूकार बनकर चोरी करे उसके बजाय तो चोर अच्छे। जो चोरियाँ करते हैं, उनके बजाय तो जो मिलावट करते हैं वे और अधिक गुनहगार हैं। यह तो भान ही नहीं कि 'मैं जो यह गुनाह कर रहा हूँ, उसका क्या फल आएगा?,' नासमझी में बिना समझे ही गुनाह करते हैं।

हिसाब का पता चला तो चिंता टल गई!

हमारे यहाँ बिज़नेस में एक बार ऐसा हुआ कि एक साहब ने अचानक से दस हज़ार रुपये का नुकसान कर दिया। साहब ने हमारा एक काम अचानक ही निरस्त कर दिया। उस समय में तो दस हज़ार की बहुत क़ीमत थी और अभी तो दस हज़ार की कोई क़ीमत ही नहीं है न! मुझे तो उस दिन बहुत भीतर तक असर पहुँचा था। चिंता हो जाए, वहाँ तक पहुँच गया था। तब तुरंत ही उसके सामने मुझे अंदर से जवाब मिला कि, 'इस व्यापार में मेरी खुद की पार्टनरशिप कितनी?' उन दिनों हम दो ही पार्टनर थे, लेकिन फिर मैंने हिसाब निकाला कि दो लोग तो कागज़ पर पार्टनर हैं, लेकिन वास्तव में कितने हैं? वास्तव में तो बेटे, बेटियाँ, उनकी पत्नी और मेरा परिवार। ये सब पार्टनर

ही हैं न! तब मुझे हुआ कि इन सब में से कोई चिंता नहीं कर रहा, मैं अकेला ही कहाँ इसे सिर पर ओढ़कर बैठूँ? उन दिनों इस विचार ने मुझे बचा लिया। बात तो सही है न? आपको कैसी लगती है मेरी बात? मेरा सोचना ठीक है न?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने से पहले की बात है न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान होने से पहले की बात है।

फायदे-नुकसान की सत्ता कितनी?

एक व्यापार के दो बेटे, एक का नाम नुकसान और एक का नाम फायदा। नुकसानवाला बेटा किसी को पसंद नहीं है, लेकिन ये दो होते ही हैं। वह तो वे दोनों जन्में ही होते हैं। व्यापार में अगर नुकसान हो रहा हो तो वह रात को होता है या दिन में होता है?

प्रश्नकर्ता : रात को भी होता है और दिन में भी होता है।

दादाश्री : लेकिन अगर नुकसान हो रहा हो तब तो दिन में होना चाहिए न? रात को भी यदि नुकसान होता है, तो रात को तो हम जाग नहीं रहे थे तो रात को किस तरह नुकसान होगा? यानी नुकसान और फायदे के कर्ता हम नहीं है। वर्ना रात को किस तरह से नुकसान होता? और रात को फायदा किस तरह मिलेगा? क्या कभी ऐसा नहीं होता कि मेहनत करते हैं, फिर भी नुकसान होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा होता है।

दादाश्री : तो मेहनत करने से फायदा होता है या मेहनत करने से नुकसान होता है, उसका डिसीज़न क्या है?

प्रश्नकर्ता : फायदा और नुकसान वह किसी के हाथ की बात नहीं है, वह तो 'व्यवस्थित' के हाथ में है।

दादाश्री : हाँ, सबकुछ 'व्यवस्थित' के ताबे में है। यानी भीतर 'व्यवस्थित' जैसी प्रेरणा देता है न, हमें उस तरीके से करना चाहिए। दूसरा उसमें अधिक अक़्लमंदी का उपयोग नहीं करना चाहिए। बुद्धि से नापने जाएँ कि फायदा मिलेगा या नुकसान तो उसे नाप सकेंगे क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : एक व्यक्ति को कोई बीमारी हुई हो और उस बीमारी को बुद्धि से नापने जाएँ तो क्या होगा? उसे ऐसा ही लगेगा कि अब मर ही जाऊँगा, और यदि किसी को बीमारी नहीं हुई हो और उसे बुद्धि से नापे नहीं फिर भी वह बेचारा यों ही हिचकी खाकर मर जाता है। ऐसा होता है या नहीं होता?

यानी यह सब नुकसान या फायदा नहीं देखना है। अब देखना क्या है? यह फायदा और नुकसान वगैरह तो सब करके ही आए हो, अब इसमें भाव डालो या ऐसा कुछ करो। इस फायदे और नुकसान में तो सिर्फ निमित्त की तरह, भीतर से जिस अनुसार प्रेरणा आती है उस अनुसार हमें चलते जाना है। 'व्यवस्थित' का उल्लंघन मत करना। जैसी भीतर प्रेरणा हो उसी अनुसार करना। नुकसान के लिए भी 'व्यवस्थित' प्रेरणा देता है और फायदे के लिए भी प्रेरणा 'व्यवस्थित' ही देता है, इसलिए हमें प्रेरणा के अनुसार ही चलना चाहिए। क्योंकि फायदा और नुकसान वह सब 'व्यवस्थित' के ताबे में है, तो फिर अब करें क्या? फुरसत का समय इसमें मत बिगाड़ना, इस सत्संग में टाइम लगाओ। क्योंकि वह सब आपके हाथ की सत्ता ही नहीं है। ये व्यापारी लोग रात को कमाते होंगे या नहीं कमाते होंगे? रात को सो जाने पर भी वे कमाते हैं?

प्रश्नकर्ता : कमाई और नुकसान तो चलता ही रहता है न!

दादाश्री : चलता ही रहता है। आप नवसारी से यहाँ आए फिर भी वहाँ कमाई होती ही रहेगी। ग़ज़ब का आश्चर्य है न! दिन में भोजन करने बैठे तब भी कमाई होती ही रहती है और नुकसानवाले का नुकसान होता ही रहता है न! कैसा आश्चर्य है! इन सब बहियों का हिसाब निकालना आता है, लेकिन इस जगत् का हिसाब निकालना आ जाए तो क्या निकलेगा? हमें जगत् का हिसाब निकालना आ चुका है! 'यह' ज्ञान होने से पहले हमने हिसाब निकाला कि इस जगत् का सार क्या है? इसलिए फिर हमें क्यों झंझट करनी? जिसके लिए मेहनत करते हैं वह तो सारा तैयार माल ही है, नहीं तो लाख मन मेहनत करे फिर भी वह काम की नहीं है, बल्कि नुकसान होता है।

सत्ता किसके हाथ में है, उसका सार निकालो! आपने सार निकाला है क्या?

प्रश्नकर्ता : 'इस' ज्ञान के बाद पता चलता है।

दादाश्री : हाँ, पहले तो पता ही नहीं चल सकता था न? उलझा हुआ सबकुछ, सभी बहीखाते ही उलझे हुए थे। इसमें किसी व्यक्ति की मति से यह हिसाब निकल सके, ऐसा नहीं है। बुद्धि से यह हिसाब निकले, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप जो कह रहे हैं, ये सभी बातें पहले सुनी ही नहीं।

दादाश्री : सुनी ही नहीं न! ऐसी बातें कहीं भी होती ही नहीं। ये सभी बातें अपूर्व हैं। पहले सुना हुआ नहीं, पढ़ा हुआ नहीं, यह बिल्कुल नया ही तरीका है! और तभी तो हल आ जाता है, नहीं तो हल कैसे आता?

हम मेहनत करे, चारों तरफ का देखते रहे फिर भी कुछ नहीं मिले, तो हमें समझ जाना चाहिए कि हमारे संयोग सीधे नहीं है। अब वहाँ पर अधिक ज़ोर लगाएँगे तो बल्कि नुकसान होगा,

इसके बजाय हमें आत्मा का कुछ कर लेना चाहिए। पिछले जन्म में यह नहीं किया था, इसीलिए तो यह झंझट हुआ है। जिसने अपना ज्ञान लिया है, उसकी तो बात ही अलग है न, लेकिन अपना ज्ञान नहीं मिला हो फिर भी वह भगवान के भरोसे रख देता है न! उसे क्या करना पड़ता है? 'भगवान जो करेंगे वह ठीक है' कहते हैं न? और यदि बुद्धि से नापने जाए तो कभी भी तालमेल नहीं बैठेगा।

व्यापार की शोभा भी नॉर्मेलिटी से

फायदा-नुकसान कुछ भी अपने क़ाबू की बात नहीं है, इसलिए नैचरल एडजस्टमेन्ट के आधार पर चलो। दस लाख कमाने के बाद एकदम पाँच लाख का नुकसान आए तो? यह तो लाख का नुकसान भी सहन नहीं कर सकता न! पूरे दिन रोना-धोना, चिंता-वरीज़ करके रख देता है! अरे, पागल भी हो जाता है! अभी तक मैंने इस तरह से कितने ही पागल हुए देखे हैं! रात को बारह-एक बजे, दो बजे भी पुरुषार्थ करना है?

प्रश्नकर्ता : तब तो इंसान मेन्टल हो जाएगा।

दादाश्री : हाँ मेन्टल तो हो ही चुके है, भला वापस अब और कितने मेन्टल होंगे? पूरा जगत् मेन्टल होस्पिटल ही बन चुका है न! अब वापस मेन्टल नहीं होना है, क्योंकि क्या डबल मेन्टल होते हैं? अतः फायदा और नुकसान अपने हाथ की बात नहीं है। आप तो अपना काम करो और जो कुछ अपना फ़र्ज़ हो, वह पूरा करो।

प्रश्नकर्ता : काम करने का कोई नॉर्मल टाइम होना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : काम करते जाना है, उसके लिए कुछ आठ या दस घंटे रखने चाहिए। फिर पंद्रह-बीस घंटे नहीं रखने चाहिए।

दादाश्री : उसका नियम होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : नौकरीवाले के लिए तो नियम होते हैं, लेकिन व्यापारवालों के तो, जैसे नियम हैं ही नहीं।

दादाश्री : व्यापारवाला ऐसा नियम बनाए, तो रात को दो बजे भी उसे दुकान खुली रखने के लिए कौन मना करता है? कोई स्टेशन से अचानक आ जाए, तो दो सिगरेट के पैकेट ले जाएगा न! इसके लिए कौन मना करता है? घनचक्कर का कहीं अंत आएगा क्या? अरे, दो सिगरेट के पैकेट के लिए क्या पूरी रात गुज़ारेगा?

जहाँ सभी लोग आठ बजे दुकान खोलते हों, वहाँ हम साढ़े छह बजे खोलकर बैठ जाएँ तो उसका कोई अर्थ नहीं है। सारी मेहनत निरर्थक है और आठ बजे बाद खोलना भी गुनाह है। दोपहर को सब बंद करें उस समय पर बंद कर देनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सभी कारखानेवाले तीन-तीन शिफ्ट तो चलाते हैं, तो देखा-देखी दूसरा भी कहता है कि, 'क्यों न मैं भी तीन शिफ्ट चलाऊँ?'

दादाश्री : हाँ, लेकिन तब तो तीन नहीं, पाँच करके देखो न!

ऐसा है, इस नेचर ने भी अपने शरीर की हर एक चीज़ देखकर व्यवस्था की है। ये दो कान उनमें से एक अचानक बंद हो गया तो क्या होगा? लेकिन गाड़ी चलती रहेगी न? दो आँखें, उनमें से एक बंद हो गई तो क्या होगा? ऐसी कितनी ही चीज़ें दो-दो रखी हैं न? उसी तरह बहुत हो गया तो दो शिफ्ट चला सकते हैं। वर्ना उसका अंत ही नहीं आएगा न!

प्रश्नकर्ता : जितना हो सके उतना इस जंजाल को नॉर्मल रखना चाहिए।

दादाश्री : ऐसा है न, खाते-पीते समय चित्त कारखाने में नहीं जाए तो कारखाना ठीक है, लेकिन खाते-पीते समय चित्त कारखाने में चला जाए तो उस कारखाने का क्या करना है? हमें हार्ट फेल का व्यापार करवाता है वह कारखाना, वह अपने काम का नहीं है। अतः नॉर्मेलिटी को समझना चाहिए। अब तीन शिफ्ट चलवाए, तो उसमें यह नवविवाहित है, उसे पत्नी से मिलने का समय नहीं मिलेगा तो क्या होगा? क्या वे तीन शिफ्ट ठीक है? विवाह करके नई-नई पत्नी को लाया हो, तो पत्नी के मन का समाधान तो होना चहिए न? घर जाए, तो पत्नी कहेगी कि, 'आप तो मुझसे मिलते ही नहीं, बातचीत भी नहीं करते!' तो यह व्याजबी नहीं कहलाएगा न? जगत् में व्याजबी दिखे वैसा होना चाहिए।

घर में फादर के साथ या दूसरे किसी के साथ व्यापार को लेकर में मतभेद नहीं पड़े, उसके लिए आपको भी कहना चाहिए, हाँ जी हाँ, कि 'चलती है तो चलने दो।' लेकिन आप सभी को साथ में मिलकर नक्की करना चाहिए कि पंद्रह लाख इकट्ठे कर लिए, अब हमें अधिक नहीं चाहिए। घर के सभी मेम्बरों की पार्लियामेन्ट बुलाकर नक्की करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए कोई 'एग्री' नहीं होगा, दादा।

दादाश्री : तो फिर वह काम का नहीं है। सभी को नक्की करना चाहिए।

'हम चार शिफ्ट चलाएँगे,' दौ सो वर्ष के आयुष्य का एक्स्टेन्शन करवा देगा वो?

प्रश्नकर्ता : वह हो ही नहीं सकता न!

दादाश्री : तो यह सब ध्यान में रहना चाहिए और कमाने के बाद फिर नुकसान नहीं होनेवाला हो तो कमाया हुआ काम का। यह तो फिर से नुकसान होगा। फिर से जोखिमदारी तो खड़ी ही रही! नुकसान होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : उस घड़ी क्या सभी को मिलकर रोने बैठना चाहिए? पूरे दिन *कढ़ापा-अजंपा,* न जाने कहाँ जाना है! किसलिए करते हैं? जैसे हज़ार-दो हज़ार साल की आयु का एक्स्टेन्शन करवाकर नहीं लाया हो? वहाँ एक्स्टेन्शन कर देते हैं न?

प्रश्नकर्ता : कोई नहीं करके देता।

दादाश्री : तो फिर किसलिए? क्यों? हाँ, व्यापार करना चाहिए। व्यापार करें, लेकिन तरीके से और गुज़ारे जितना ही। गुज़ारा यानी आराम से खाकर, आधा घंटा आराम करके फिर काम पर जाना चाहिए। ऐसे ही भागदौड़, भागदौड़, भागदौड़ करने की क्या ज़रूरत है? जैसे दो हज़ार साल की आयु अधिक लिखवाकर नहीं लाया हो? और आत्मा के लिए भी करना चाहिए न? आत्मा के लिए तो पहले करना चाहिए। आपने पिछले जन्म में आत्मा के लिए किया था इसलिए अभी यह सुख और शांति है, नहीं तो मज़दूरी कर-करके मर जाते। पिछले जन्म में आत्मा का किया था, उसका यह फल है और अब वापस नये सिरे से करोगे, तो बाद में उसका फल मिलेगा।

समता का एडजस्टमेन्ट, 'अनामत पूँजी'

प्रश्नकर्ता : कुछ लक्ष्य पकड़े नहीं रखते जबकि कुछ चीज़ें तो, हम सोचें कि बेचने पर पाँच रुपये फायदा मिलेगा तो वहीं पर नुकसान होता है, तो फिर वहीं पर ध्यान रहा करता है।

दादाश्री : उस नुकसान को तो हमें वहीं के वहीं जमा कर देना कि नुकसान के खाते में जमा। फिर बही में जमा-उधार कर दिया तो बही बराबर हो गई। ऐसा है, कि पहले के सभी अभिप्राय बन गए हैं कि 'ऐसे फायदा मिलेगा, वैसे फायदा मिलेगा' और वहीं पर नुकसान हो जाता है। इसलिए आपको 'व्यवस्थित' है ऐसा कहना पड़ेगा। अभी और भी कोई नुकसान होनेवाला होगा

तो अगर 'व्यवस्थित' में होगा तो नुकसान होगा और यदि फायदा होना होगा तो वह भी 'व्यवस्थित' में होगा तो आएगा। यानी यह फायदा-और नुकसान अपने हाथ में नहीं हैं। हम मना करेंगे फिर भी वह फायदा होता ही रहेगा। हम कहें कि नहीं, अब तो मैं इस फायदे से अघा गया हूँ, तो वह भी नहीं चलेगा। यानी कि हमारे मना करने पर भी फायदे का दबाव रहेगा, फायदे के लिए भी दबाव और नुकसान के लिए भी दबाव! इसलिए फायदा-नुकसान का हिसाब ही मत निकालना।

कोई सेठ मुझ पर दबाव डालता रहे कि, 'नहीं, आपको तो प्लेन से कलकत्ता आना ही पड़ेगा।' मैं 'नहीं-नहीं' कहूँ तो भी दबाव डालते ही रहते हैं, यानी कोई भी चीज़ छोड़ेगी नहीं न! इसलिए उसका हिसाब ही मत निकालना, बढ़ौतरी और कमी का हिसाब ही मत निकालना। जब जिस दिन नुकसान हो न, उस दिन आप पाँच सौ रुपये 'अनामत' (रिज़र्व निधि) के नाम पर जमा कर देना। ताकि अपने पास पूँजी, 'अनामत' पूँजी रहे। क्योंकि ये बहीखाते क्या हमेशा के हैं? दो-चार या आठ वर्षों के बाद फाड़ नहीं देते? यदि सही होते तो कोई फाड़ता? ये तो सब मन को मनाने के साधन हैं। तो जिस दिन डेढ़ सौ का नुकसान हो जाए न, तब आप पाँच सौ रुपये अनामत खाते में जमा कर देना। यानी साढ़े तीन सौ की पूँजी आपके पास रही, मतलब डेढ़ सौ के नुकसान के बदले साढ़े तीन सौ की पूँजी आपको दिखेगी। ऐसा है यह जगत् सारा। गप्प गुणा गप्प एक सौ चवालीस है, बारह गुणा बारह एक सौ चवालीस नहीं है यह। बारह गुणा बारह एक सौ चवालीस होता तो वह एक्ज़ेक्ट सिद्धांत कहलाता। संसार यानी गप्प गुणा गप एक सौ चौवालीस और मोक्ष यानी बारह गुणा बारह एक सौ चौवालीस।

आपकी लाइन तो अच्छी है, इसमें बहुत फायदा-नुकसान होने की गुंजाइश ही नहीं है न! यदि नुकसान होगा तो पड़ोसी को

होगा, दुकानदार को होगा या सेठ को होगा। आप तो पार्टनर नहीं हो न, तो भाग्यशाली भी नहीं होना है और अभागा भी नहीं होना है, नॉर्मल! और यदि कभी यह ज्ञान नहीं मिला होता तो मन में ऐसा लगता कि अभी तक मुझे इस जगत् में फ़तह जैसा कुछ लगता ही नहीं है, तो फिर सभी के साथ रेसकोर्स में खड़े रहना पड़ता। थोड़ा भी नहीं दौड़ सके और रेसकोर्स में खड़ा रहना पड़े, तो क्या दशा होगी अपनी? और वापस सभी दौड़नेवाले घोड़ों की उपाधि भी हमें ही करनी पड़ेगी।

यानी आपको समझ में आया न? कि यह जगत् एक्ज़ेक्ट नहीं है। बारह गुणा बारह एक सौ चवालीस नहीं है, गप्प गुणा गप्प एक सौ चवालीस है। बारह गुणा बारह एक सौ चवालीस होता तो भगवान का सिद्धांत कहलाता, लेकिन यह जगत् ऐसा नहीं है। मुझे व्यापार में नुकसान हो जाए तो मैं कह देता था कि बीस हज़ार रुपये अनानत के नाम जमा कर दो। फिर अनानत के नाम की पूँजी का हिसाब निकालते। अब वह पूँजी रखें कहाँ, वह तो भगवान जाने! वास्तव में तो वह पूँजी है ही कहाँ? फिर भी यदि वैसी पूँजी हो और कभी हम संभालकर रखें और कोई ले जाए तो? यानी कि कब कोई ले जाएगा उसका भी कोई ठिकाना नहीं है, किसके हाथ में क्या स्पर्श होगा उसका भी ठिकाना नहीं है। मेरी बात तुझे समझ में आती है न?

लक्ष्मी, स्पर्श के नियमाधीन

यह पूरा जगत् स्पर्श के नियम के आधार पर चलता है। ये स्पंदन हैं न, वे स्पर्श के नियमों के आधार पर चलते हैं। अभी ये ठंडी पवन आए न, फिर भी अंदर से स्पर्श ऐसा महसूस होता है जैसे कि यहाँ जल गए हों, ऐसा लगता है। इस रुपये का स्पर्श होता है, मीठे का स्पर्श होता है, कड़वे का स्पर्श होता है, क्या उस तरह के स्पर्श नहीं होते? यानी जिसका स्पर्श होना होगा, वह होगा। इन सिर के बालों के लिए तू चिंता नहीं करता

कि 'नाई नहीं मिला तो क्या करूँगा? नाई हड़ताल पर चले गए तो क्या करूँगा?'

जहाँ अभिप्राय, वहीं उपाधि

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन ऐसा कुछ बातों की तरफ तो दुर्लक्ष रहता ही है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा है कि जिसका आग्रह नहीं किया उसका कोई विचार नहीं आता और जिसके आग्रह किए हैं, जिसके अभिप्राय बाँधे हैं उसी के विचार आते हैं। इन बालों से संबंधित तुझे कोई अभिप्राय नहीं है, इसलिए ये बाल बढ़े फिर भी तुझे कुछ नहीं होता और घटें तो भी कुछ नहीं होता, यानी उनका विचार ही नहीं आता। कुछ लोगों को तो बाल के बहुत विचार आते हैं। इन स्त्रियों को क्या नाई से संबंधित विचार आते होंगे? उन्हें बाल कटवाने की ज़रूरत ही नहीं है न? यानी उस तरफ के विचार ही नहीं आते। नाई जीए या मरे लेकिन उससे संबंधित विचार ही नहीं आते, ऐसा अभिप्राय ही नहीं है न! यानी जिस तरह के अभिप्राय हमें अधिक हैं, वे ही कचोटते रहते हैं।

सही या गलत, उसका थर्मामीटर क्या?

प्रश्नकर्ता : हम जो व्यापार करते हैं, उसमें सही-गलत भी करना पड़ता है, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपको जितना समझ में आता है, सही और गलत, उतना ही न? या सबकुछ गलत है, ऐसा आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ तो गलत होता ही नहीं न!

दादाश्री : आपको समझ में आए उतना आप करो। छोटा बच्चा अपने अनुसार करता है और बड़ा अपने अनुसार करता है, हर किसी को जितना समझ में आता है, वह उतना ही सही और

गलत समझता है। छोटे बच्चे को हीरा दें तो हीरा लेकर बाहर खेलने चला जाएगा और उसके बदले कोई बिस्किट दे तो ले लेगा, क्योंकि उसे समझ नहीं है न! आपको यह सही-गलत की समझ कहाँ से आई?

प्रश्नकर्ता : दुनियादारी के तौर जो कहते हैं न, या फिर हमें ऐसा लगे कि यह गलत है। जैसे किसी को गलत बोलकर माल बेचा तो वह सब गलत कहलाएगा न?

दादाश्री : उससे तो हमें दुःख होगा उस घड़ी हमें अंदर खराब लगेगा, खुद को समझ में आता है कि यह गलत हो रहा है और सुख होगा तो खुद को समझ में आएगा कि यह अच्छा ही हो रहा है। आप दान देते हो तो आपको अंदर सुख होता है। अपने खुद के रुपये देते हो फिर भी सुख महसूस होता है, क्योंकि अच्छा काम किया। अच्छा काम करने से सुख होता है और जब खराब काम करें, उस घड़ी दुःख होता है। उस पर से हम पहचान सकते हैं कि क्या सही और क्या गलत!

'गलत' बंद करके तो देखो

प्रश्नकर्ता : अब गलत बंद नहीं हो पाता, उसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह गलत को बंद करना आना चाहिए न! तो वह गलत करना सीखे कहाँ से? किसीने सिखाया नहीं?

प्रश्नकर्ता : दुनियादारी सिखाती है कि, 'सही बोलो, गलत करो,' पैसा कमाने के लिए सिखाते हैं न!

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह हमें सीखना हो तो सीखेंगे, नहीं सीखना हो तो नहीं सीखेंगे।

प्रश्नकर्ता : अगर बिज़नेस में गलत कर रहे हैं, तो उससे दूर रहने का क्या रास्ता है?

दादाश्री : लेकिन गलत करते ही क्यों हो? वह सीखे ही कहाँ से? कोई अच्छा सिखा रहा हो वहाँ से अच्छा सीखकर आओ। यह गलत करने का किसी से सीखे हो, इसलिए तो गलत करना आता है। नहीं तो गलत करना आएगा ही कैसे? अब गलत सीखना बंद कर दो और अब गलत काम के सभी कागज़ जला डालो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर व्यापार नहीं चलेगा, व्यापार ऐसा है कि गलत तो करना ही पड़ता है।

दादाश्री : व्यापार नहीं चलेगा तो आपको क्या नुकसान है?

प्रश्नकर्ता : व्यापार नहीं चलेगा तो पैसा नहीं मिलेगा और हमें दुनिया में रहना है।

दादाश्री : आप ऐसा कैसे जानते हो कि गलत नहीं करोगे तो व्यापार नहीं चलेगा? उसका सारा फोरकास्ट है क्या आपके पास? बगैर फोरकास्ट के किस तरह आप कह सकते हो कि आपका नहीं चलेगा? यानी थोड़े दिनों के लिए यह जो गलत कर रहे हो, उससे उल्टा तो करो। करके तो देखो, तो पता चलेगा कि व्यापार पर क्या असर होता है! कोई ग्राहक आए और वह पूछे, 'इसकी क्या क़ीमत है?' तब कहो, 'ढाई रुपये।' फिर वह कहेगा कि, 'साहब, इसकी सही क़ीमत कितनी है?' तब आप सही कहना कि, 'बज़ार में यह लेने जाओ तो इसकी सही क़ीमत पौने दो रुपये हैं।' ऐसा आप एक बार कहकर तो देखो, फिर क्या होता है वह देखो।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अपने पास से कोई माल लेगा ही नहीं।

दादाश्री : वह लेगा या नहीं लेगा, आपको उसका कैसा पता चला? आपको फोरकास्ट हुआ था? जैसे भविष्य का सबकुछ दिख रहा हो, ऐसा करते हैं न लोग? वह नहीं लेगा तो दूसरा

ग्राहक ले जाएगा, नहीं तो तीसरा! कोई तो लेनेवाला मिलेगा न?

फायदा नहीं, लेकिन यह तो जोखिम मोल लिया

व्यापार में आपको प्रयत्न करते रहना है, 'व्यवस्थित' अपने आप सब जमाता रहेगा। वह भी आपको सिर्फ प्रयत्न ही करते रहना है, उसमें आलस मत करना। भगवान ने कहा है कि सबकुछ 'व्यवस्थित' ही है। अगर फायदे में पचास हज़ार या लाख आनेवाले हैं, तो चालाकी करने से एक आना भी बढ़ेगा नहीं और चालाकी से अगले जन्म के नये हिसाब बाँधोगे, वह अलग!

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यापार में चालाकी किए बिना तो व्यापार चलता ही नहीं न?

दादाश्री : भगवान ने क्या कहा है कि, ''यह सब, जितना 'व्यवस्थित' में है उतना ही तुझे मिलेगा और चालाकी से कर्म बँधेंगे और पैसा एक भी नहीं बढ़ेगा!'' एक व्यक्ति बिना चालाकी से व्यापार करे और वही व्यक्ति दूसरे साल चालाकी से व्यापार करे, लेकिन फायदा इतना ही रहेगा और चालाकी करने से कर्म बँधेंगे, वह अलग। इसलिए ऐसी चालाकी मत करना। चालाकी से कोई फायदा नहीं है जबकि नुकसान बेहद है! चालाकी बेकार जाती है और अलगे जन्म की जोखिमदारी मोल ले लेता है। भगवान ने चालाकी करने को मना किया है। अभी तो कोई चालाकी करता ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : सभी करते हैं, दादा।

दादाश्री : ऐसा! क्या बात कर रहे हो? लेकिन जान-बूझकर चालाकी मत करना। चालाकी की बात तुझे समझ में आई न?

प्रश्नकर्ता : लोभ की गाँठ है, उसकी वजह से चालाकी होती है, ऐसा?

दादाश्री : लोभ की गाँठ तो लोगों में होती ही है, लेकिन

चालाकी शायद न भी हो। चालाकी तो इस काल में दूसरों का देखकर सीख गए हैं। चालाकी संक्रामक रोग है। दूसरों को चालाकी करते देखे तो खुद भी करने लगता है। आपको चालाकी करनी पड़ती है क्या?

प्रश्नकर्ता : मुझे उसकी ज़रूरत नहीं पड़ती। चालाकी करना और कपट, ये दोनों किस प्रकार से अलग हैं?

दादाश्री : कपट ऐसी चीज़ है न, कि उसका सामनेवाले को भी पता नहीं चलता और उसे खुद को भी पता नहीं चलता कि अंदर कपट हो रहा है, जबकि चालाकी का तो पता चल जाता है, खुद को भी पता चल जाता है और दूसरों को भी पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपने सामने कोई चालाकी करे तो बदले में हमें भी चालाकी करनी चाहिए न, अभी तो लोग ऐसा ही करते हैं।

दादाश्री : इसी प्रकार से चालाकी का रोग घुस जाता है न! जबकि, जिसे 'व्यवस्थित' का ज्ञान हाज़िर रहे, उसे धीरज रहता है। कोई आपके साथ चालाकी करने आए तो आप पिछले दरवाज़े से निकल जाना, बदले में आप चालाकी मत करना।

हिसाब से बटवारा, उसमें दखलंदाज़ी क्या?

इंसान को कमाने की बहुत जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। कमाई करने में आलस रखना चाहिए। जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि १९७८ में कमाने में बहुत जल्दबाज़ी करे तो १९८८ में अपने पास जो धन आना होता है, वह अभी १९७८ में आ जाएगा, उद्दीरणा हो जाएगी। फिर १९८८ में क्या करेंगे? इसलिए बहुत धन कमाने की खटपट नहीं करनी चाहिए। हमें व्यापार निश्चिंत भाव से शांत रूप से करना चाहिए। इस काल में जितनी नीतिमत्ता रखी

जा सके, भाव से उतना करते रहना। हाय-हाय तो कौन करता है? कि जिसे अनाज या किसी चीज़ की कमी पड़ रही हो, वह हाय-हाय करता है। इस तरह से अनाज कम पड़े, वैसा दिन तो आपका नहीं आएगा न! कपड़ों की कमी पड़ जाए, क्या ऐसे दिन आते हैं?

व्यापार, न्याय-नीति से होना चाहिए

आपको व्यापार करना हो तो अब निर्भयता से करते रहना, कोई भय मत रखना और व्यापार न्यायसहित करना। जितना हो सके जितना पॉसिबल हो, उतना न्यायपूर्वक करना। नीति की कक्षा में रहकर जितना पॉसिबल हो सके, उतना करना, जो इमपॉसिबल हो वह मत करना।

प्रश्नकर्ता : नीति की कक्षा किसे कहेंगे?

दादाश्री : नीति की कक्षा का मतलब आपको समझाऊँ। यहाँ मुंबई के एक व्यापारी थे, जब गेहूँ के बहुत भाव बढ़ जाते थे न, तब वे व्यापारी एक वेगन इंदौरी गेहूँ मँगवाते और एक वेगन रेती मँगवाते थे। दोनों इकट्‌ठा करके फिर बोरी में फिर से भर देते थे। बोलो, अब वह क्या नीति कहलाएगी?

प्रश्नकर्ता : लेकिन नीति-अनीति के भेद तो बहुत सूक्ष्म होते हैं। उनका पता ही नहीं चलता।

दादाश्री : बाकी सभी चीज़ों में हमें अनीति देखने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन इंसानों के खाने की जो चीज़ें होती हैं, इंसानों के शरीर में जानेवाली जो चीज़ें होती है, भोजन या दवाई, उसके लिए तो नियमों का बहुत ही ध्यान रखना चाहिए। ऐसा है न, कि आप धोखे से चालीस रतल के बदले सैंतीस रतल दोगे, लेकिन शुद्ध दोगे तो आप गुनहगार नहीं हो या फिर कम गुनहगार हो, और यदि कोई चालीस रतल पूरा देता है, लेकिन

मिलावट करके देता है, तो वहाँ गुनाह है। मानवजाति की खाने की चीज़ों में मिलावट नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मैं तो व्यक्तिगत तौर पर मानता हूँ कि जिससे अपने आत्मा को दु:ख पहुँचे, वह कार्य नहीं करना चाहिए।

दादाश्री : जहाँ आपके आत्मा को दु:ख पहुँचता है, वह कार्य मत करना। वर्ना मनुष्य के शरीर को दु:ख होता है, मिलावट करते हैं, दूध में मिलावट, तेल में मिलावट, घी में मिलावट, अभी ऐसी किस-किस तरह की मिलावट करने लगे हैं। वह सब नहीं होना चाहिए।

[२०]

नियम से अनीति

नियमपूर्वक अनीति, लेकिन प्राप्त करवाए मोक्ष

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में से १९३६ नंबर का सूत्र है, 'व्यवहार मार्गवाले से हम कहते हैं कि संपूर्ण नीति का पालन कर, वह नहीं हो सके तो नियमपूर्वक नीति का पालन कर, वह नहीं हो सके और अनीति करे, तब भी नियम में रहकर कर। नियम ही तुझे आगे ले जाएगा।' वह ज़रा आप से समझना है।

दादाश्री : इस पुस्तक में, आप्तसूत्र में सभी वाक्य लिखे हुए हैं न, वे त्रिकाल सत्यवाले हैं। इस वाक्य में मैं क्या कह रहा हूँ कि संपूर्ण नीति से चलना। फिर दूसरा वाक्य क्या कहा है कि वह नहीं हो सके तो थोड़ी बहुत लेकिन नीति का पालन करना और नीति का पालन नहीं हो सके तो अनीति का पालन मत करना। अनीति का पालन करे तो नियम से अनीति का पालन करना। यानी सभी छूट दी है न? अनीति का पालन करने की छूट इस वर्ल्ड में सिर्फ मैंने ही दी है! यानी अनीति का पालन करना हो तो नियमपूर्वक करना, ऐसा कहा है। आपको समझ में नहीं आया?

इसमें ऐसा कहते हैं कि यदि हो सके तो पूर्णरूप से नीति का पालन करना और यदि पालन नहीं हो सके तो नक्की कर कि दिन में मुझे तीन नीतियों का तो पालन करना ही है। वर्ना अगर नियम में रहकर अनीति करेगा तो वह भी नीति है। जो

मनुष्य नियम में रहकर अनीति करता है उसे मैं नीति कहता हूँ। भगवान के प्रतिनिधि के रूप में, वीतराग के प्रतिनिधि के रूप में मैं कहता हूँ कि अनीति भी नियम में रहकर कर। वह नियम ही तुझे मोक्ष में ले जाएगा। अनीति करे या नीति करे उससे मुझे शिकायत नहीं है, लेकिन नियम में रहकर कर। पूरे जगत् ने जहाँ पर तेल निकाल दिया है, वहाँ पर हमने कहा है कि इसमें आपत्ति नहीं है, तू तेरे नियम में रहकर कर।

अब अभी कलियुग है, तो कहेंगे कि, 'साहब, मुझसे यह नहीं हो पाता, नीति पालन नहीं कर पाता।' तब मैं कहता हूँ कि, 'तो नियमपूर्वक पालन कर, दिन में दो या तीन बार नीति का पालन कर और बाकी अनीति कर। तू पक्का कर कि मुझे रोज़ दो या तीन नीतियों का पालन करना है। जा, तेरे मोक्ष की गारन्टी हम लिखकर देते हैं।'

हाँ, भला नीति का पालन नहीं किया जा सके तब क्या अनीति का ही पालन करते रहें? नहीं। वह तो बिल्कुल उल्टा चला। इसलिए कहा है कि अनीति का पालन भी यदि तू नियम से करेगा तो मोक्ष में जाएगा। पूरा जगत् कहता है कि, 'नीति का पालन करेगा तो मोक्ष में जाएगा।' जबकि मैं कहता हूँ कि, 'अनीति का पालन भी यदि तू नियम से करेगा तो मोक्ष में जाएगा।' अब ऐसी विचित्र बात कोई करेगा?

प्रश्नकर्ता : दादा, नियम में रहकर अनीति का पालन किस तरह करें? उसका उदाहरण देकर समझाइए न!

दादाश्री : हाँ, वह आपको समझाता हूँ। एक सेठ की कपड़े की दुकान थी, वह कपड़ा ऐसे खींच-खींचकर देते थे। तब मैंने कहा कि, 'ऐसा क्यों करते हो?' तब कहते है कि, 'चालीस मीटर में से इतना बचता है।' तब मैंने कहा कि, 'फिर इसका दंड क्या मिलेगा, वह जानते हो? अधोगति में जाना पड़ेगा! चालीस मीटर का भाव लिया तो हमें चालीस मीटर दे देना चाहिए, उसमें खींचने

की ज़रूरत नहीं है।' तब कहते हैं, 'तब तो हमें ठीक से फायदा नहीं होता है।' तब मैंने कहा कि, 'ज़रा भाव ज़्यादा रखो।' तब वे कहते हैं कि, 'ग्राहक दूसरी जगह पर चला जाता है, इसलिए अधिक भाव लेना हो तो लिया नहीं जा सकता न!'

हम इसे अनीति कहते हैं। अब काला बाज़ार करना है, लेकिन जितनी कमी पड़ रही हो, दिन में उतना ही दस-पंद्रह रुपये ज़्यादा ले ले। दूसरे पच्चीस अधिक आएँ फिर भी नहीं ले तो वह अनीति की, लेकिन नियम से की, ऐसा कहा जाएगा। इसीलिए कहा है न कि अनीति करनी पड़े फिर भी नियम से करना।

प्रश्नकर्ता : तो इसका ऐसा अर्थ हुआ कि तू पैसा अधिक ले, लेकिन माल कम मत देना?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं कह रहा हूँ। हमने तो ऐसा कहा है कि अनीति कर लेकिन नियम से करना। एक नियम रख कि भाई, मुझे इतनी ही अनीति करनी है, इससे अधिक नहीं। दुकान से रोज़ दस रुपये अधिक लेने हैं, उससे अधिक अगर पाँच सौ रुपये भी आएँ, तो भी मुझे नहीं लेने।

ऐसा मानो न, कोई एक इन्कम टैक्स ऑफिसर हो, उसकी वाइफ रोज़ लड़ती रहती हो कि, 'इन सभी ने रिश्वत ले लेकर बंगले बनवाए हैं और आप रिश्वत नहीं लेते हो। आप ऐसे के ऐसे ही रहे।' तो कई बार तो बच्चे के स्कूल की फीस भी उधार पर लानी पड़ती है। उसके मन में इच्छा कि दो सौ-तीन सौ रुपये कम हैं, उतने मिल जाएँ तो मुझे शांति रहेगी। लेकिन ऐसे रिश्वत नहीं ले पाता तो फिर क्या हो? और वह भी मन में चुभता है न! तो हम उसे कहते हैं कि, 'रिश्वत लेनी हो तो तू नक्की करना कि मुझे महीने में पाँच सौ रुपये से अधिक नहीं लेनी है। फिर दस हज़ार रुपये आएँ तो भी मुझे नहीं चाहिए।' तुझे महीने में जितने कम पड़ते हैं उतने तू लेने का नक्की कर।

तू यह अनीति कर रहा है, लेकिन नियम से कर रहा है। नियम में रहकर अनीति की जा सकती है और नियम में रहकर अनीति करे तो मुझे आपत्ति नहीं है। यह नियम ही तुझे मोक्ष में ले जाएगा और इसकी जोखिमदारी तेरी नहीं है, लेकिन नियम से करेगा तो बहुत हुआ। अनीति भी नियम से करे न, तो बहुत बड़ी चीज़ है, अनीति का नियम कभी भी नहीं रह सकता। क्योंकि अनीति करने गया तो वह बढ़ता ही जाता है और वह अनीति नियम से करे तो उसका कल्याण हो जाएगा।

यह हमारा गूढ़ वाक्य है। यह वाक्य यदि समझ में आ जाए तो काम हो जाएगा न! भगवान भी खुश हो जाएँगे कि इसे दूसरे की थाली में से खाना है फिर भी, सीमा में खा रहा है! नहीं तो जब दूसरे की थाली में से खाता है, वहाँ फिर सीमा रहती ही नहीं है न!

आपकी समझ में आता है न कि अनीति का भी नियम रख। मैं क्या कहता हूँ कि, 'तुझे रिश्वत नहीं लेनी है और तुझे पाँच सौ कम पड़ रहे हैं, तो तू कब तक कुढ़ता रहेगा?' लोग दोस्तों से रुपये उधार लेते हैं, उससे अधिक जोखिम मोल लेते हैं। इसलिए मैं उसे समझाता हूँ कि, 'भाई, तू अनीति कर, लेकिन नियम से कर।' अब जो नियम से अनीति करे वह नीतिवान से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि नीतिवान के मन में तो रोग घुस जाता है कि, 'मैं कुछ हूँ,' जबकि इसके मन में रोग भी नहीं घुसता न!

ऐसा कोई सिखाएगा ही नहीं न! नियम से अनीति करना तो बहुत बड़ा कार्य है।

यदि अनीति भी नियम से है तो उसका मोक्ष होगा, लेकिन जो अनीति नहीं करता, जो बिल्कुल भी रिश्वत नहीं लेता, उसका मोक्ष कैसे हो पाएगा? क्योंकि जो रिश्वत नहीं लेता है, उसे 'मैं रिश्वत नहीं लेता' ऐसा कैफ़ चढ़ जाता है। भगवान भी उसे निकाल

देंगे कि, 'चल जा, तेरा चेहरा खराब दिख रहा है, इसके बजाय वह जो रिश्वत के पाँच सौ रुपये लेता है, उसका चेहरा अच्छा दिख रहा है।' इसका मतलब ऐसा नहीं है कि हम रिश्वत लेने को कह रहे हैं। लेकिन यदि तुझे अनीति करनी ही है तो तू नियम से करना। नियम रख कि 'भाई, मुझे रिश्वत के पाँच सौ रुपये ही लेने हैं। पाँच सौ रुपये से ज़्यादा कुछ भी देगा, अरे पाँच हज़ार रुपये देगा, फिर भी सभी वापस कर देने हैं। जितने मुझे घरखर्च में कम पड़ते हैं उतने, पाँच सौ रुपये ही रिश्वत में लेने हैं।' बाकी, ऐसी जोखिमदारी तो सिर्फ हम ही लेते हैं। क्योंकि ऐसे काल में लोग रिश्वत नहीं लेंगे, तो क्या करेंगे बेचारे? तेल, घी के भाव कितने बढ़ गए हैं, चीनी के भाव कितने ज़्यादा हैं! तो क्या बच्चे की फीस के पैसे दिए बगैर चलेगा? देखो न, तेल के भाव सत्रह रुपये जितना कहते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : व्यापारी काला बाज़ार करते हैं तो उनका चलेगा जबकि नौकरों का बचाव करनेवाला कोई रहा ही नहीं? इसलिए हम तो कहते हैं कि रिश्वत भी नियमपूर्वक लेना, तो वह नियम तुझे मोक्ष में ले जाएगा। रिश्वत बाधक नहीं है, अनियम बाधक है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अनीति करना तो गलत ही कहलाएगा न?

दादाश्री : वैसे तो इसे गलत ही कहते हैं न! लेकिन भगवान के घर पर अलग ही प्रकार की परिभाषा है। भगवान के वहाँ पर अनीति या नीति को लेकर कोई झगड़ा है ही नहीं। वहाँ पर तो अहंकार पर आपत्ति है। नीति पालनेवाले को अहंकार बहुत होता है, उसे तो बिना दारू के ही नशा चढ़ा रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमेशा ऐसा ही नहीं होता न?

दादाश्री : नहीं। क्योंकि उसके बिना नीति का पालन किया ही नहीं जा सकता न! कैफ़ में ही नीति का पालन करता है और उसका कैफ़ निरंतर बढ़ता ही जाता है! इसके बावजूद वह कैफ़ में रहकर भी, लेकिन नीति का पालन करता है, इसलिए अच्छा पुण्य बंधन होता है और अच्छी गति मिलती है। उसे अच्छे लोग, संत वगैरह मिल जाते हैं। आगे जाकर ज्ञानी भी मिल जाते हैं। अर्थात् वह गलत नहीं है। वह गलत है ऐसा मुझे कहना भी नहीं है। लेकिन भगवान के वहाँ तो अहंकार बाधक है।

अब वह, जो नियम से अनीति का पालन करता है, उसमें अहंकार नहीं होता। और पाँच हज़ार आने पर भी वह लेता नहीं है, तो वह क्या प्रामाणिकता कहलाती है? नहीं। जबकि जो नियम से रिश्वत लेता है, वह तो कोई ऐसी-वैसी प्रामाणिकता नहीं है! क्योंकि एक व्यक्ति यदि उपवास करे तब तो वह भूखा रह सकता है, लेकिन अगर उसे कहा हो कि आज तीन ही निवाले खाने हैं, चौथा निवाला नहीं खाना है। तो इंसान से ऐसा कंट्रोल रह ही नहीं सकता, खाने के बाद रुक ही नहीं सकता। अपने आप ही जब पूरा हो तभी रुकता है! यह बात आपको समझ में आती है न?

इसलिए जिसने नियमपूर्वक अनीति की उसका मोक्ष नीतिवाले से पहले होता है। क्योंकि नीतिवाले को नीति करने का कैफ़ रहता है कि 'मैंने पूरी ज़िंदगी नीति का पालन किया है' और वह तो ऐसा होता है कि भगवान की भी न सुने। जबकि जिसने अनीति की, उसका कैफ़ तो उतर ही चुका होता है न! उसे कैफ़ ही नहीं चढ़ता। क्योंकि उसने तो जो अनीति की, वही उसे अंदर कचोटती रहती है। और जो पाँच सौ रुपये लिए उसका भी उसे कैफ़ नहीं चढ़ता। कैफ़ तो नीतिवाले को चढ़ता है और उसे तो यों ही ज़रा छेड़ें न तो तुरंत पता चल जाएगा, फन उठाकर खड़ा रहेगा। क्योंकि उसके मन में ऐसा है कि, 'मैंने कुछ किया है, पूरी ज़िंदगी मैंने नीति का पालन किया है!'

प्रश्नकर्ता : अब पाँच सौ रुपये की रिश्वत लेने की छूट दी, उसके बाद जैसे-जैसे ज़रूरत बढ़ती जाए तो फिर वह रकम भी अधिक ले तो?

दादाश्री : नहीं। वह तो एक ही नियम। पाँच सौ यानी पाँच सौ ही, फिर उस नियम में ही रहना पड़ेगा।

एक शराब नहीं पीने का अहंकार करता है और एक शराब पीने का अहंकार करता है, तो मोक्ष किसका होगा? भगवान दोनों को ही निकाल देंगे! वे तो क्या कहते हैं कि, 'हमारे यहाँ तो निर्अहंकारी की ज़रूरत है।' भगवान तो क्या कहते हैं कि, 'नीति का पालन तो तुझे इसलिए करना है कि संसार में सुख मिले। वर्ना, हमें नीति-अनीति का कोई झंझट ही नहीं है। तुझ से दुःख सहन हो सके तो अनीति करना।' अनीति से दुःख ही आता है न? किसी को दुःख देने के बाद हम पर भी दुःख पड़ेगा। यह तो, तुझे सुख मिले इसलिए नीति करनी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अनीति करेगा तो उसे आदत पड़ जाएगी न?

दादाश्री : आदत पड़ जाएगी, ऐसा? नहीं। इसलिए कहा है न, कि अनीति करो लेकिन नियमपूर्वक करो। कोई भी चीज़ नियमपूर्वक की जाए और वह भी 'ज्ञानीपुरुष' की आज्ञापूर्वक हो, तब तो वह काम निकाल देगी।

प्रश्नकर्ता : उसे अनीति की आदत पड़ जाए, फिर तो वह नियम में नहीं रह पाएगा न?

दादाश्री : तो फिर उसका अर्थ ही नहीं न! और हमारी ज़िम्मेदारी भी नहीं रहेगी न! यह तो क्या कहा है कि तुझे पाँच सौ रुपये की कमी है तो तुझे रिश्वत के पाँच सौ रुपये ले लेने हैं। फिर कोई पाँच हज़ार रुपये दे फिर भी तुझे पाँच सौ से ज़्यादा रकम नहीं लेनी है। इस तरह जो नियम में ही रहे, उसकी

मुक्ति होगी, उसका निबेड़ा आएगा।

प्रश्नकर्ता : अगर कोई नियम से रिश्वत ले तो उसे लोभ ही नहीं होगा न फिर?

दादाश्री : अरे! यह नियम तो उसे ठेठ मोक्ष तक ले जाएगा और लोभ तो एकदम से खत्म हो जाएगा। और वह हो सकता है ऐसी स्थिति है। वह किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : यदि कोई रिश्वत लेता ही नहीं, उसका क्या होगा?

दादाश्री : वह भटक मरेगा। रिश्वत मिल रही हो और नहीं ले तो उसका अहंकार बढ़ता जाएगा। और वह रिश्वत लेता है लेकिन नियम से यानी की जितने घरखर्च में कम पड़ें, उतने ही रुपये लेता है। अगर उसे फिर कोई पाँच हज़ार रुपये देने आए फिर भी वह नहीं लेता, पाँच सौ से अधिक एक भी पैसा नहीं। ऐसे नियम का पालन करे तो वह मोक्ष में जाएगा।

अभी मनुष्य किस तरह इन सब मुश्किलों में दिन बिता रहा है? और फिर जितने रुपये की कमी पड़ रही हो, वे नहीं मिलेंगे तो क्या होगा? उलझन खड़ी हो जाएगी कि रुपये कम पड़ रहे है, वे कहाँ से लाऊँ? यह तो जितनी कमी थी वह सब आ गए, उसका भी पज़ल सोल्व हो गया न! वर्ना उसमें से इंसान उल्टा रास्ता अपनाए और फिर उल्टे रास्ते पर चला जाए तो फिर वह पूरी तरह से रिश्वत लेने लगेगा। इसके बजाय यह बीच का मार्ग निकाला है और उसने अनीति की फिर भी नीति कहलाएगी। उसे भी सरलता हो गई और नीति कहलाएगी और उसका घर भी चलेगा।

हमने तो क्या कहा है कि तू झूठ बोलना ही मत और यदि तुझे झूठ बोलना ही हो तो नियम से बोलना कि आज मुझे पाँच ही झूठ बोलने हैं, छठ्ठी बार नहीं, तो मोक्ष में जाएगा।

फिर जब वह पाँच झूठ बोल चुका होगा उसके बाद यदि उसकी बहन ने कोई चारित्रसंबंधी दोष किया हो, और तब कोई पूछे कि, 'भाई, आपकी बहन के बारे में यह बात सच है?' तब उस व्यक्ति के ये पाँच झूठ तो हो चुके, अब छट्ठा झूठ तो बोला नहीं जा सकता, इसलिए उसे 'सच है,' ऐसा कहना ही पड़ेगा। यदि पाँच मौके खत्म नहीं हुए होते तो पाँचवा यहाँ पर काम में ले सकता था, लेकिन पाँच झूठ बोलने के मौके पूरे हो गए! इसे नियम से अनीति कहा है।

कोई चोर चोरी करता है, लेकिन यदि नियम से चोरी करे तो वह नियम उसे मोक्ष में ले जाएगा। नियम से चोरी करना यानी क्या? कि उसे महीने में दो चोरियाँ करने को कहा है। अब पहली बार हाथ मारा तो उसे दस रुपये हाथ में आए, फिर से हाथ मारा तो चालीस रुपये मिले। यानी चालीस और दस, इस तरह महीने में पचास रुपये मिले। अब यदि पहला हाथ नहीं मारा होता तो उसे दूसरे तीन सौ मिल सकते थे, लेकिन दो बार हो चुका इसलिए अब नहीं लिए जा सकते। उसने किसी की जेब में हाथ डालकर देख लिया कि ये तो तीन सौ रुपये हैं, लेकिन तुरंत उसे हुआ कि यह तो गलत किया, मुझसे दो बार तो चोरी हो चुकी है, तो वह छोड़ देता है। इसे नियम से अनीति कहा गया है।

मूलतः वास्तव में मैं क्या कहना चाहता हूँ अगर उसे समझे न तो कल्याण हो जाए। हर एक वाक्य में मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह पूरी बात ही यदि समझ में आ जाए तो कल्याण हो जाए। लेकिन यदि वह उस बात को अपनी भाषा में ले जाए तो क्या हो सकता है? हर एक की भाषा स्वतंत्र ही होती है, वह खुद की भाषा में ले जाकर फिट कर देगा, लेकिन यह उसकी समझ में नहीं आती कि 'नियम से अनीति कर!'

प्रश्नकर्ता : दादा, मैंने भी जब पहली बार यह पढ़ा तब

मैं एकदम से सोच में पड़ गया, कि यह क्या? दादा क्या कहना चाहते हैं? फिर मुझे लगा कि यह तो बहुत ग़ज़ब का वाक्य है।

दादाश्री : हाँ, अक्रम विज्ञान यानी क्या कि नेगेटिव पॉलिसी ही नहीं कि 'आप क्यों चोरियाँ करते हो और आप क्यों झूठ बोलते हो? क्यों खराब व्यवहार करते हो?' ऐसी-वैसी नेगेटिव पॉलिसी ही नहीं है।

[२१]

कला, जान-बूझकर ठगे जाने की

...वहाँ पर ज्ञानी जान-बूझकर ठगे जाते हैं

लोग बुद्धि का दुरुपयोग करते होंगे या नहीं करते? सभी दुकानदारों ने यही धंधा लगाया है न! ऐसे, हमारे जैसे कुछ लेने जाते हैं तो 'आओ साहब, आओ साहब' करके दो-तीन रुपये अधिक ले लेते हैं, और हम दे भी देते हैं। हम समझ जाते हैं कि ये लालची हैं। एक बार एक दुकान में गए हों, तो हम वहाँ से जो खरीदने गए हों वह खरीदे बगैर नहीं निकलते। नहीं तो 'आओ साहब, आओ साहब' की उसकी मेहनत बेकार जाएगी। उसकी मेहनत बेकार जाए, हम ऐसा नहीं करते। भले ही, हम उसके वहाँ से ठगे जाए। हम समझते ज़रूर हैं कि यह क्वॉलिटी ऐसी है, हम तुरंत पहचान जाते हैं। अब तो हमें दुकानों से कुछ लेने का रहा ही नहीं न! दुकान पर जाना भी नहीं और लाना भी नहीं, कुछ रहा ही नहीं न!

जो किसी भी जगह न ठगे जाएँ, वे ज्ञानी। कहाँ ठगे जाते हैं? जान-बूझकर! ज्ञानी समझते हैं कि यह भला आदमी है, यह बेचारा मुश्किल में है, तो इसे 'लेट गो' करो।

ठगे गए, लेकिन कषाय नहीं हों इसलिए

मेरे पार्टनर ने मुझसे एक बार कहा कि, 'लोग आपके भोलेपन का लाभ उठा जाते हैं।' तब मैंने कहा कि, 'अगर आप मुझे भोला कह रहे हो, तो आप ही भोले हो। मैं जान-बूझकर ठगा जाता

हूँ।' तब उन्होंने कहा कि, 'अब मैं फिर से ऐसा नहीं बोलूँगा।' मैं जान जाता हूँ कि इस बेचारे की मति ऐसी है, इसकी दानत ऐसी है। इसलिए इसे जाने दो, लेट गो करो न! हम तो कषाय से मुक्त होने आए हैं। कषाय नहीं हों इसलिए हम ठगे जाते हैं। यानी फिर दोबारा भी ठगे जाते हैं। जान-बूझकर ठगे जाने में मज़ा है या नहीं? जान-बूझकर ठगे जानेवाले कम होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : होते ही नहीं।

दादाश्री : बचपन से मेरा 'प्रिन्सिपल' यह था कि जान-बूझकर ठगे जाना है। वर्ना, मुझे मूर्ख बना जाए और ठग ले उस बात में माल नहीं है। ऐसे जान-बूझकर ठगे जाने से क्या हुआ? ब्रेन टॉप पर पहुँच गया, जैसा बड़े-बड़े जजों का ब्रेन काम नहीं करे, वैसा काम करने लगा। जो जज होते हैं, वे भी जान-बूझकर ठगे गए ही होते हैं। और जान-बूझकर ठगे जाने से ब्रेन टॉप पर पहुँच जाता है। लेकिन देखना, तू ऐसा प्रयोग मत करना। तूने तो ज्ञान लिया है न? वह तो यदि किसी ने ज्ञान नहीं लिया हो तब ऐसा प्रयोग करना चाहिए।

जान-बूझकर ठगे जाना है, लेकिन किसके साथ ऐसे जान-बूझकर ठगे जाना चाहिए? जिसके साथ रोज़ का ही व्यवहार हो, उसके साथ। और बाहर भी किसी से ठगे जाना, लेकिन जान-बूझकर। वह समझे कि मैंने इन्हें ठग दिया और हम समझें कि यह मूर्ख बना।

खरीददारी, लेकिन ठगे जाकर

प्रश्नकर्ता : आप जान-बूझकर ठगे गए हों, ऐसा कोई उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : अरे, बहुत सारी बातों में हम जान-बूझकर ठगे गए है। इन व्यापारियों ने भी मुझे ठगा है! 'आओ आओ, पधारिए पधारिए,' करके ठग लेते हैं। मैं कहूँ कि भाई एक धोती लाओ

और एक कमीज़ का कपड़ा लाओ और एक कोट का कपड़ा लाओ। क़ीमत-वीमत नहीं पूछता। मैं जानता हूँ कि अपनी जान-पहचान के हैं सभी। अब दूसरा कोई व्यापारी वापस मुझे मिले तो कहेगा, 'उसकी क़ीमत देखाओ।' तब वह मुझे बता देता है कि, 'इतनी क़ीमत आप से ज़्यादा ली है।' तब मैं कहता हूँ कि, 'यह तो हम जान-बूझकर ठगे जाते हैं' मैं जानता हूँ कि यदि वह अधिक नहीं लेगा तो उसके मन में ठंडक नहीं होगी। इतने अच्छे ग्राहक आए और वे यदि ज़्यादा नहीं देंगे तो और कौन सा ग्राहक देगा? ऐसे खानदानी ग्राहक आएँगे और वे नहीं देंगे तो दूसरे किच-किच करनेवाले तो क्या देंगे? हम कभी भी किच-किच नहीं करते। अगर हमारे चरण वहाँ पड़ें तो उस बेचारे को संतोष होना चाहिए। हमारे चरण पड़ें तो उसे संतोष होना ही चाहिए। और यदि हमारे चरण पड़ें और उसका मुँह बिगड़े कि 'कहाँ से ऐसा ग्राहक आया।' क्या कहेगा? कि, 'धोती ले गए और ऊपर से दो रुपये काटकर दिए।' अरे, पूरे रुपये दिए और ऊपर से ऐसे मुँह बिगाड़ रहा है? लेकिन देखो ऐसे किच-किच करके दो रुपये कम दिए, तो उसका मुँह बिगड़ गया न! वर्ना अठारह रुपये ज़्यादा लिए थे, वे अच्छे दिखते। यह तो सोलह ज़्यादा दे दिए और उसका अच्छा भी नहीं दिखा। एक सोने के कलश के लिए पूरा मंदिर बिगाड़ा?

हम तो इस तरह जान-बूझकर ठगे जाते हैं! यह तो छोटा उदाहरण दे रहा हूँ व्यापारियों से ठगे जाने का। लेकिन हमें सभी ठगते हैं, बूटवाला भी ठग लेता है न! इनमें एकाध-दो अच्छे भी मिले हैं कि जो बिल्कुल भी नहीं ठगते। जबकि ठगनेवाले क्या समझते हैं कि ये भोले हैं। इसीलिए कविराज ने लिखा है कि,

''मानी ने मान आपी, लोभिया थी छेतराय,
सर्व नो अहम् पोषी, वीतराग चाली जाय।'' – नवनीत

अहम् को पोषण देकर वीतराग चले जाते हैं! उस बेचारे

के अहम् को पोषण मिला और अपना छुटकारा हो गया न!! नहीं तो फिर भी, रुपये क्या ठेठ तक साथ में आएँगे? इसके बजाय यहाँ पर यों ही ठगे जाकर लोगों को ले लेने दो न! नहीं तो बाद में लोग वारिस बनेंगे, तो अभी ठगे जाने दो न! और वह जो ठगने आया है, उसे कहीं अपने से मना किया जाएगा? जो ठगने आया है, उसका मुँह क्यों दबाए?

...परिणामस्वरूप विज्ञान प्रकट हुआ

हम तो खटमल को भी खून पीने देते हैं कि यहाँ आया है तो अब खून पीकर जा। क्योंकि मेरी होटल ऐसी है कि इस होटल में किसी को दु:ख नहीं देना है। यही मेरा काम। यानी खटमल को भी भोजन करवाया है। अब भोजन नहीं करवाएँ तो उसके लिए सरकार क्या हमें कोई दंड देगी? नहीं। हमें तो आत्मा प्राप्त करना था। हमेशा चौविहार, हमेशा कंदमूल त्याग, हमेशा गरम पानी, यह सब करने में कुछ भी बाकी नहीं रखा था! और देखो तभी तो प्रकट हुआ। पूरा 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ। जो पूरी दुनिया को स्वच्छ कर दे ऐसा विज्ञान प्रकट हुआ है!

...लेकिन इसमें हेतु मोक्ष का ही

प्रश्नकर्ता : आप तो जान-बूझकर ठगे गए, लेकिन वह धोती के पैसे अधिक ले गया, उससे उसकी क्या दशा होगी? उसे लाभ है या नुकसान?

दादाश्री : उसका जो होना हो, सो हो। उसने मेरे यह सिखाने से नहीं किया। हमने तो उसकी वृत्ति को पोषण दिया है। हक़ का खाने आया तो ठीक और *अणहक्क* (बिना हक़) का खाने आया फिर भी हमने उसे थप्पड़ नहीं मारा। ले, खा भाई! और उसका उसे तो नुकसान ही होगा न! उसने तो *अणहक्क* का लिया इसलिए उसे नुकसान होगा, लेकिन हमारा मोक्ष खुल गया न! '*सर्व नो अहम् पोषी वीतराग चाली जाय*।' ऐसे अहम्

को पोषण न दें तो ये लोग हमें आगे जाने ही न दें! 'हमारा यह बाकी रह गया, हमारा यह बाकी रह गया' ऐसा कहकर रोकेंगे। आगे जाने देगा कोई? अरे, फादर-मदर भी नहीं जाने देते न! वे तो कहेंगे 'तूने मेरे लिए कुछ नहीं किया'। अरे, ऐसा बदला चाहते हो? बदला तो, अगर आसानी से मिल जाए तो अच्छी बात है, नहीं तो क्या माँ-बाप को बदला ढूँढना चाहिए? जो बदले की इच्छा रखें वे माँ-बाप कहलाते ही नहीं, वे तो किराएदार हैं! जान-बूझकर ठगे जानेवाले कम होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते।

दादाश्री : तब उन्हें मोक्ष का मार्ग भी मिल आता है न!

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले को ठगने का चान्स देते हैं, क्या वह गलत नहीं है?

दादाश्री : यह तो खुद के एडवान्समेन्ट के लिए है न! ठगने का चान्स उसके एडवान्समेन्ट के लिए है और हमें अपने एडवान्समेन्ट के लिए ठगे जाने के चान्स हैं। सामनेवाला अपनी पौद्गलिक प्रगति कर रहा है और हम आत्मा की प्रगति करें तो उसमें गलत क्या है? उसमें अगर रुकावट डालें तो गलत कहलाएगा।

हमें ठग गया लेकिन वापस उसे उससे भी बड़ा कोई मिल जाएगा, वह उसे मार-मारकर उसका कस निकाल देगा कि, 'अरे तू मुझे ठग रहा है?' ऐसा कहकर उसे मारेगा!

शुरू से मैं जान-बूझकर ठगा जाता था। इसलिए लोग मुझे क्या कहते थे? कि 'इस ठगनेवाले को आदत पड़ जाएगी, उसकी जोखिमदारी किसके सिर पर आएगी? आप इन लोगों को छोड़ देते हो इसलिए लुटेरे पैदा होते हैं।' फिर मुझे उनसे खुलासा करना ही पड़ेगा न? और खुलासा तरीके से होना चाहिए। ऐसे कहीं मार-ठोककर खुलासा दिया जाता है? फिर मैंने कहा कि, 'आपकी बात सही है कि मेरे कारण कुछ लोग लुटेरों जैसे बने हैं।' वह

भी सभी लोग नहीं, दो-पाँच लोग ही, क्योंकि उन्हें एन्करेजमेन्ट मिला न! फिर मैंने कहा कि, 'मेरी बात ज़रा स्थिरता से सुनो। जो मुझे ठग गया उसे यदि मैंने एक झापड़ मारी होती, तो हम तो दयालु इंसान, तो झापड़ कैसी मारेंगे, यह आपको समझ में आता है?' उस खुलासा माँगनेवाले से मैंने पूछा तब उसने कहा, 'कैसी मारेंगे?' तब मैंने कहा, 'धीरे से मारेंगे।' उससे और ज़्यादा एन्करेजमेन्ट मिलेगा कि 'ओहोहो, अरे बहुत हुआ तो इतनी ही मार पड़ेगी न? तो अब यही करेंगे।' यानी दयालु इंसान छोड़ दे, वही ठीक है। उसे फिर इस तरह लोगों को ठगते-ठगते दूसरा-तीसरा स्टेशन आएगा, उसमें कोई एकाध उसे ऐसा मिल जाएगा कि जो मार-मारकर उसके परखच्चे उड़ा देगा, फिर वह ज़िंदगी भर के लिए ऐसा करना भूल जाएगा, उसे ठगने की आदत पड़ गई है और वह व्यक्ति उसकी वह आदत खत्म कर देगा, अच्छी तरह से सिर फोड़ देगा। आपकी समझ में आया न? खुलासा ठीक है न? लेकिन इस ज्ञान के बाद तो हमारे वे सभी संग छूट गए हैं न! यों भी १९४६ के बाद वैराग्य आ गया था और १९५८ में ज्ञान प्रकट हुआ!

जान-बूझकर ठगे जाना, वह तो सबसे बड़ा पुण्य है! अंजाने में तो हर कोई ठगा गया है। लेकिन हमने तो पूरी ज़िंदगी यही काम किया है कि जान-बूझकर ठगे जाना! अच्छा बिज़नेस है न? ठगनेवाले मिलें तो समझना कि हम बहुत पुण्यशाली हैं, नहीं तो ठगनेवाला मिलता ही नहीं न! इस हिन्दुस्तान देश में क्या सभी लोग पापी हैं? अगर आप कहो कि मुझे आप ठगो, देखते हैं, तो इस जोखिमदारी में मैं कहाँ पड़ूँ? और जान-बूझकर ठगे जाएँ ऐसी कोई कला नहीं है! लोगों को तो पसंद नहीं है न, ऐसी बात? लोगों का नियम इसके लिए मना करता है न? इसीलिए तो ठगने की आदत डालते हैं न! टिट फोर टेट ऐसा सिखाते हैं न? लेकिन क्या हमें उसे धौल लगानी चाहिए? और मैं मारूँ तो धीरे से मारूँगा। एक जगह पर वसूली करने गया था, तब

उसके यहाँ किसी और की ज़ब्ती आई हुई थी। मैं तो थोड़ी देर बैठा, तो उसे ज़ब्ती में कुछ बीस रुपये भरने थे, उतने रुपये भी उसके पास नहीं थे, बेचारा ऐसे आँख से पानी निकालने लगा। तब मैंने कहा कि, 'ले, बीस मैं देता हूँ,' मैं वे बीस रुपये देकर आया! जो वसूली करने गया, वह कभी बीस रुपये देकर आता होगा?

...परिणामस्वरूप कौन सी बुद्धि उत्पन्न होती है?

जान-बूझकर ठगे जाने जैसा कोई परमार्थ नहीं है और पूरी ज़िंदगी मैं जान-बूझकर ही ठगा गया हूँ। लोग कहते हैं, 'उसका फल क्या?' तब मैंने कहा कि, 'जो जान-बूझकर ठगा जाए, उसे कौन सा पद मिलता है? दिल्ली में जो कोर्ट होती है न, सुप्रीम कोर्ट, उस सुप्रीम कोर्ट के जज को भी झिड़क दे, ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है।' यानी क्या? कि जज की भी भूलें निकाल सके, दिमाग़ इतना हाइक्लास पावरफुल हो जाता है। कानून में ले आए, वैसी बुद्धि उत्पन्न होती है। जो जान-बूझकर ठगे जाते हैं, जो किसी को नहीं ठगता उसका दिमाग़ बहुत हाई लेवल पर जाता है! लेकिन ऐसे जान-बूझकर कौन ठगा जाता है? ऐसा कौन सा पुण्यशाली होगा? ऐसी समझ एडोप्ट ही कैसे होगी? यह समझ देगा ही कौन? ठगना कैसे, वह समझाते हैं, लेकिन जान-बूझकर ठगे जाने के बारे में कौन समझाएगा?

जान-बूझकर धोखा खाकर तो देखो

यहाँ पर तो ठगे जाने जैसी कोई चीज़ है ही नहीं, लेकिन ठगे गए तो बहुत उत्तम! लेकिन उसे इसकी क़ीमत क्या मिलेगी, ऐसी समझ ही नहीं है न! ठगे जाने की क़ीमत इतनी अधिक मिलती है, लोग क्या ऐसा जानते हैं?

प्रश्नकर्ता : लोग जानते ही नहीं न!

दादाश्री : लेकिन हमने तो बचपन से ही ठगे जाने का

सिस्टम रखा है। हमारी माँ जी ने सिखाया था, वे खुद भी जान-बूझकर ठगी जाती थीं और सभी को संतुष्ट करती थीं। वह मुझे बहुत पसंद आया कि ये तो सभी को बहुत अच्छी तरह संतुष्ट करती हैं! और जान-बूझकर ठगे जाने से कौन सी संपत्ति थी जो चली जाएगी? संपत्ति में क्या कम हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : अभी भी जान-बूझकर ठगे जाने की हिम्मत नहीं आती।

दादाश्री : ठगे जाने की हिम्मत? अरे, मुझे तो थोड़ी भी देर नहीं लगती और मुझे कोई ठगने आए तो मैं समझ जाता हूँ कि यह ठगने आया है इसलिए ठगे जाओ, फिर ऐसा ग्राहक नहीं मिलेगा। फिर ऐसा ग्राहक कहाँ से मिले? और देख तेरी तो हिम्मत ही नहीं होती न!

प्रश्नकर्ता : इस व्यापार में क्या होता है कि हमें पता है कि इस माल का मार्केट प्राइज़ यह है। वह व्यक्ति एक टन पर हज़ार रुपये अधिक चार्ज कर रहा है, तो ऐसा समझ में आने पर भी एक हज़ार रुपये अधिक देने की हिम्मत नहीं होती। इसलिए फिर उससे कह देते हैं कि, 'नहीं, प्राइज़ तो इतनी ही होनी चाहिए।' उसके साथ पहले थोड़ी-बहुत बात करनी पड़ती है।

दादाश्री : जान-बूझकर देना तो ऐसा है न, कि हम जो जान-बूझकर ठगे जाते हैं, वह तो अपवाद है और अपवाद कभी कभार ही होता है। वर्ना, लोग जान-बूझकर ठगे जाते हैं, वे तो शर्म के मारे नहीं तो दूसरे किसी अंदरूनी कारण से ठगे जाते हैं। वर्ना लोगों को जान-बूझकर ठगे जाने का ध्येय नहीं होता, जबकि हमारा तो ध्येय था कि जान-बूझकर ठगे जाना है।

भोजन करके जाने दो

हम खटमल को जान-बूझकर काटने देते थे, उसे वापस तो नहीं निकाल सकते न बेचारे को! अपने होटल में आया है तो

क्या भोजन किए बगैर चला जाएगा? अब वह क्या फल देता है? उस खटमल में रहे हुए वीतराग हमारे में रहे हुए वीतराग को फोन कर देते हैं कि, 'ऐसे दाता कहीं नहीं देखे इसलिए इन्हें उच्चतम पद दो।' ये खटमल होते हैं न वे कभी भी भूखे नहीं मरते, रोज़ ही भोजन कर लेते हैं। ये लोग सोते हैं तब वे लोग भोजन कर ही लेते हैं न? लेकिन हमने क्या किया कि जागते हुए भोजन करने दो। लोग सोते हैं तब उसे भोजन करने देते हैं या नहीं करने देते? यानी ये खटमल वे ऐसी जाति नहीं है कि भूखे मरें। लोग नींद में भोजन करने देते हैं और हम जागते हुए भी भोजन करने देते हैं और वापस उसे मारने-करने की बात ही नहीं। हाथ में ऐसे तुरंत आ जाता है, लेकिन हम वापस उसे पैर पर रख देते हैं। हालांकि, अब मेरे बिस्तर में खटमल आते ही नहीं, बेचारों का हिसाब पूरा हो गया है। यदि हिसाब अधूरा रखें तो हिसाब कच्चे रह जाएँगे।

कुछ लोग खटमल को मारते नहीं, लेकिन बाहर जाकर डाल आते हैं, लेकिन हाथ में आ जाए तो उसे छोड़ते नहीं। फिर मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या तुझे पक्का विश्वास हो गया है कि एक कम हो गया है अब? ऐसी कौन सी गारन्टी से तू समझ गया कि एक कम हो गया? और ऐसे कम हो जाते, तब तो रोज़ कम ही होते जाते। फिर मैंने कहा कि खटमल को मारने की ज़रूरत नहीं है। उनका सीज़न होता है, उसके बाद अपने आप ही खत्म हो जाते हैं, नहीं तो खत्म करना चाहो फिर भी खत्म नहीं होते। यहाँ आप मार-पीटकर खत्म करो तो पड़ोसी के घर से घुस जाएगा। अब खटमल काटे, तब हमें यह पता चल जाता है कि प्रेम कहाँ है। यदि देह पर अभी तक प्रेम है तो आत्मा पर कब प्रेम आएगा?

और खटमल बेचारे जब भोजन करने आते हैं, तब कहीं यहाँ पर डिब्बा लेकर नहीं आते। वे खाते हैं उतना ही, लेकिन

साथ में टिफ़िन वगैरह कुछ नहीं ले जाते। टिफ़िन ले जाते होंगे? लेकिन वे इतना सारा खाते हैं कि हाथ से छूएँ तो पेट फूट जाए बेचारे का। वह मर जाएगा बेचारा! और फिर अपने हाथ में बदबू आएगी!

तुझे यह संसार अच्छा लगता है? कैसे अच्छा लगता है यह? मैं तो यह सब देखकर ही ऊब गया! अरे, किस जगह पर सुख माना है इन लोगों ने! और कैसे मान लिया है इसे सुख? सोचा ही नहीं न! जहाँ पर कुछ हो जाता है वहाँ पर विचार ही नहीं किया! इससे संबंधित किसी प्रकार का विचार ही नहीं? तब पूरे दिन विचार पैसों में ही, कि किस तरह पैसे मिलें? नहीं तो अगर पत्नी मायके गई हो तो विचार आते रहेंगे कि आज एक चिट्ठी लिखूँ कि जल्दी आ जाए! बस, यही दो विचार, और कोई विचार ही नहीं! पाशवता के विचार कि कहाँ से ले लूँ और कहाँ से इकट्ठा करूँ? अरे, यह तो फ्री ऑफ कॉस्ट है, उसके लिए क्या माथापच्ची कर रहे हो? तेरा वह हिसाब तो नक्की हो चुका है। तुझे इतने पैसे मिलेंगे। यह पेशेन्ट इतने पैसे देगा, यह पेशेन्ट एक आना भी नहीं देगा।

जान-बूझकर धोखा खाना, करवाए प्रगति

हमें तो धोखा खाकर आगे बढ़ना है। जान-बूझकर ठगे जाने जैसी प्रगति इस जगत् में कोई भी नहीं। मनुष्य जाति पर विश्वास, वह तो बहुत बड़ी चीज़ हैं। दस लोग विश्वासघात करें तो सभी को छोड़ दें? नहीं छोड़ते। लोग तो क्या करते हैं? दो-पाँच दोस्तों ने धोखा दिया हो तो कहते हैं 'ये सभी धोखेबाज़ हैं, सभी धोखेबाज़ हैं'। अरे, नहीं कहना चाहिए। यह तो अपने हिन्दुस्तान की प्रजा, यों तो टेढ़े दिखते हैं, लेकिन परमात्मा जैसे हैं! भले ही, संयोगों के कारण ऐसी दशा हुई है, लेकिन मेरा ज्ञान दे दूँ तो एक घंटे में कैसे हो जाते हैं! यानी परमात्मा जैसे हैं, लेकिन उन्हें संयोग नहीं मिला है।

...और जान-बूझकर ठगना, लाए अधोगति

जान-बूझकर ठगे जाना वह प्रगति करवाता है और नासमझी से ठगे जाने में लाभ नहीं है, उसमें ठगनेवाला मार खाता है। इन आदिवासी को सेठ लोग क्या करते हैं? सेठ व्यापारी होता है, और वह आदिवासी के साथ बुद्धि का दुरुपयोग करता है या नहीं करता? खुद की अधिक बुद्धि से उस कम बुद्धिवाले को ठगता है! उसमें आदिवासी का तो जो होना था वह हो गया, लेकिन वह व्यापारी तो फिर से आदिवासी भी नहीं बनेगा, बल्कि जानवर गति मिलेगी। इस तरह लोग अपने आप को ही ठग रहे हैं न! और किसी को ठग ही नहीं सकते न!

जगत् में, सिद्धांत स्वतंत्रता का

इसलिए मैंने कहा है कि इस जगत् में कोई जीव किसी जीव में दख़ल कर सके, ऐसा है ही नहीं, बिल्कुल स्वतंत्र है, भगवान भी दख़ल नहीं कर सकते इतनी अधिक स्वतंत्रता है। भगवान क्यों दख़ल करेंगे? भगवान तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी हैं, उन्हें ऐसा कोई झंझट है? इतना समझ ले, तब भी बहुत हो गया कि कोई जीव किसी जीव में किंचित्मात्र दख़ल कर सके, यह जगत् ऐसा नहीं है। इस पर से यदि पूरा सिद्धांत समझ जाए तो स्वतंत्र हो जाएगा।

[२२]

वसूली की परेशानी

और ज्ञानी ने दुनिया को कैसा देखा?

कुछ लोग कहते हैं कि, 'हमने किसी को पैसे उधार दिए हैं, वे सब डूब जाएँगे।' नहीं, यह जगत् बिल्कुल भी ऐसा नहीं है। कुछ कहेंगे, 'पैसे दें तो डूबते ही नहीं।' दुनिया ऐसी भी नहीं है। हर एक के लिए दुनिया उसके हिसाब के मुताबिक ही होती है। आपका चोखा होगा तो कोई भी आपका नाम नहीं देगा, ऐसी है दुनिया।

मन में ऐसा होता है कि, 'कोई चोर पकड़ लेगा तो क्या होगा?' ऐसा कुछ भी नहीं होगा और जो पकड़े जानेवाले हैं, उन्हें कोई छोड़ेगा नहीं, तब फिर घबराना क्यों? जो हिसाब होगा वह चुक जाएगा और हिसाब नहीं होगा तो कोई नाम भी नहीं देगा। अब इसमें निडर भी नहीं हो जाना है कि मेरा नाम कौन देगा? ऐसा नहीं बोलना चाहिए। वह तो किसी को ललकारने के बराबर है। बाकी, मन में घबराना मत। यह दुनिया घबराने जैसी नहीं है।

अपनी तीन हज़ार रुपये की घड़ी हो और फोर्ट एरिया (मुबंई का एक बाज़ार) में गिर जाए। फोर्ट एरिया यानी कि महासागर कहलाता है। उस महासागर में गिरी हुई चीज़ वापस मिलती नहीं है। हम आशा भी नहीं रखते। लेकिन तीन दिन बाद अखबार में विज्ञापन आता है कि जिसकी घड़ी खो गई हो वह उसका प्रमाण देकर और इस विज्ञापन का खर्च देकर ले जाए। यानी यह जगत् ऐसा है, बिल्कुल न्याय स्वरूप! आपको रुपये नहीं देता वह

भी न्याय है, वापस देता है वह भी न्याय है। यह सारा हिसाब मैंने बहुत बरसों पहले निकाल लिया था। इसलिए यदि रुपये नहीं लौटाए तो उसमें उनका किसी का भी दोष नहीं है। इसी प्रकार यदि वापस देने आते हैं तो उसमें उनका क्या उपकार? इस दुनिया का संचालन तो अलग ही तरह से होता है।

उसका हिसाब कुदरत चुकाएगी

आपके पास से कोई रुपये ले गया। फिर तीन या चार साल बीत जाएँ, तो रकम की वसूली शायद कोर्ट के नियम से बाहर चली जाए, लेकिन नेचर का नियम ये लोग नहीं तोड़ सकते न! नेचर के नियम में रकम ब्याज सहित वापस देते हैं। यहाँ के नियम में कुछ भी नहीं मिलता, यह तो सामाजिक नियम है। लेकिन नेचर के नियम में तो ब्याज सहित मिलता है। इसलिए किसी जगह पर कोई अपने रुपये, तीन सौ रुपये नहीं दे रहा हो तो हमें उससे लेने चाहिए। वापस लेने का कारण क्या है कि यह भाई रकम ही नहीं दे रहा तो कुदरत का ब्याज तो कितना सारा हो जाएगा! सौ-दो सौ वर्षों में तो कितनी रकम हो जाएगी! इसलिए हमें उससे वसूली करके वापस ले लेने चाहिए। ताकि वह इतने बड़े जोखिम में तो नहीं पड़े! लेकिन अगर वह दे ही नहीं और जोखिम उठाये उसके ज़िम्मेदार हम नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : कुदरत के ब्याज की दर क्या है?

दादाश्री : नैचरल इन्टरेस्ट इज़ वन परसन्ट पर बारह महीने, यानी सौ रुपये पर एक रुपया! शायद कभी तीन सौ रुपये नहीं दे तो कोई हर्ज नहीं। आप कहो कि, 'मैं और तू, दोनों दोस्त। चलो साथ में ताश खेलते हैं।' क्योंकि आपकी रकम कहीं जानेवाली तो है नहीं न! यह नेचर इतना अधिक करेक्ट है कि अगर सिर्फ आपका बाल भी चोरी किया होगा तो भी वह नहीं जाएगा। नेचर बिल्कुल करेक्ट है, एक-एक परमाणु तक करेक्ट है। इसलिए यह

जगत् वरीज़ रखने जैसा है ही नहीं। मुझे चोर मिलेगा, लुटेरा मिलेगा, ऐसा भी भय रखने जैसा नहीं है। यह तो, अगर पेपर में आए कि 'आज फलाने को गाड़ी में से उतारकर ज़ेवर लूट लिए, फलाने को मोटर में मारा और पैसे ले लिए।' तो अब सोना पहनना चाहिए या नहीं पहनना चाहिए? 'डोन्ट वरी!' करोड़ों रुपये के रत्न पहनकर घूमोगे तो भी आपको कोई छू नहीं सकेगा, ऐसा है यह जगत् और वह बिल्कुल करेक्ट है। यदि आपकी जोखिमदारी होगी तभी आपको छूएगा। इसलिए हम कहते हैं कि आपका *ऊपरी* कोई बाप भी नहीं है, इसलिए 'डोन्ट वरी!' निर्भय बन जाओ!

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति को हमने पाँच सौ रुपये दिए और वह रुपये वापस नहीं दे सका और दूसरा, हमने पाँच सौ रुपये का दान दिया, तो इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : दान दिया वह अलग चीज़ है। इसमें जो दान लेता है, वह कर्ज़दार नहीं बनता। आपके दान का बदला आपको दूसरी तरह से मिलता है। दान लेनेवाला व्यक्ति बदला नहीं चुकाता, जबकि उधारी में तो जिसके पास से आप रुपये माँगते हो, उसी की मारफत आपको दिलवाना पड़ता है। आखिर में फिर वह दहेज के रूप में भी रुपये देगा। अपने यहाँ नहीं कहते 'लड़का है गरीब परिवार का, लेकिन परिवार खानदानी है इसलिए उसे पचास हज़ार दहेज दो।' यह दहेज किसलिए देते हैं? यह तो, जिसने माँगा है उसी को देना पड़ता है। यानी ऐसा हिसाब है सारा! एक तो बेटी देते हैं और ऊपर से रुपये भी देते हैं। यानी यह तो सारा हिसाब चुक जाता है।

पैसा वापस लेने में विवेक होना चाहिए

प्रश्नकर्ता : किसी व्यक्ति से हमें रुपये वापस लेने हों, हमने उसे दिए हों, वे हमें उसके पास से वापस लेने हों और वह नहीं दे, तो उस समय हमें वापस लेने के लिए प्रयत्न करने

चाहिए या फिर अपना उधार चुक गया ऐसा समझकर संतुष्ट होकर बैठे रहना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा नहीं है, वह व्यक्ति अगर अच्छा हो तो प्रयत्न करना और कमज़ोर व्यक्ति हो तो प्रयत्न ही छोड़ देना।

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न करना अथवा तो ऐसा कि भाई, हमें मिलना होगा तो वो घर बेठे आकर दे जाएगा और यदि नहीं आए तो समझ लेना है कि अपना उधार चुक गया, ऐसा मान लें?

दादाश्री : नहीं, नहीं, इतना सब मत मानना। हमें स्वभाविक प्रयत्न करना चाहिए। हमें उससे कहना चाहिए कि, 'हमें ज़रा पैसों की कमी है, यदि आपके पास हों तो हमें भिजवा देना।' इस प्रकार से विनय से, विवेक से कहना चाहिए और वापस नहीं आएँ तो फिर हमें समझना चाहिए कि अपना कोई हिसाब होगा, वह चुक गया। लेकिन हम प्रयत्न ही नहीं करेंगे तो वह हमें मूर्ख मानेगा और वह उल्टे रास्ते चढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : यानी उसके लिए सामान्य प्रयत्न करके देखना चाहिए?

दादाश्री : सामान्य अर्थात् उसे कहना चाहिए कि 'भाई, हमें ज़रा पैसों की कमी है, आपके पास हो तो ज़रा जल्दी भिजवा दो तो अच्छा।' लेनेवाले का जितना विवेक होता है न, वैसा ही विवेक हमें रखना चाहिए। हम से पैसे लेते समय वह जितना विवेक रखता है, उतना ही विवेक हमें उससे पैसे वापस लेते समय रखना चाहिए। ये तो पैसे लेते समय हमें ऐसा ध्यान में रहता है कि पैसे तो मैंने उधार दिए है, वह ध्यान में रहता है वह सब बहुत नुकसान करता है।

यह संसार तो पूरा पज़ल है, इसमें मनुष्य मार खा-खाकर मर जाए! अनंत जन्मों से मार खाते आ रहे हैं और छूटने का

ऐसा समय आए तब खुद छुटकारा नहीं कर लेता, फिर वापस छूटने का समय ही नहीं आएगा न! और जो छूटा हुआ होगा वही छुड़वाएगा, बंधा हुआ हमें क्या छुड़वाएगा?

बाकी पैसों का महत्त्व नहीं है, अपना मन कमज़ोर नहीं हो जाए, उसका महत्त्व है। हमें एक दिन विचार आए कि, 'ये पैसे नहीं देगा तो क्या होगा?' उससे अपना मन ही फिर कमज़ोर होता जाता है। यानी देने के बाद हमें नक्की करना चाहिए कि समुद्र में काले कपड़े में बाँधकर फेंक रहे हैं। वापसी की आशा रखनी चाहिए? तो देने से पहले ही आशा रखे बगैर दो, नहीं तो देना मत।

लोभ भी आर्तध्यान करवाए

धर्मध्यान की भगवान महावीर की जो चार आज्ञाएँ हैं, वे क्या पुरानी हो गई हैं? वे आज्ञा पुरानी नहीं होतीं, भले ही बहुत काल बीत गया है। अभी कोई सेठ हो और उससे दो हीरे कोई ले गया और 'दस दिन में पैसे दूँगा' ऐसा कहा, फिर छह महीने-बारह महीने तक पैसे नहीं दे तो क्या होगा? सेठ पर कुछ असर होगा क्या?

प्रश्नकर्ता : मेरे पैसे गए, ऐसा होगा।

दादाश्री : मेरा कहना है कि एक तो हीरे गए, वह नुकसान तो हुआ और ऊपर से वापस आर्तध्यान करता है? और हीरे दिए वे हमने राज़ी-खुशी दिए हैं, तो फिर उसके लिए कुछ दुःख नहीं होना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लोभ था, इसलिए दिए न?

दादाश्री : फिर वही लोभ आर्तध्यान करवाता है। यानी यह सब अज्ञानता के कारण होता है, जबकि ज्ञान में कोई प्रकृति बाधक नहीं है। आत्मा को स्वभाव दशा में कोई प्रकृति बाधक नहीं है।

यानी जो हीरे दिए थे वे गए तो गए, लेकिन रात को सोने नहीं देते फिर। दस दिन हो गए और वह ग्राहक ठीक से जवाब नहीं दे रहा हो तो, तभी से नींद उड़ जाती है। क्योंकि पचास हज़ार के हीरे हैं, लेकिन सेठ की जायदाद कितनी? पच्चीस लाख की होती है। अब उसमें से यदि पचास हज़ार के हीरे घटा दे तो साढ़े चौबीस लाख की जायदाद नक्की नहीं करनी चाहिए? हम तो ऐसा ही करते थे, मेरी पूरी ज़िंदगी में मैंने बस ऐसा ही किया है!

समझदारी, दूसरा नुकसान नहीं होने देती

सेठ के हीरों के पैसे नहीं आए फिर भी सेठानी क्या कोई चिंता करती है? तब क्या वह पार्टनर नहीं है? बराबर की पार्टनरशिप में है। अब सेठ कहता है कि, 'उसे हीरे दिए, लेकिन उसके पैसे नहीं दे रहा है।' तब सेठानी क्या कहेगी कि, 'अरे, अपना उधार होगा, पैसे नहीं आने होंगे तो नहीं आएँगे।' तब सेठ के मन में होता है कि, 'यह नासमझ क्या बोल रही है!' और यह है समझदारी का बोरा! उसने पचास हज़ार के हीरों के रुपये नहीं दिए तो तुम पच्चीस लाख की जायदाद में से पचास हज़ार कम करके साढ़े चौबीस लाख की जायदाद है, ऐसा नक्की कर लो और तीन लाख की तुम्हारी जायदाद हो तो पचास हज़ार कम करके ढाई लाख की जायदाद है, ऐसा नक्की कर लो।

प्रश्नकर्ता : समाधान में रहने का यह कितना ग़ज़ब का तरीक़ा है, एकदम तुरंत ही समाधान हो जाए!

दादाश्री : वह तो नक्की करके रखना, आसान रास्ता करके! मुश्किल रास्ता बनाकर क्या काम है?

जो नुकसान का व्यापार करे, उसे बनिया कैसे कहेंगे? घर पर अपने पार्टनर से पूछे, पत्नी से कि, 'ये पचास हज़ार गए तो आपको कुछ दुःख हो रहा है?' तब वे कहेंगी, 'चले गए

हैं, इसलिए अपने नहीं हैं।' तब आपको नहीं समझ जाना चाहिए कि यह स्त्री इतनी समझदार है, मैं अकेला ही बेअक़्ल हूँ? और पत्नी का ज्ञान आपको तुरंत पकड़ लेना चाहिए न? एक नुकसान हुआ उसे जाने दो, लेकिन दूसरा नुकसान मत उठाओ। लेकिन यह तो जो नुकसान हो गया है, उसी के लिए रोना-धोना मचाता रहता है! अरे, चला गया उसके लिए क्यों रो रहा है? अब फिर से नहीं जाएँ, उसके लिए रोना-धोना कर। हमने तो साफ-साफ ऐसा रखा था कि जितने गए, उतने कम करके रख दो!

देखो न, पचास हज़ार के हीरे ले जानेवाला आदमी चैन से पहनता है और यहाँ ये सेठ चिंता करता रहता है! सेठ से पूछें कि, 'क्यों कुछ उदास दिख रहे हो?' तब कहेगा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं। यह तो ज़रा तबियत ठीक नहीं रहती।' वहाँ गलत बोलता है। अरे, सच बोल न कि, 'भाई, पचास हज़ार के हीरे दिए हैं उसके पैसे नहीं आए, इसलिए मुझे चिंता हो रही है।' सच-सच ऐसा कह दे तो उसका उपाय मिलेगा! यह तो सही बात नहीं कहता और उलझन में आकर गलत बोलते रहता है।

लक्षण कैसे? मानी के! लोभी के!

हमने तो ऐसा नक्की किया हुआ था कि यदि रुपये माँगने जाएँगे, तो वह दोबारा लेने आएगा न? इसलिए माँगना ही बंद कर दो। वसूली छोड़ दो, तो कोई झंझट ही नहीं!

हमारे घर पर तो चार-चार गाड़ियाँ पड़ी रहती थीं, क्योंकि, कौन ऐसा परोपकारी आदमी मिलेगा? 'आईए अंबालालभाई' कहें तो हो गया! ऐसा भोला आदमी कौन मिलेगा? चाय-पानी वगैरह नहीं पिलाओ तो भी चलेगा, लेकिन 'आईए पधारिए' कहा कि बस, बहुत हो गया! भोजन नहीं करवाएगा तो भी चलेगा, दो दिन भूखा रह जाऊँगा। तेरी गाड़ी की अगली सीट पर मुझे बिठाना, पीछे नहीं। इसलिए वे लोग मेरे लिए आगे की सीट रोककर ही

रखते थे। अब कौन ऐसा करनेवाला मिलेगा? मानी बेचारे भोले होते हैं। सिर्फ मान की ख़ातिर बेचारे हर प्रकार से ठगे जाते हैं। कोई रात को बारह बजे घर पर आए और कहे, 'अंबालाल भाईसाहब हैं क्या?' भाईसाहब कहा कि बहुत हो गया। यानी दूसरे लोग मानी का इस तरह से लाभ उठाते हैं! लेकिन मानी को क्या फायदा पहुँचाते हैं कि मानी को इतना ऊँचा चढ़ा देते हैं और फिर उसे ऐसा गिराते हैं कि फिर से मान वगैरह सब भूल जाता है। ऊँचाई पर चढ़ने के बाद गिरेंगे न!

वे हमें रोज़ 'अंबालालभाई' कहते हों और अगर एक दिन 'अंबालाल' कह दें तो कड़वा ज़हर जैसा लगता था।

इस मान के कारण सबकुछ उलझ जाता है, लेकिन मान अच्छा है। इंसान मानी बने वह अच्छा है, क्योंकि मानी व्यक्ति को अन्य कोई रोग नहीं होते, उसे तो सिर्फ मान दो कि खुश और लोभी को तो खुद को भी पता नहीं चलता कि मुझ में लोभ है। मान और क्रोध दोनों भोले स्वभाव के हैं, वह विवाह समारोह में जाए और 'आईए पधारिए' करे तो तुरंत ही पता चल जाता है। कोई कह देगा कि, 'छाती क्यों फुला रहे हो?' और लोभी को तो कोई कहनेवाला भी नहीं मिलता!

लोभी की निशानी क्या? हम पूछें कि ये दो हीरे किसी को देने के बाद वापस नहीं मिलें तो आप पर क्या असर होगा? तब कहेगा कि, 'वह तो होगा ही न!' यह असर हुआ, वही लोभ की निशानी! हीरे दिए दो, उसमें न तो हाथ में लगा, ना ही अपमान किया, अपमान किया हो तब तो मान पर आघात किया कहलाएगा। यह तो ऐसे किसी लेन-देन के बगैर हीरे दिए है! कोई कहेगा कि, 'इन्हें गालियाँ देकर अपमान किया, तो कैसे सहन हो सकता है?' तो हम समझें कि संसारी है, इसलिए सहन नहीं हो सकता! लेकिन हीरे दिए, उसमें न तो देह को लगी है न ही खून निकला है, तो यह क्या है जो परेशान कर रहा

है? यह लोभ नाम का गुण ही उसे काट रहा है, परेशान कर रहा है।

जिसने उधार दिया, उसी ने चुकाया! कैसा फँसाव?

ऐसा है न, कि हमने किसी के लिए हों, दिए हों, लेना-देना तो जगत् में करना ही पड़ता है न! यानी किसी व्यक्ति को कुछ रुपये दिए हों, और वे वापस नहीं आएँ तो उसके लिए मन में क्लेश होता रहता है, इच्छाएँ होती रहती हैं कि 'यह कब देगा, कब देगा।' तो इसका कब अंत आएगा?

हमारे साथ भी ऐसा हुआ था न! पैसे वापस नहीं आए उसकी फिक्र तो हम शुरू से करते ही नहीं थे। लेकिन साधारण याद दिलाते थे। उसे कह ज़रूर देते थे। हमने एक व्यक्ति को पाँच सौ रुपये दिए थे। जो दिए, वे खाते में तो लिखे नहीं थे या चिट्ठी में उसके हस्ताक्षर वगैरह कुछ भी नहीं थे न! उस बात का साल-डेढ़ साल हुआ होगा। मुझे भी कभी याद नहीं आया। एक दिन वे व्यक्ति मिल गए, तो मुझे याद आया। फिर मैंने कहा कि, 'वे पाँच सौ रुपये भिजवा देना, यदि आपके पास अभी सहूलियत हो तो मेरे जो पाँच सौ रुपये लिए हैं वे भिजवा देना।' तब वह कहने लगा कि, 'कौन-से पाँच सौ?' मैंने कहा कि, 'आप मेरे पास से ले गए थे न! वे।' तब उन्होंने कहा कि, 'आपने मुझे कब दिए थे। रुपये तो मैंने आपको उधार दिए थे। वह आप भूल गए?' तब मैं तुरंत समझ गया। फिर मैंने कहा कि, 'हाँ, मुझे याद करने दो।' थोड़ी बार ऐसे-वैसे सोचकर मैंने कहा कि, 'हाँ, मुझे याद तो आ रहा है, इसलिए कल आकर ले जाना।' फिर दूसरे दिन रुपये दे दिए। वह आदमी यहाँ आकर परेशान करे कि आप मेरे रुपये नहीं दे रहे है तो क्या करोगे? ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

यानी इस जगत् के लोगों का सामना कैसे करोगे? आपने

किसी को रुपये दिए हों न, तो इस समुद्र में काले कपड़े में बाँधकर डालने के बाद भी आशा रखने जैसी मूर्खता है। यदि कभी आ गए तो जमा कर लेना और उस दिन उसे चाय-पानी पिलाना कि, 'भाई, आपके ऋणी हैं कि आप वापस आकर रुपये दे गए, नहीं तो इस काल में रुपये वापस नहीं आते। आप दे गए वह आश्चर्य ही कहलाएगा।' वह कहे कि, 'ब्याज नहीं मिलेगा।' तो कहना, 'मूल रकम ले आए वह बहुत है न!' समझ में आता है? ऐसा जगत् है! जो लाता है, उसे वापस देने का दु:ख है। जो उधार देता है, उसे वापस लेने का दु:ख है। अब इसमें कौन सुखी? और है 'व्यवस्थित'! नहीं देता वह भी 'व्यवस्थित' है और मैंने डबल दिए वह भी 'व्यवस्थित' है।

प्रश्नकर्ता : आपने दूसरे पाँच सौ रुपये वापस क्यों दिए?

दादाश्री : फिर किसी जन्म में उस व्यक्ति के साथ अपना पाला नहीं पड़े इसलिए। इतनी जागृति रहे न, कि यह तो घर भूले। वह कहेगा कि, 'मैं नहीं दे सकता इसलिए कुछ रियायत कर दीजिए।' तो ऐसे के साथ व्यवहार रखा जा सकता है और फिर अगले जन्म में मिल जाए तो हर्ज नहीं! लेकिन ऐसे इंसान के तो किसी भी जन्म में दर्शन नहीं होने चाहिए। हमारी बिरादरी में शामिल ही नहीं हो तो अच्छा। हमारी बिरादरी में कब तक रहेगा कि जब तक वह कहे कि, 'मेरे पास सुविधा नहीं है तो आप रियायत कर दीजिए।' तब तक हमारी बिरादरी में रहेगा। लेकिन यदि दूसरी तरह का बोलेगा तो वह तो हमारी बिरादरी में आ ही नहीं सकता। काम ही नहीं चलेगा न! हमारी बिरादरी के साथ लेना-देना ही नहीं न! फिर से मिले ही नहीं तो अच्छा है, फिर कभी भी उसके दर्शन नहीं हो। वह समझता है कि, 'मुझे पैसे मिल गए।' हम कहते हैं कि, 'तुझे मिले हैं और हमारी इच्छा थी, मेरा एक बड़ा हिसाब पूरा हो गया न! इसलिए तू खुश रह!' इस क्वॉलिटी का तो सामना किस तरह कर सकते हैं? अब इसे

न्याय कहें या अन्याय? कोई कहेगा कि, 'आप न्याय करवाकर रुपये वापस ले लीजिए।' मैंने कहा कि, 'नहीं, यह तो अब पहचान गए कि ऐसी क्वॉलिटी भी होती है। इसलिए इस बिरादरी से तो अब दूर, बहुत दूर ही रहो और इनके साथ यदि सही-गलत का न्याय करेंगे तो मामला तलवारें उठने तक पहुँच जाएगा।'

यदि वसूली करेंगे तो दोबारा माँगेंगे न?

लोगों को पता चला कि मेरे पास पैसे आए हैं, इसलिए मेरे पास लोग पैसे माँगने आए। उसके बाद १९४२ से १९४४ तक मैं सभी को पैसे देता ही रहा। फिर १९४५ में मैंने नक्की किया कि अब मुझे तो मोक्ष की तरफ जाना है। इन लोगों के साथ अब मेरा कब तक चलेगा? इसलिए ऐसा नक्की करो कि इस पैसे की वसूली करेंगे तो फिर वापस रुपये लेने आएँगे न, तो फिर व्यवहार चलता ही रहेगा, इसके बजाय वसूली करना बंद कर दो तो व्यवहार ही बंद हो जाए। वसूली करेंगे तो पाँच हज़ार देकर वापस दस हज़ार लेने आएगा। इसके बजाय ये पाँच हज़ार उसके पास रहेंगे तो उसके मन में ऐसा लगेगा कि 'अब ये न मिलें तो अच्छा।' और रास्ते में यदि मुझे देख ले न, तो वह दूसरी तरफ से होकर निकल जाता था, तब मैं भी समझ जाता। यानी कि मैं छूट गया, मुझे इन सब को छोड़ना था और इन सब ने मुझे छोड़ दिया!

अब इस टोली में मैं किसलिए चला गया था? मान खाने के लिए। अंदर मान खाने का मोह था, इसलिए मान खाने के लिए इनमें चला गया था। लेकिन अब निकलूँ कैसे? लेकिन मुझे यह रास्ता मिल गया। जब-जब मेरे मन में निश्चय होता है कि अब कैसे निकलूँ? उस घड़ी मुझे सूझ पड़ जाती थी। यानी मैंने नक्की किया कि ये पैसे नहीं माँगने हैं तो रास्ता निकल आएगा तो इतना अच्छा अंत आ गया कि सभी का आना बंद हो गया। उनमें से दो-चार लोग आकर दे गए होंगे, लेकिन मैंने उनसे साफ-

साफ कह दिया कि, 'भाई, अब तो मैंने व्यवहार हीराबा को सौंप दिया है। मैंने अपने हाथ में कुछ रखा ही नहीं।' ऐसा कह दिया था। इसलिए फिर झंझट ही मिट गया न! 'अब मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है, घर में मेरा कुछ चलता ही नहीं' ऐसा कह दिया था।

...तब भी रुपये की चिंता

किसी को रुपये उधार दिए हों, दो प्रतिशत ब्याज पर या डेढ़ प्रतिशत ब्याज पर या तीन प्रतिशत ब्याज पर, लेकिन यह सोचकर देना कि ये फिर कभी नहीं दिखेंगे। बाद में फिर वापस आ जाएँ तब उसे नफा समझना। एक बार रुपये दे देने के बाद उसकी चिंता *उपाधि* नहीं करनी चाहिए। क्योंकि आपके हाथ में यह सत्ता है ही नहीं। इन लोगों के हाथ में एक घड़ी जीने की भी सत्ता नहीं है। कौन-से सेकन्ड में मर जाएँगे उसका भी ठिकाना नहीं है और रुपयों की चिंता करते रहते हैं। अरे! क्या कभी रुपयों की चिंता करनी चाहिए?

...उसमें अपनी ही भूल

एक बनिये से ब्राह्मण चार सौ रुपये माँग रहा था, वह ज़ब्ती करने गया। तो वणिक तो चिढ़ गया, 'साले! नालायकों! ऐसे बोलता जाता था और वापस कहता कि, 'मेरे जैसा नालायक कोई है ही नहीं न!' अरे, तू खुद को गालियाँ दे रहा है? ब्राह्मण को इतनी सारी गालियाँ दीं और फिर बोलता क्या है? 'मेरे जैसा नालायक कोई है ही नहीं।' रुपये नहीं दिए तभी यह दशा हुई न! ऐसा कहता जाता और वापस ब्राह्मण को भी नालायक कहता! अरे, ये किस तरह के इंसान हो? ये तो तरह-तरह की खोपड़ियाँ हैं। अब वह उस ब्राह्मण को नालायक कहता है, और वापस खुद अपने लिए भी ऐसा ही कहता है। तब फिर हमें हँसना ही आएगा न?

इस दुनिया का सामना तो कैसे कर सकेंगे? इसलिए हमने तो क्या कहा है कि, 'भुगते उसी की भूल।' अपनी भूल है, ऐसा कब पता चलेगा कि जब हमें भुगतना पड़ेगा तब। यह आसान रास्ता है न?

एक भाई ने आपको ढाई सौ रुपये नहीं दिए और आपके ढाई सौ रुपये डूब गए, उसमें भूल किसकी? आपकी ही न? भुगते उसी की भूल। इस ज्ञान से धर्म होगा, यानी सामनेवाले पर आरोप करना, कषाय करना सब छूट जाएगा। अतः यह 'भुगते उसी की भूल' वह तो मोक्ष में ले जाए ऐसा है! यह तो एक्ज़ेक्ट निकला है कि 'भुगते उसी की भूल।'

[२३]

रुकावट डालने से डलें अंतराय

उपादान 'निश्चय' का, आशीर्वाद है 'निमित्त'

प्रश्नकर्ता : मन में निश्चित किया होता है कि यह कार्य करना है और वह सफल नहीं हो रहा हो, फिर भी अंदर जो विलपावर है कि यह कार्य सफल होगा ही, तो क्या वह ठीक है?

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है, वह काम होगा ही। क्योंकि यदि विलपावर होगी, तो वह काम होगा ही। और विलपावर टूट गई तो वह काम नहीं हो पाएगा। विलपावर पर से हम भविष्य बता सकते हैं कि यह काम होगा या नहीं होगा। अतः जिस काम के लिए विलपावर नहीं हो तो वह काम छोड़ देना चाहिए और विलपावर हो तो वह काम पकड़कर रखना चाहिए। वह कभी न कभी होगा ही! आपकी भावना और साथ में दुआ भी चाहिए, दोनों साथ में होंगे तो काम होगा।

प्रश्नकर्ता : दुआ विलपावर से आगे निकल जाती है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन दोनों साथ में चाहिए। विलपावर नहीं होगी तो दुआ कुछ भी काम नहीं करेगी। आपके विलपावर और 'यह' दुआ, दोनों मिल जाएँ तो काम सफल होगा। किसकी दुआ अधिक पहुँचती है? कि जिसे इस जगत् की कोई भी चीज़ नहीं चाहिए, किसी चीज़ की भीख नहीं हो, जिसे लक्ष्मी की भीख नहीं हो, विषय की भीख नहीं हो, मान की भीख

नहीं हो, कीर्ति की भीख नहीं हो, उनकी दुआ पहुँचती है। जब तक मान की भीख है, लक्ष्मी की भीख है तब तक दुआ नहीं पहुँचती।

सोचने से डले हुए अंतराय...

प्रश्नकर्ता : जो कार्य करते हैं उसमें विरोधी शक्ति आती है और उस कार्य को रोकती है, तो ऐसा क्यों होता है?

दादाश्री : जो हमें सही कार्य करने में रुकावट डालता है, उसे अंतराय कर्म कहते हैं। ऐसा है, अगर बाग़ में जाते-जाते ऊब जाए न, तो एक दिन मैं कह देता हूँ कि, 'इस बाग़ में कभी भी आने जैसा है ही नहीं।' और हमें यदि वहाँ पर जाना हो न, तो हमारा ही किया हुआ अतंराय वापस सामने आएगा, तो उस बाग़ में नहीं जा पाएँगे। ये जितने भी अंतराय हैं, वे सब अपने ही खड़े किए हुए हैं। बीच में और किसी की दख़ल नहीं है। किसी जीव में किसी जीव की दख़ल है ही नहीं, खुद की ही दख़लों से यह सब खड़ा हो गया है। हम बोलें हो कि, 'इस बाग़ में आने जैसा है ही नहीं।' अब फिर वापस वहाँ जाना हो, उस दिन फिर हमारा जाने का मन ही नहीं करेगा, बाग़ के फाटक तक जाकर वापस आना पड़ेगा, इसी को कहते हैं अंतराय कर्म! क्योंकि दख़ल की कि अंतराय डला।

बांद्रा की खाड़ी(मुंबई में) के पास खड़ा रहे तो दुर्गंध आती रहती है, कितना ही बाग़ में जाना हो फिर भी बाग़ में जा नहीं पाता, उसका क्या कारण है? कि खुद ने ही अतंराय डाले हैं, ये भोगने के अंतराय डाले हैं। वे अंतराय टूटें, तो काम हो जाए। लेकिन अंतराय टूटेंगे किस तरह? 'जाना है, लेकिन क्यों नहीं जा पाता' ऐसे ही सोचता रहे न, तो सभी अंतराय तोड़ देगा। क्योंकि विचारों से अंतराय पड़े है और विचार ही अंतराय को तोड़ते हैं। 'जाएँगे, नहीं जाएँगे तो क्या चला जाएगा?' ऐसे विचारों से अंतराय

डलते हैं। और 'जाना ही है, क्यों नहीं जा सकता?' उन विचारों से अंतराय टूटते हैं।

औरों को रुकावट डालने से डलें अंतराय

राजा किसी पर खुश हो जाए तो कोषाध्यक्ष से कहेगा कि, 'इसे एक हज़ार रुपये दे देना।' तब वह कोषाध्यक्ष सौ देता है। कुछ जगहों पर तो कोषाध्यक्ष ठाकुर को समझा देता है कि, 'इस व्यक्ति में कुछ है ही नहीं, यह तो सब गलत है।' जो देने को तैयार है, उसे रोकता है। तब उसका फल अगले जन्म में क्या आएगा? उसे कभी भी पैसा मिलेगा ही नहीं, लाभांतराय पड़ जाएगा। किसी के लाभ में आपने रुकावट डाली हो तो लाभांतराय पड़ता है। उसी तरह जिस-जिस में आप रुकावट डालते हो, किसी के सुख में रुकावट डालते हो, किसी के विषयसुख में रुकावट डालते हो, जिस किसी चीज़ में आप रुकावट डालते हो, तो उन सभी में आपको रुकावट आएगी और तब क्या कहोगे कि, 'मुझे अंतराय कर्म बाधक है।' कोई सत्संग में आने के लिए तैयार हो और आप मना करो तो आपको अंतराय पड़ेंगे। यानी जिसमें आप रुकावट डालोगे उसका फल आपको भुगतना पड़ेगा। कुछ कोषाध्यक्ष तो ऐसे अक़्लमंद होते हैं कि राजा को बख्शीश ही नहीं देने देता। राजा को ऐसी सलाह देनी चाहिए? फिर क्या होता है? उसने अंतराय डाले, इसलिए उसी को अंतराय डल जाते हैं, फिर उसे किसी जगह पर लाभ ही नहीं होता। कुछ लोग तो, कोई किसी गरीब आदमी को कुछ दे रहा हो तो उससे पहले ही वह अंतराय डाल देता है। अरे, उसमें क्यों दख़ल करते हो?

आपके वहाँ बिरादरी में सब लोग भोजन करने बैठे हो, उनमें से एक व्यक्ति कहे कि, 'इन चार-पाँच जनों को भोजन के लिए बिठा दो,' और यदि आप मना करते हो न, तो वह आप भोजन के अंतराय डालते हो। उसके बाद किसी जगह पर ऐसी मुश्किल में, सचमुच में मुश्किल में आ जाते हो। दूसरों में

दख़ल की, तभी गड़बड़ हुई न! यानी हमें इतना समझना चाहिए कि, अंतराय कर्म किसलिए आते हैं? यदि जान लें तो फिर से ऐसा नहीं करेंगे न? ये सब आपकी ही डाली हुई रुकावटें हैं। जो है वह आपकी ही ज़िम्मेदारी पर किया हुआ है। खुद की ही ज़िम्मेदारी पर करना है, इसलिए समझ-बूझकर करना।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी होता है न, कि राजा ने तो कहा कि हज़ार दे देना, लेकिन तिजोरी की खबर तो कोषाध्यक्ष को ही होती है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन यदि राजा के हित के लिए कर रहा हो तो बात अलग है, लेकिन यह तो उसे बुरी आदत ही पड़ चुकी होती है। उससे देखा ही नहीं जाता। 'मुझे तो तनख़्वाह ही हज़ार रुपये मिलती है और इन लोगों को क्यों यों ही दे देते हैं?' उससे देखा नहीं जाता। 'दूसरों को क्यों दे देते हैं, मुझे दो न!' ऐसा आपके देखने में नहीं आया?

प्रश्नकर्ता : यदि कोषाध्यक्ष जानता है कि तिजोरी में सौ ही रुपये हैं, तो उसका दोष है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, तब दोष नहीं है। लेकिन फिर भी उसे राजा साहब से विनती करनी चाहिए कि, 'राजा साहब, अपनी तिजोरी में कुछ नहीं है।' लेकिन यह तो, होते हैं फिर भी अंतराय डालता है। घर में यदि बच्चा कुछ दे रहा हो, फिर भी आप मना कर देते हो कि, 'नहीं देने हैं।' तो उस बच्चे को अंतराय कर्म नहीं है, लेकिन आपको तो अंतराय कर्म डला।

यह तो अंतराय कर्म बाधक है, नहीं तो जहाँ पर आत्मा प्राप्त हुआ हो वहाँ पर हर एक चीज़ होती है। जो जो सोची हो, वह चीज़ हाज़िर ही होती है, लेकिन यह तो सब जगह खुद ने ही अंतराय डाले हैं, उसी के कारण सब रुका हुआ है! जहाँ आत्मा हो, वहाँ पर उसकी इच्छानुसार सब तैयार ही रहता है।

आत्मा तो भगवान हैं, वह कोई ऐसी-वैसी बात है? लेकिन हमने खुद ने अंतराय डाले हैं तो क्या हो? हमें तो इतना ही समझना चाहिए कि भाई, यह अतंराय कर्म क्यों रुकावट डाल रहे हैं? ये लोग नहीं कहते कि 'मुझे तो अंतराय रुकावट डालते हैं?' अरे! लेकिन क्यों? यदि जान जाएँ तो फिर वापस ऐसा नहीं करेंगे न?

कितनी बड़ी भूल! किस तरह समझ में आए?

कितने सारे अंतराय डाले हैं जीव ने! ये 'ज्ञानीपुरुष' हैं, हाथ में मोक्ष देते हैं, चिंता रहित स्थिति बना देते हैं, फिर भी अंतराय कितने सारे हैं कि उसे वस्तु की प्राप्ति ही नहीं होती!

भगवान तो ये रहे। मैं आपके भीतर देख रहा हूँ, लेकिन आपको नहीं दिखते। भगवान कहाँ दूर गए हैं? लेकिन हुआ क्या है? कि बीच में जो अंतराय पड़े हुए हैं, वे खुद को किस तरह दिखेंगे अब? वे अंतराय खुद ने ही डाले हैं। क्या कहता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ।' तब भगवान क्या कहते हैं कि, 'अच्छा। तब जितना बोले उतनी ही आपको रुकावटें आएँगी।' अब वे रुकावटें आपको ही हटानी पड़ेंगी। लेकिन वह फिर अपने आप नहीं हटेंगी, वह तो जब 'ज्ञानीपुरुष' मिलें और वे हटा दें, तब हटेंगी!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

कल्प	: कालचक्र
ऊपरी	: बॉस, वरिष्ठ मालिक
अजंपा	: बेचैनी, अशांति, घबराहट
कढ़ापा	: कुढ़न, क्लेश
उपाधि	: बाहर से आनेवाले दुःख
अटकण	: जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे
पोतापणुं	: मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण। मेरापन
नोंध	: द्वेषसहित लंबे समय तक याद रखना
निकाल	: निपटारा
पूरण	: चार्ज होना, भरना
गलन	: डिस्चार्ज होना, खाली होना
पुद्गल	: जो पूरण और गलन होता है
भोगवटा	: सुख या दुःख का असर
अणहक्क	: बिना हक़ का
सिलक	: जमापूँजी
लागणी	: भावुकतावाला प्रेम, लगाव
ऑन	: मूल क़ीमत से ज़्यादा में बेचना
बाखड़ी बाँधना	: लड़ने के लिए तैयार हो जाना
बूधे नार पांसरी	: पत्नी को धमकाकर, मारपीटकर ही वश में रखा जा सकता है
डाह्या ने डाम अने गांडा ने गाम	: अक़्लमंद को सज़ा और पागल को गाँव

नौ कलमें

१. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे (दु:खे), न दुभाया (दु:खाया) जाये या दुभाने (दु:खाने) के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

मुझे किसी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दो।

२. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभे, न दुभाया जाये या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो। मुझे किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभाया जाये ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दो।

३. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी उपदेशक साधु, साध्वी या आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति दो।

४. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित्मात्र भी अभाव, तिरस्कार कभी भी न किया जाये, न करवाया जाये या कर्ता के प्रति न अनुमोदित किया जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

५. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के साथ कभी भी कठोर भाषा, तंतीली भाषा न बोली जाये, न बुलवाई जाये या बोलने के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो।

कोई कठोर भाषा, तंतीली भाषा बोलें तो मुझे मृदु-ऋजु भाषा बोलने की शक्ति दो ।

६. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति स्त्री, पुरुष या नपुंसक, कोई भी लिंगधारी हो, तो उसके संबंध में किचिंत्मात्र भी विषय-विकार संबंधी दोष, इच्छाएँ, चेष्टाएँ या विचार संबंधी दोष न किये जायें, न करवाये जायें या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाये, ऐसी परम शक्ति दो। मुझे निरंतर निर्विकार रहने की परम शक्ति दो।

७. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी रस में लुब्धता न हो ऐसी शक्ति दो। समरसी आहार लेने की परम शक्ति दो।

८. हे दादा भगवान ! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, जीवित अथवा मृत, किसी का किंचित्मात्र भी अवर्णवाद, अपराध, अविनय न किया जाये, न करवाया जाये या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जायें, ऐसी परम शक्ति दो।

९. हे दादा भगवान ! मुझे जगत कल्याण करने में निमित्त बनने की परम शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

(इतना आप दादा भगवान से माँगा करें। यह प्रतिदिन यंत्रवत् पढ़ने की चीज़ नहीं है, हृदय में रखने की चीज़ है। यह प्रतिदिन उपयोगपूर्वक भावना करने की चीज़ है। इतने पाठ में समस्त शास्त्रों का सार आ जाता है।)

शुद्धात्मा के प्रति प्रार्थना

(प्रतिदिन एक बार बोलें)

हे अंतर्यामी परमात्मा! आप प्रत्येक जीवमात्र में बिराजमान हो, वैसे ही मुझ में भी बिराजमान हो। आपका स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है।

हे शुद्धात्मा भगवान! मैं आपको अभेद भाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानतावश मैंने जो जो ★★ दोष किये हैं, उन सभी दोषों को आपके समक्ष ज़ाहिर करता हूँ। उनका हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ और आपसे क्षमा याचना करता हूँ। हे प्रभु ! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँ, ऐसी आप मुझे शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे शुद्धात्मा भगवान! आप ऐसी कृपा करो कि हमें भेदभाव छूट जाये और अभेद स्वरूप प्राप्त हो। हम आप में अभेद स्वरूप से तन्मयाकार रहें।

★★ जो जो दोष हुए हों, वे मन में ज़ाहिर करें।

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. अंत:करण का स्वरूप
६. जगत कर्ता कौन ?
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. मैं कौन हूँ ?
१४. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
१५. मानव धर्म
१६. सेवा-परोपकार
१७. त्रिमंत्र
१८. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
१९. दान
२०. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
२१. दादा भगवान कौन ?
२२. सत्य-असत्य के रहस्य
२३. प्रेम
२४. अहिंसा
२५. प्रतिक्रमण (सं.)
२६. पाप-पुण्य
२७. कर्म का विज्ञान
२८. चमत्कार
२९. वाणी, व्यवहार में...
३०. पैसों का व्यवहार (सं.)
३१. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं.)
३२. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार (सं)
३३. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं.)
३४. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
३५. क्लेश रहित जीवन
३६. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (उत्तरार्ध)
३७. गुरु-शिष्य
३८. आप्तवाणी - १
३९. आप्तवाणी - ३
४०. आप्तवाणी - ४
४१. आप्तवाणी - ५
४२. आप्तवाणी - ६
४३. आप्तवाणी - ७
४४. आप्तवाणी - ८

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9274111393

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123

गोधरा : त्रिमंदिर, भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300

मोरबी : त्रिमंदिर, जेपुर गाँव, मोरबी-नवलखी हाई-वे, मोरबी, जि-राजकोट

वडोदरा : दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9810098564
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9329523737	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9422915064
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूना	: 9422660497	**जलंधर**	: 9814063043

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institute** :
100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606
Tel. : +1 877-505-DADA (3232) ,
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. :	+44 330 111 DADA (3232)	**UAE :**	+971 557316937
Kenya :	+254 722 722 063	**Singapore :**	+65 81129229
Australia :	+61 421127947	**New Zealand:**	+64 21 0376434

Website : www.dadabhagwan.org

जगत् कल्याणी आप्तवाणी

निरंतर, सुबह दातुन करते समय भी यह (टेपरिकॉर्डर) रखा जाता है। एक शब्द निकले, उसे भी ये लोग छोड़ते नहीं हैं। और फिर पुस्तकें छपती हैं उन पर से। इन्हें पढ़ेंगे तो कल्याण हो जाएगा। इस वाणी को पढ़ते ही दिल में ठंडक हो जाएगी। यह इस काल का सबसे बड़ा आश्चर्य है! अमेरिका में तो लोग आफ़रीन हो गए इस आप्तवाणी को पढ़कर। जगत् के लिए बहुत कल्याणकारी है न!, जगत् के लिए हितकारी है न! पूरे जगत् का कचरा निकाल दे ऐसी वाणी है यह।

\- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org